इस असावधानीके कारण कई बुरी घटनायें हो गई हैं अतएव उस बुरी आदतसे अलग ही रहना चाहिये। चूल्हेपरसे बटलोई आदि उतारनेके लिये सॅड़सी रहती ही है, यदि इससे जरूरत पूरी न हो तो एक अलग कपड़ा रखना चहिए। भोजन बनानेमें सबसे अधिक इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि अशुद्धि न होने पावे, अधिक-से अधिक शुद्धता स्वच्छताका ध्यान रखना ही रसोई उत्तम होनेकी विधि है।

खानेके लिये अनेक चीज़ें बनाई जाती हैं, पर भात दाल तरकारी रोटी पूड़ी परौठा चटनी आदि नित्यके भोजनकी चीजें हैं। अतएव इनके उत्तम बनानेका ज्ञान प्रत्येक स्त्रीको आवश्यक है। तरह तरहकी मिठाइयां मालपूआ मोहनभोग आदि नित्यके खानेकी वस्तुएं नहीं हैं। अतएव इनकी उतनी आवश्यकता भी नहीं है। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है कि इन चीजोंका बनाना सीखना ही न चाहिये। इन चीज़ोंका बनाना आना भी आवश्यक है,न मालूम कब किसकी आवश्यता पड़े,पर नित्यके भोजनकी चीज़ोंका बनाना सबसे प्रधान है। उनका बनाना पहले आना चाहिए फिर दूसरी चीज़ोंका। तुमने देखी होगी आजकल पाक-प्रणाली पाकशास्त्र आदि अनेक पुस्तकें बनी हैं, लोग उनसे पाक बनाना सीखते भी हैं। फिर भी किसी सीखे हुएके साथ सीखना अच्छा होता है। अच्छा, मिठाई आदि बनानेकी बात तो मैं पीछे बतलाऊंगी पहले भात दाल तरकारी आदिकी बनानेकी विधि सुन लो, और वैसेही बनाकर अपनी दादीको खिलाया करो। अच्छा पहले भात बनाने

की बात सुनो। गरम पानीमें चावल डालकर उबाल देनेसे ही भात बनता है, पर वह कई तरहका होता है। एक भात होता है फरहर जिसमें एक एक चावल अलग अलग होते हैं। इसमें एक भी चावल टूटने नहीं पाता। एक भात होता है गीला। चावलको अधिक पका देनेसे वह गीला हो जाता है। अतएव रसोई बनानेवालेको इस बातका विचार कर लेना चाहिये कि जिसके लिये रसोई बनती है वह कैसा भात पसंद करता है। गीला खानेवालेके सामने यदि फरहर रखा जाय तो वह कैसे खा सकता है। इसी प्रकार फरहर भात खानेवालोंके लिए गीला अच्छा नहीं होता। अतएव भोजन करनेवालोंकी रुचिका विचार कर लेना आवश्यक है। एक बात और है। कभी कभी ऐसा होता है कि एक ही रसोईमें भिन्न भिन्न रुचिके लोग खानेवाले होते हैं। वैसी दशामें भात ऐसा बनाना चाहिये जो न बहुत कड़ा हो न गीला। उससे दोनोंका काम चल जाता है। वह भात खानेमें भी सबके लिये अच्छा होता है।

भात बनानेके दो प्रकार हैं। एक मांड़ निकालकर बनाया जाता है और दूसरा बिना मांड़ निकाले। पूरबमें चावलके छुर जानेपर मांड़ निकाला जाता है, पर पच्छिममें प्रायः मांड़ नहीं निकाला जाता। पच्छिमवाले कहते हैं कि मांड़के साथ चावलका पौष्टिक अंश निकल जाता है। अतएव यदि मांड़ न निकालना हो तो इस अन्दाजसे अदहन देना चाहिए जिससे पानी अधिक न होने पावे, वह चावलमें जज्ब हो जाय। अधिक

पानी देनेसे भातके गीला हो जानेका भय रहता है। अतएव अदहन देनेमें सावधानी चाहिए।

भात या दाल कुछ भी बनाना हो उसके लिए पहले हीसे दाल चावल साफ कर लेना चाहिए। बीन बरा लेना चाहिए जिससे उसमेंकी मिट्टी कंकड़ साफ हो जाय। इस तरह चावल दालको खूब साफकर चावल तथा दालको धो लेना चाहिए। यदि हो सके तो किसी साफ कपड़ेमें चावल रखकर हवामें रख देना उत्तम होगा। चावलके तिगुना जल देना चाहिए। जब जल गरम हो जाय, वह खौलने लगे तब चावल डालना चाहिए। कलछीसे चलाकर किसी साफ बर्तनसे बटलोईका मुंह ढक देना चाहिए। थोड़ी देर आंच लगनेपर उसमेंसे उफान आवेगा। उस समय ढपना हटाकर साफ कलछीसे चला देना चाहिए। कलछीसे थोड़ासा चावल निकालकर उसमेंसे एक चावल दबाकर देख लेना चाहिए कि वह पका कि नहीं। जब चावल अच्छी तरह पक जाय तो चूल्हेसे उतारकर मांड़ निकालना चाहिए। मांड़ निकालनेमें थोड़ी सावधानीकी जरूरत है। बटलोईको शीघ्रतासे उलटना अच्छा नहीं, इससे हाथ जलनेका भय रहता है, अतएव धीरे धीरे बटलोई उलटनी चाहिए। जब मांड़ निकल जाय तब बटलोई हिलाकर चावल अलग अलग कर लेना चाहिए। इसी समय कुछ लोग जलका छींटा देते हैं कुछ लोग थोड़ा घी डाल देते हैं, इससे भात मुलायम और फरहर हो जाता है। यदि मांड़ निकालनेका विचार न हो

तो पानी कुछ कम देना चाहिए और भात जब आधा पक जाय तब आंच धीमी कर देनी चाहिए। भातमें आलू आदि भी कोई डालते हैं। यदि भातमें आलू डालना हो तो भातके आधा पक जानेपर आलू डालना चाहिए, क्योंकि आलू शीघ्र पकता है। हां, यदि आलू पुराने हों तो भातके साथ ही डालने चाहिए, क्योंकि पुराने आलू देरमें पकते हैं। यदि नये चावलका भात फरहर बनाना हो तो चावल भिगानेके कुछ पहले धो लेना चाहिए और घी लगा देना चाहिए। एक और बात है यदि जल्दी हो अर्थात् मांड़ निकालनेके बाद ही बटलोईसे भात निकालना हो तो चूल्हेपर ही भात अधिक पका लेना चाहिए। यदि कोई जल्दी न हो तो थोड़ी देर बटलोईमें ही भात रहने देना चाहिए और चावलोंके खिल जानेपर बटलोई उतार लेनी चाहिए। इस तरह अच्छा भात तैयार हो जायगा। यह तो भात बनानेकी बात हुई, अब दाल बनानेकी विधि सुनो। पहले दाल खूब साफ कर लो, कूड़ा करकट छिलका आदि निकाल दो। पुनः दालमें घी या तेल मिला दो, घी या तेल मिलाकर जो दाल बनायी जाती है वह जल्दी पकती है तथा स्वादिष्ट होती है। दालके लिए पानी गर्म होनेकी जरूरत नहीं है, ठंढे जलमें भी दाल मिलायी जा सकती है, अक्सर वह ठंढे जलमें ही मिलायी जाती है। हां, उड़दकी दाल गर्म जलमें मिलानी चाहिए, नहीं तो वह जल्दी पकती ही नहीं। भातके साथ खानेके लिए जो दाल बनायी जाय वह पतली होनी चाहिए और रोटीके साथ खानेके

लिए मोटी दाल बनानी चाहिए। पतली दाल बनानेके लिए अधिक अदहन देनेकी जरूरत है और रोटीके लिए कुछ कम। जब दालमें एक बार उफान आ जाय तब उसमें हल्दी डालनी चाहिए। किसी एक बर्तनमें थोड़ासा गर्म जल रखे रहना चाहिए और उफान आनेसे जितना जल कम हो जाय, अन्दाजसे उतना डाल देना चाहिए। कुछ लोग पहले ही अंदाजसे अधिक जल देते हैं, जिससे उफानसे जल गिर जानेपर भी काम लायक बच जाता है। दालके पकनेपर निमक, मिर्च और खटाई आदि उसमें डालनी चाहिए, पुनः चलाकर चूल्हेसे दाल उतार लेनी चाहिए। थोड़ी देर नीचे रखनेसे दाल कुछ ठंढी हो जायगी। तब घी या तेलमें तेजपात, हींग, जीरा, मिर्च, लवंग आदिका बघार (छौंक) देना चाहिए। बघार देते ही बटलोईका मुंह ढक देना चाहिए जिससे गन्ध निकलने न पावे।

मूंग, अरहर, मसूर, मटर आदि कई चीजोंकी दाल बनायी जाती है। सबके लिए एकही प्रकारके बघारकी आवश्यकता नहीं है। भिन्न भिन्न दालके लिए भिन्न भिन्न बघारकी जरूरत होती है। मूंग और मटरकी दालमें जीरा, मिर्चा और तेजपातका बघार देना अच्छा होता है। अरहरकी दालके लिए किसी बघारकी जरूरत नहीं, तथापि लोग देते हैं। लोगोंका खयाल है कि बिना बघारके दाल क्वाँरी रहती है, अतएव बघार देकर वे उसे ब्याह देते हैं। अपनी अपनी समझ है। मसूरकी दालके लिए राईका बघार ठीक होता है। दालमें इमली, अमचूर, कोकम आदि खटाई

एक आसन बिछाकर दादी बैठी थीं। राजेश्वरीके और भाई बहन भी आज उसके काममें मदद दे रहे हैं। राजेश्वरी आज बहुत प्रसन्न है,वह बड़ी मुस्तैदीसे काम कर रही है। भात, दाल कई तरहकी तरकारियां, पकौड़ी, कढ़ी, बरी आदि क्रमसे बनाकर राजेश्वरीने तैयार कर लिये। ११ बजे राजेश्वरीने दादीसे कहा, क्यों दादी, रसोई तो तैयार हो गयी?

दादीने कहा--रसोई तैयार हुई तो अब लोगोंको भोजनके लिए बुलाओ, आसन लगा दो, ग्लासमें पानी रख दो, नौकरानीसे कहो कि पैर धोनेके लिए पानी रख दे और हाथ पोंछनेके लिए एक अंगोछा भी रख दे। दादीके कहनेके अनुसार सब व्यवस्था हो गयी, भोजनके लिए लोग बुलाये गये, सभीने भोजन करके अपनी प्रसन्नता प्रकट की। दादीने कहा, आजका भोजन राजेश्वरीने बनाया है। यह सुनकर राजेश्वरी बहुत प्रसन्न हुई पर लज्जाके कारण उसने सिर झुका लिया, वह कुछ बोल न सकी।

अब राजेश्वरी प्रतिदिन रसोई बनाया करती है। घरवाले उसकी बनायी रसोई खाकर बहुत प्रसन्न होते हैं। धीरे धीरे राजेश्वरीने सभी चीजें बनाना सीख लिया। वह रसोई बनानेमें पक्की हो गयी।

पांचवीं शिक्षा

राजेश्वरीकी गृहस्थीमें बहुत परिवर्तन हो गया, उसके श्वसुरका परलोकवास हो गया, घरके कामकाजका भार उसके पतिपर आ गया। उसकी सासने भी घरके कामकाजोंसे मन हटा लिया, वे अब सदा पूजापाठमें लगी रहती हैं। राजेश्वरीको ही घरके सारे कामकाज करने पड़ते हैं। पर इन नये गृहस्थोंके हाथमें कामकाजका भार आनेपर कोई गड़बड़ी न होने पाई, इन लोगोंने गृहस्थीका कुछ बुरा प्रबन्ध न किया। भाई बन्धु नौकर चाकर किसीको भी इनके प्रबन्धके विषयमें कोई शिकायत न थी।

राजेश्वरीके पति पहले घरके पास ही काम करते थे, इस कारण रविवारकी छुट्टीमें वे घर आ जाया करते थे, पर छ महीने हुए कि उन्होंने एक दूसरी नौकरी कर ली है, इस नौकरीसे उन्हें थोड़ा लाभ भी हुआ और हानि भी। नयी नौकरीमें उन्हें आमदनी अच्छी थी, आगे और अधिक बढ़नेकी भी उमीद थी। यह तो इस नौकरीमें अच्छापन था और बुराई यह थी कि इस नौकरीके कारण घरसे दूर चला जाना पड़ा और सो भी उस समय जब घरके पास इनका रहना आवश्यक था। राजेश्वरीके पतिने जब नयी नौकरीपर जाना निश्चय किया उस समय उनके

सामने यही प्रश्न उपस्थित था, राजेश्वरीने भी उन्हे पास ही रहनेका अनुरोध किया था। पर उन्होंने कहा, मेरे न रहनेपर भी कोई गड़बड़ी न होगी, तुम यहां हो ही, मेरा विश्वास है कि तुम्हारे रहनेसे यहांका सब प्रबन्ध ठीक ठीक होगा। बाहरका काम करनेके लिये नौकर है ही, वहां अधिक रुपये मिलेंगे इससे हमलोगोंको गृहस्थी चलानेमें सुविधा होगी। इस प्रकार राजेश्वरीको समझा बुझाकर उसके पति चले गये।

पतिके विदेश जानेपर राजेश्वरीपरही घरके कामकाजका भार पड़ा। पर इससे वह विचलित नहीं हुई। वह अपनी सासकी सम्मतिसे सब कामधाम करने लगी। किसी आवश्यक विषयमें पत्र द्वारा वह अपने पतिकी भी सम्मति पूछ लिया करती थी। इस प्रकार थोड़े दिनोंतक चला। राजेश्वरीकी सास संसारसे एक प्रकारसे विरक्त सी हो गयी थीं, यह बात लिखी जा चुकी है, अपने शरीरकी भी वे कुछ चिन्ता नहीं करती थीं, खाने पीने आदिकी ओर उनका बिलकुल ध्यान नहीं था। इस उपेक्षाका फल शीघ्र ही प्रकट हुआ। और बातोंमें उपेक्षा की जा सकती है और उस उपेक्षाके दण्डसे भी रक्षा हो सकती है, पर शारीरिक उपेक्षा करके दण्डसे बचनेका कोई उपाय नहीं। यहां न किसी वकीलकी वकालत चल सकती है और न किसी हित-मित्रकी सिफारिश। यहां दण्ड भोगना अनिवार्य है। राजेश्वरीकी सासको भी शीघ्र ही दण्ड भोगना पड़ा। उनकी तबीयत खराब हुई। राजेश्वरीके लिये यह संकटका समय था,

पर वह इसीपरभी घबड़ायी नहीं। [illegible]
और इसकी सूचना उसने अपने पतिको दे दी [illegible]
सेवा-शुश्रूषा करने लगी। पत्र भेजनेके [illegible]
वहांसे कोई उत्तर नहीं आया तब उसने [illegible]
अबकी पत्र भेजनेके छठे दिन पतिके यहांसे [illegible] आया। उस
समय दोपहर हो चुका था, राजेश्वरी [illegible]
और एक पंखा चला रही थी। [illegible] कहा,—"बहू [illegible]
किसी न किसी काममें ही लगी रहती है, [illegible]
खराब हो जाय तो इस समय हमारी क्या दशा हो, कोई [illegible]
देनेवाला भी तो नहीं है। दोपहरको तो दो घड़ी [illegible] कर
लिया कर।" राजेश्वरीने कुछ उत्तर नहीं दिया, हाथका पंखा
उसने रख दिया और वहाँसे उठकर अपने कमरेमें गयी। थोड़ी
देरतक वह खड़ी रही, चारों ओर देखती रही। इस बातको चीजें सब
अपनी अपनी जगहपर हैं कि नहीं, कोई चीज बेतरतीब तो नहीं
पड़ी है, शायद खड़ी होकर राजेश्वरी इन्हीं बातोंको देख रही थी,
पर उसको कोई काम दिखायी न पड़ा, उसने किसी चीजको
बेतरतीबसे पड़ी न देखा। तब वह जाकर बैठ गयी। राजेश्वरीके
कमरेमें एक पलङ्ग था। उसीके पास ही नीचे जमीनमें एक दरी
बिछी थी, उसपर एक बक्स रखा था। राजेश्वरी उसी
बक्सपर भार देकर बैठ गयी। उसी समय नौकरानीने द्वारपर
आकर कहा—बहू सोती हो या जागती। राजेश्वरीने मुड़कर
उसकी ओर देखा, वह उसके पास चली गयी और राजेश्वरीके

हाथमें एक पत्र देकर चली गयी। राजेश्वरीने पत्र खोला और वह उसे पढ़ने लगी। वह पत्र इस प्रकार था। मैं अपने पाठकोंके लिये उस पत्रकी नकल दिये देता हूं :—

राजेश्वरि,

तुम्हारा पत्न ठीक समयपर मिला था, मैं उत्तर देनेका विचार कर रहा था। आज पत्र लिखूंगा, कल लिखूंगा, यही करते करते देर हो गयी, तबतक तुम्हारा दूसरा पत्र भी मिल गया। इससे तुम यह न समझना कि मैं तुम्हारी या माताजीकी उपेक्षा करता हूं। अक्सर तुम्हारे यहां पत्र भेजनेमें देर हो ही जाती है। जो तुम्हारे जरूरी पत्र आते हैं, और जिन पत्रोंका उत्तर भी तुम्हें शीघ्र अपेक्षित होगा उनके उत्तर लिखनेमें भी विलम्ब हो जाता है। लोग कहेंगे कि यह उपेक्षा है, पर क्या तुम भी इसे उपेक्षा ही समझती हो ? यह ठीक है कि उपेक्षा करनेवाले भी ऐसा ही करते हैं, पर मेरा यह कार्य उपेक्षासे नहीं है। इसका कारण है निश्चिन्तता। तुम्हारे कारण मैं घरके कामोंसे एक प्रकार निश्चिन्तसा हो गया हूं। मैं जानता हूं कि तुम जो करोगी वह ठीक ही होगा। जिस समय हम जैसा करेंगे उस समय तुम भी वैसा ही करोगी। कुछ दिनोंसे मैं देख रहा हूं कि कई काम तुमने बड़ी बुद्धिमानीसे किये हैं। ऐसी दशामें मेरी सम्मति भेजना उतना आवश्यक नहीं है। इन्हीं विचारोंसे प्राय: तुम्हारे पत्रोंके उत्तर भेजनेमें देर हो जाया करती है।

माताजीकी तबीयत अच्छी नहीं है, यह सुनकर मैं दुःखी

हुआ। इस समय मेरा वहाँ रहना आवश्यक था। मेरे रहनेसे तुम्हारे कार्योंमें सहायता मिलती। पर हमलोगोंकी इस समय जैसी अवस्था है उसके अनुसार इस समय अपनी इच्छाके अनुसार कुछ हो नहीं सकता, कोई गति नहीं। हमलोग नौकरी करनेके लिये बने हैं, नौकरीके सिवाय और कुछ हो नहीं सकता। हमारे अफसर भले आदमी हैं, वे हृदय भी रखते हैं, फिर भी अफसर हैं। कोई भी अफसर अपने मातहतोंको इतनी स्वाधीनता नहीं दे सकता कि वे अपनी इच्छाके अनुसार काम करें, पर इस समय इसके लिये झींखनेसे काम न चलेगा। तुम वहांका सब प्रबन्ध करोहीगी, मैं भी अवसर पाते ही आनेकी कोशिश करूंगा। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे वहां रहनेसे माताजीको मेरे न रहनेका अभाव नहीं खटकेगा। यदि उनकी अवस्था विशेष खराब मालूम हो तो तार द्वारा मुझे सूचना देना, मैं किसी तरह आही जाऊंगा। मैं समझता हूं, कि माताजीकी तबीयत अब अच्छी हो रही होगी। हां अपनी दादीसे इस विषयमें सलाह लेना, वे जो कहें सो करना। एक आदमी भेजकर उनसे पूछना, वे इस समयकी देवी हैं। उन्होंने ही तुम्हें बनाया है और तुम मेरे परिवारकी रक्षा कर रही हो।

एक और बात सुनो। मैं अपने पत्रोंमें केवल "राजेश्वरि" लिखकर तुम्हें सम्बोधित करता हूं। पर आजकल यह ढंग पसन्द नहीं किया जाता। आजकल लोगोंको औपन्यासिक सम्बोधन पसन्द है, पर मुझे वह पसन्द नहीं है। क्या तुमको औपन्यासिक

सम्बोधन पसन्द है ? मैं जिस शब्दसे तुम्हें सम्बोधित करता हूं क्या वह बुरा मालूम पड़ता है ? पर मैं तुमसे सच कहता हूं कि मुझे यही सम्बोधन पसन्द है, इस शब्दसे सम्बोधित करते मुझे बड़ा आनन्द आता है। मैं इससे अपनेको बड़ा भाग्यवान समझता हूं। मैं औपन्यासिक फंसावमें फंसना नहीं चाहता। मेरी बुद्धि सदा ऐसीही बनी रहे, यही मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूं। तुम्हारे जैसी देवीके लिये "राजेश्वरि" सम्बोधन ही उपयुक्त है।

तुमने जो चीजें भेजी थीं वे यथासमय मिल गयीं। रूमालपर जो तुमने काम किया है वह देखकर मित्रोंने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की। तुमने छ रूमाल भेजे थे, पर मेरे पास एक ही रह गया है। तुम्हारे पत्रकी राह देखता हूं।

तुम्हारा ही—

....

राजेश्वरीकी सासने उसे विश्राम करनेके लिये भेजा था। वह गयी भी थी, पर क्या सोचकर गयी थी, यह कहा नहीं जा सकता। उसी समय उसे पत्र मिला। पत्रको उसने आद्योपान्त पढ़ा और वह उसी समय उत्तर लिखने बैठ गयी। राजेश्वरीके पत्रकी नकल नीचे दी जाती है:—

प्रियतम !

पत्र अभी मिला। मैंने अपने भाग्यको सराहा और मैं कृतार्थ हुई। हमारी जैसी स्त्रियोंके लिये यह बड़े सम्मानकी बात है। विदेशी पति जिस स्त्रीका स्मरण करे वह सचमुच बड़ी भाग्यवती

है। मैं यह दिल्लगीसे नहीं कह रही हूं और न मेरा कोई दूसरा अभिप्राय ही है।

माताजीकी तवीयत पहलेसे कुछ अच्छी है। दादीके यहां पत्र लेकर एक आदमी भेजा था, यहांकी सब हालत लिख दी थी और उनको आनेके लिये भी लिखा था। पर वे आनेके लिये राजी नहीं हुईं, उन्होंने कहला भेजा है कि तूं अपनी ससुरालमें अपनी दादीको बुलाकर क्या करेगी। पर हमको क्या करना चाहिये यह उन्होंने लिख दिया है, औषध तथा उपचार भी लिखा है। उन्हीके लिखे अनुसार चल रही हू। उसीसे माताजीकी तवीयत अच्छी हो रही है। जो क्रम इस समय है यदि यही रहा तो शीघ्र ही वे अच्छी हो जायंगी।

आपने मेरे कारण गृहस्थीकी ओरसे अपने निश्चिन्त होनेकी जो बात लिखी है वह आपकी मुझपर दया है, वह आपका मुझ-पर प्रेम है। मैं अल्पज्ञ अज्ञानी हूं। मुझे सांसारिक कामोंका अनुभव प्राप्त करनेका भला अवसर कैसे मिल सकता है। फिर भी जो कुछ मैं करती हूं वह आपकी शिक्षाका प्रभाव है।

आपने सम्बोधनके ऊपर बहुत विचार किया है। आपको मालूम होगा कि हमलोग अपने पतिके द्वारा किसी भी शब्दसे सम्बोधित होना पसन्द नहीं करतीं। भिन्न व्यक्तिके लिये सम्बोधनका प्रयोग किया जाता है, हमलोग अपनेको पतिका अंग समझती हैं। अंगके लिये तो सम्बोधन ही नहीं होता है, फिर उसके भले बुरेका विचार कैसा।

आजकल माताकी बीमारीसे फुरसत बहुत कम मिलती है, जब फुरसत मिलती भी है तब माताजी काम करने नहीं देतीं। वे कहती हैं विश्राम कर लो नहीं तो तबीयत खराब हो जायगी। अतएव रूमाल वगैरह कुछ तैयार न कर सकी। सिर्फ दो रूमाल तैयार हैं, एक पंखा अवश्य बनाया है। पर अभी भी उसमें कुछ काम बाकी है, तैयार होनेपर भेजूंगी।

आपके दर्शनोंके लिए मैं उत्सुक हूं, पर आप अपना अवकाश देखकर इसकी व्यवस्था कीजिएगा। शरीरपर ध्यान रखनेके लिए माताजीकी ओरसे मैं लिखती हूं। मेरा सादर प्रणाम ग्रहण कीजिए।

आपकी

....

राजेश्वरी वहांसे उठकर अपनी सासके घरमें गयी। उसके हाथमें पत्र था। सासने कहा—"क्या बच्चाके यहांसे चिट्ठी आयी है, कुशलसे तो है न?" राजेश्वरीने सिर झुकाकर हां कहा। पुनः वह बैठ गयी और पंखा बनाने लगी। सासने उसकी ओर देखकर कहा—"तू तो अपने घरमें विश्राम करने गयी थी न, पर मैं समझती हूं कि तुझे वहां जानेपर पत्र मिला और पढ़कर तू उसका उत्तर लिखने बैठ गयी, यही तुम्हारा विश्राम है, क्यों मैं सच कहती हूं न?" राजेश्वरीने कुछ भी नहीं कहा।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। अब राजेश्वरीकी सासकी तबीयत बिलकुल अच्छी हो गयी है। वे पूजा-पाठ पहलेके समान

करने लगी हैं। कभी कभी राजेश्वरीके कामोंमें भी मदद देनेके लिए जाती हैं, पर वे डरती डरती जाती हैं, क्योंकि उनके काम करनेसे राजेश्वरी नाराज होती है, मन ही मन कुढ़ती है। पर उसकी सास भी नहीं चाहती कि राजेश्वरी ही अकेली घरका सब काम करे। नौकरानी भरदिन रहती है, वह भी काम करती है, फिर भी राजेश्वरीको फुरसत कम रहती है। उसकी आदत कुछ ऐसी पड़ गयी है कि जबतक वह अपने हाथों सब काम नहीं करती तबतक उसका चित्त प्रसन्न नहीं रहता। उसकी सासको यह सब अच्छा नहीं लगता था। वे चाहती थीं कि मेरी बीमारीमें बहूने बड़ा परिश्रम किया है अब उसे कुछ दिनों विश्राम करना चाहिए। इसके लिए उन्होंने बहूको बहुत समझाया बुझाया, पर बहूने एक भी बात न सुनी। सास जब बहुत कहती थीं तब बहू कहती थी—"क्या मुझसे कुछ अपराध हो गया, क्या कोई गलती हो गयी है, अच्छा अबसे सावधानी रखूंगी, आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें।" सास हंसने लगतीं, कोई उत्तर उनसे देते नहीं बनता। यही सास और बहूका झगड़ा था।

इसी समय एक ऐसा अवसर आया जिससे सासका मनोरथ पूरा हो गया। राजेश्वरीकी ससुरारसे एक कोसपर एक देवस्थान था। वहाँ गर्मीके दिनोंमें प्रायः दूर दूरके लोग आते थे। कोई वहां आकर भागवत सुनता था और कोई हरिवंश। इसी प्रकार कथा पुराण सुननेके लिए लोग आया करते थे। राजेश्वरी-

के पिता भी इस वर्ष वहीं आये थे। अपनी माताको अर्थात् राजेश्वरीकी सासको भागवत सुनानेके लिए ले आये थे। वहींसे राजेश्वरीकी दादीने राजेश्वरीकी सासके पास एक पत्र भेजा था। पत्रमें अपने वहां आनेकी बात थी और लिखा था कि हम लोग एक महीने यहां ठहरेंगे, यदि आप कृपाकर राजेश्वरीको भेज दें तो वह भी कथा सुनेगी और एक महीनेके बाद यहींसे चली जायगी। इस पत्रको पाकर राजेश्वरीकी सास बहुत प्रसन्न हुईं। इसलिए नहीं कि राजेश्वरी उनकी आंखोंका कांटा थी और इसलिए भी नहीं कि राजेश्वरीसे उनको कुछ दुःख पहुंचता हो, किन्तु उन्होंने सोचा था कि इस प्रकार राजेश्वरीको कुछ विश्राम मिलेगा। उन्होंने राजेश्वरीके जानेकी सब तैयारी कर दी और ठीक समयपर उसे भेज दिया। राजेश्वरीकी सासने समझा कि वहां जाकर इसे काम कम करना पड़ेगा, यह सुखी होगी।

राजेश्वरी यथासमय पहुंची, दादी पहले सेही उसके आनेकी बाट देख रही थी। राजेश्वरीने जाकर उनको प्रणाम किया, पिता माताको भी प्रणाम किया। दादीने कहा, "क्यों बेटी, दुबली क्यों हो गयी हो, क्या कुछ दुःख था।" राजेश्वरीने कुछ उत्तर न दिया। वह चुप हो रही। पुनः सब लोग अपने अपने काममें लगे।

प्रातः काल और सन्ध्याकाल कथा होती थी। ६ बजेके बादका समय भोजन तथा अन्य कामोंमें व्यतीत होता था। भोजन आदिसे जो समय बचता था उसीमें दादी कथा सुनाने होनेपर

होनेवाले हवन, ब्राह्मणभोजन आदिकी भी तैयारी करती थी। कपड़ा रंगने तथा स्त्रियोंके लिए साड़ी तैयार करनेका काम राजेश्वरीको सौंपा गया था। आज दादीने राजेश्वरीको बुलाकर पूछा, "क्यों बेटी, साड़ियां तैयार हो गयी, गोट चढ़ गया?" राजेश्वरीने कहा, "नहीं, अभी सब तो तैयार नहीं हुई हैं, कुछपर गोट चढ़ना बाकी है।" दादीने कहा,"बेटी, जल्दी कर, देर करनेसे काम कैसे चलेगा। परसों कथा समाप्त होगी, उसी दिन पूजापर ये सब चीजें चढ़ानी होंगी।" राजेश्वरीने कहा, "आज सन्ध्यातक तो सभी साड़ियां तयार हो जायंगी।" दादीने कहा, "अच्छा।"

सन्ध्याके समय कई साड़ियां, कुरते ले जाकर राजेश्वरीने दादीके सामने रख दिया। साड़ियोंको देखकर दादी बहुत प्रसन्न हुई। कई साड़ियोंपर गोट चढ़ाया गया था। कइयोंपर सूईका बड़ा सुन्दर काम किया गया था। इन साड़ियोंको देखकर दादीने कहा, "बेटी, तुमने तो बड़ी जल्दी ये साड़ियां तैयार की हैं। मैंने तो सिर्फ गोट लगानेकी ही बात कही थी।"उसी समय राजेश्वरीके पिता वहां आ गये। दादीने कहा, "देखो बच्चा, अपनी बेटीकी कारीगरी। यह ठीक ठीक राजेश्वरी ही है।" वे हंसने लगे।

यथासमय कथा समाप्त हुई, हवन आदि हुआ। हवनके दूसरे दिन ब्राह्मणभोजन हुआ। राजेश्वरी तथा उसकी माता आदिने ही मिलकर भोजनकी सब सामग्रियां तैयार की थीं। ठीक समयपर भोजन तैयार हुआ। ब्राह्मणगण भोजन करके बहुत प्रसन्न हुए। घरवालोंने भी भोजन किया। उस दिन निश्चय

हुआ कि कल प्रातःकाल राजेश्वरी ससुराल भेज दी जाय, और दोपहरके बाद हम लोग जायं। राजेश्वरीके देवर भी आये हुए थे। दादीने कहा कि प्रातः काल ठीक मुहूर्त नहीं है, अतएव राजेश्वरी ७ बजेके बाद जायगी। यही सलाह पक्की रही।

राजेश्वरी जायगी, इसलिए दादीने दो घड़ी रात रहतेही सबको उठाया। राजेश्वरीकी माताको और सब तैयारी करनेके लिए कहकर स्वयं दादी राजेश्वरीकी देहमें उबटन लगाने लगी। राजेश्वरीने कहा, "दादी, तुम क्यों तकलीफ उठाती हो और इसकी जरूरत ही क्या है?" दादीने कहा, "जरूरत है कि नहीं, यह तुमसे मैं अधिक जानती हूं।" राजेश्वरी चुप हो गयी। दादी कहने लगी-बेटी, अब तो उबटनके दिन गये। साबुनसे मुंह मलना ही आज कलकी लड़कियोंको पसन्द है। साबुन लगानेसे शरीरका चमड़ा कड़ा हो जाता है। सुनती हूं इसमें चर्बी मिली रहती है। हमलोग तो ऐसी चीजको छूना भी पाप समझती हैं, फिर शरीरमें लगानेकी कौन कहे। कोई लाभ भी तो नहीं। हमलोगोंको तो उबटन ही पसन्द है, साबुन नहीं। हमारे यहांकी यही रीति है। साबुन लगानेसे शरीर फट जाता है। चूना, चर्बी, सज्जी मिट्टी, सोडा आदिसे वह तैयार होता है। लोग कहते हैं कि साबुनसे शरीर मुलायम होता है, पर मैं तो देखती हूं, इससे अनेक बीमारियां पैदा होती हैं। पहले यहां ये रंग बिरंगे साबुन नहीं थे और न ये बीमारियां ही थीं। पहले यहांके लोग प्रतिदिन तेल लगाते थे और इससे वे सदा सुखी, स्वस्थ, सबल तथा दीर्घजीवी होते थे।

इस समय हमलोग विलायतवाली चीजियोंका अनुकरण कर रहे हैं इसीसे हमारी यह दुर्दशा भी हो रही है। हमारा तो विश्वास है कि हमारे यहांकी शरीरमें लगानेवाली चीजोंका पता यदि विलायतवालोंको लग जाय तो वे साबुनका उपयोग कभी न करें। उबटन कई तरहके होते हैं। कच्चा दूध, घी और मैदा मिलाकर शरीरमें लगाया जाता है। इसके लगानेके थोड़ी देर बाद स्नान करना चाहिए। इससे शरीर सुन्दर हो जाता है, चेहरा चम चम चमकने लगता है। इसी तरह और भी कई तरहके उबटन हैं।

राजेश्वरीने कहा—एक दो बतलाओ न।

दादी—अच्छा सुनो, पद्मपत्र, लोध और अर्जुनका फूल इन तीनोंको पीसकर शरीरमें लगानेसे दुर्गन्धि जाती रहती है। और सुनो; तिल,सरसों,दारुहल्दी,दूब,गोरोचन और कूट बराबर भागमें इनको पीसकर शरीरमें लगानेसे शरीर स्वच्छ होता है, सुगन्धित होता है। बहुत लोगोंके पसीनेमें बदबू होती है, उसके लिए हरे, मोथा, चन्दन, नागकेशर, वेनकी जड़, लोध, कूट और हल्दी इन सबको जलसे पीसकर दिनमें कई बार लगानेसे बदबूका आना दूर हो जाता है। हर्रे और मोथा समान भाग, कूट चौथाई भाग,इनको पीसकर शरीरमें लगानेसे शरीर सुगन्धित हो जाता है और यह सुगन्धि देर तक रहती है। जवानीमें अकसर लोगोंके मुंहमें मुहासे निकल आते हैं। उसके लिए इन्हीं चीजोंमे मरिच और गोरोचन मिलाकर मुंहपर लेप करना चाहिए। इससे सब दाग छूट जाते हैं। सफेद सरसों और तिल दूधके साथ पीसकर मुंहमें

सात आठ दिनों तक लगानेसे मुंहकी कान्ति बढ़ती है। यदि किसीके मुंहपर काले काले दाग हों तो उसके लिए मैनसिल, पठानी लोध,हल्दी, दालचीनी समान भागमें लेकर जलमें पीसकर लगावे, इससे सब काले दाग छूट जाते हैं, चेहरा खिल जाता है। ऐसी अच्छी अच्छी चीजोंके रहते भी यदि साबुनके उपयोगसे शरीर खराब किया जाय तो इसे अभाग्यही समझना चाहिए। यदि जल्दी हो तो केवल बेसनसे ही शरीर धो लेना चाहिए। यह साबुनसे अच्छा है। साबुनके जो गुण बतलाये जाते हैं वे सब गुण इसमें हैं पर दोष नहीं। सरसोंकी ताजी खलीसे भी कुछ लोग देह धोते हैं। पर खलियोंमे फुलेलकी खली सबसे अच्छी है। उसका व्यवहार करनेसे तुम प्रसन्न होओगी। उसके लगानेसे शरीरसे सुगन्धि आती है, चमड़ा मुलायम होता है, शरीर फटता भी नहीं।

दादी अपना काम भी करती जाती थीं और बातें भी कहती जाती थीं,पर उनकी बातें कामकी होती थीं। उन्होंने इस प्रकरण-को छोड़कर दूसरा प्रकरण उठाया। उन्होंने कहा, "बेटी, आज-कल जिधर देखो उधर नयी नयी बातें देखी जाती हैं। यदि नयी बातें अच्छी हों तो उनके ग्रहण करनेसे लाभ ही होता है, पर यह बात नहीं है। अब देखो न, आजकल मुंह धोनेके लिए कई तरह तरहके मंजन बनाये गये हैं। सफेद मिट्टी तथा कुछ सुगन्धि मिलाकर दन्तमंजन, वज्रदन्त आदि नाम दिये जाते हैं और चार आने आठ आने डब्बीके भावसे बिकते हैं। इन- दन्तमंजनोंसे

यदि कुछ लाभ होता हो तो इसके खिलाफ मुझे कुछ कहना नहीं है, पर पैसा बरबाद होनेके सिवा इनसे और कुछ तो नहीं होता। यह एक फैशन हो गया है। हम लोगोंके सिरपर फैशनका भूत सवार है। बड़ी मेहनतसे दो पैसेका रोजगार करते हैं फिर फैशनकी सूझती है, हमारी रीति नीति उन्हे पसन्द ही नही। आजकल स्त्रियां भी फैशनपर बेतरह लट्टू हुई जाती हैं। इसे अभाग्यके सिवा और क्या कह सकते हैं? आजकल नीम,गूलर, बड़ आदिकी दातूनसे मुंह धोनेका रिवाज नहीं रहा। इस समय लोग टूथ-ब्रसका व्यवहार करते है। वह हड्डियोंका बनता है, उसमें बाल किसके लगाये जाते हैं इसका ठिकाना नहीं। पर वे अशुद्ध हैं, छूनेके योग्य नहीं है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकारसे कोई लाभ भी नहीं। आजकलके जवानोंके प्रायः दांत ख़राब होते हैं। ३० वर्षकी उमर होते न होते लोगोंके दांत खराब हो जाते हैं। किसीके दांत हिलने लग जाते हैं, किसीके दांतमें दर्द होता है, किसीके दांत कमजोर होजाते है,उनसे कोई कड़ी चीजें नहीं टूटती। अब मेरी ओर देखो। मैं इतनी बूढ़ी हुई, पर अभी भी मजेमे चने चबा सकती हूं। जानती हो क्यों ? इसका कुछ विशेष कारण नहीं है। मैं प्रतिदिन कड़वा तेल और सेंधा नमकसे मुंह धोती हूं। इसीका यह फल है। यदि मंजनका ही व्यवहार करना चाहो तो घरमे वह तैयार किया जा सकता है। सस्ता और लाभदायक होगा।

राजेश्वरीने पूछा—मंजन कैसे बनाया जाता है, दादी ?

दादीने कहा—अच्छा, मैं तैयार कर भेज दूंगी।

राजेश्वरीने कहा—मुझे क्यों नहीं बता देतीं, मैं ही बना लूंगी।

दादी—तू तो मेरी सब विद्या ही सीख लेना चाहती है, अच्छा सुनो। बादामका छिलका (जलाकर),काली मिर्च, सेंधा निमक और फिटकिरी इन सबको पीसकर एक साथ मिलाकर रख दो, अच्छा दन्तमंजन हो गया। इससे दांत साफ होते हैं तथा अनेक बीमारियां दूर होती हैं। केवल तेजबल ही पीसकर रख दिया जाय और उससे दांत धोया जाय तो दांत साफ हो जाते हैं, मुंह सुगन्धित होता है तथा चित्त प्रसन्न होता है। पीपरामूल, घी और शहद् बराबर लेकर एक महीनेतक खाय तो मुंह सुगन्धित हो जाता है। जटामांसी, नागकेसर और कूट, इनको पीसकर सांझ सवेरे मुंह धोवे तो मुंह सुगन्धित हो जाता है। इसी प्रकारके और भी अनेक दन्तमंजन हैं, जिनसे लाभ है और पैसा भी कम खर्च होता है। इन सब चीज़ोंके रहते हमारे स्त्री पुरुष जो बुरी चीजें पसंद करते हैं उसके लिए दुःख करनेके सिवा और क्या कहा जाय। एक बात होती तो समझा जाता कि चलो कुछ विशेष हानि नहीं। पर जिधर देखो उधर ही फैशनपर समूचा देश चलि हो रहा है, हानिलाभका किसीको ध्यान नहीं। सिरमें लगानेवाले तेल हीकी दशा देखो, आजकल नये नये तेल निकले हैं, उनके सुन्दर सुन्दर नाम हैं,सुन्दर शीशियां हैं। अच्छे कागजके बक्समें शीशी रखी जाती है, किसी स्त्रीका सुन्दर चित्र

छापा जाता है। बस युवक और युवतियां इसीपर लट्टू हैं। पैसा तो नष्ट होता ही है स्वास्थ्य भी नष्ट होता है। ये तेल हैं क्या? नारियलके तेलमें रंग मिला दिया, सुगन्धित विलायती अर्क मिला दिया और लिख दिया कि मस्तकके समस्त रोगोंका एक मात्र महौषध। पर सोचनेकी वात है कि क्या इन तेलोंसे सिरका दर्द दूर हो सकता है। पर इन बातोंको सोचे विचारे कौन? सबूचा समाज तो फैशनके पीछे पागल हो रहा है। हमारे यहांके गाजीपुर, जौनपुर, कन्नौज आदिके बने तेल क्या बुरे हैं? क्या ये सुगन्धित नहीं होते? पर अब ये चीजें किसीको सुहाती नहीं, कोई इनकी ओर भूलकर भी देखना नहीं चाहता। इसे समयका फेर ही कहना चाहिए।

मैं इसे समयका फेर इसलिए कहती हूं कि असली कारणका पता नहीं है। हमलोग जो सुगन्धित तेल बनाती हैं वह अच्छा होता है, उससे फायदा होता है और उसकी सुगन्धि भी अच्छी होती है, दाम भी कम लगता है। उसके लिए किसीका मुहताज भी रहना नहीं पड़ता। जब जरूरत हो घरमे बना लो। न किसी शहरमें जानेकी जरूरत, न वी० पी०के लिए आर्डर भेजनेका झंझट। इतने लाभोंके रहनेपर भी जब इन तेलोंको कोई पूछता नहीं, बाजारके दूकानदारी तेलपर लोग लट्टू हो रहे हैं, तो इसको समयका फेर छोड़कर क्या कहा जाय?

समझती हो बेटी, समय बड़ा टेढ़ा है, सभी अपने मनके गुलाम हो गये हैं। जिन चीजोंका व्यवहार धनी करते हैं, गरीब

या कम आमदनीवाले भी उन्हीं चीजोंका व्यवहार करना चाहते हैं। धनी लोग सोनेके गहने पहनते हैं, गरीबोंको सोनेके गहने बनानेके रुपये नहीं हैं तो न सही. वे पीतलके ही गहने पहनेंगे, देखनेमे पीले तो मालूम पड़ेंगे। चिन्ता काहेकी। १।) रुपयेमें चन्द्रहार लीजिए। इसी तरह सब हो रहा है। बेटी, मैं गहनोंको बुरा नहीं समझती। भगवान् जिसे दे उसे गहने पहनने ही चाहिए। पर गहने पहननेके पीछे पागल होना अच्छा नहीं। भला सोचो, जो लोग पीतलके गहने खरीदते हैं चाहे थोड़े ही दामपर खरीदते हों पर वह सब व्यर्थ होता है इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि वह पीतल किसी काम नहीं आता. उसकी न तो कोई दूसरी चीज बन सकती है और न वह बिक ही सकता है। उसकी चमक दमकका दाम लिया जाता है। चमक दमक तो दिनकी चीज है। पानी पड़ा खतम। पर यह सीधी बात आजकलके लोगोंको समझमें नहीं आती।

इसी समय चूड़ी पहनानेवाली आयी। दादीने उससे पूछा, "क्यों रे! देशी चूड़ी लायी है?" उसने कहा, "भला देशी चूड़ी मैं क्या समझकर लाती। वह क्या अच्छी होती है? चार पैसेकी चीज भला क्या अच्छी होगी? मैं बढ़िया बढ़िया चूड़ियां लायी हूं, आप पसन्द करें।"

दादीने कहा—देशी चूड़ी लाओ।

वह झल्लायी, झल्लाकर बोली—सभी बड़े घरोंमें मैं ये ही चूड़ियां पहनाती हूं। देशीको कोई पूछता भी है, फिर मैं रखूं क्यों?

दादीने कहा—जा।

उसके जानेपर दादी कहने लगी—क्या हम लोगोंका सर्वनाश हो रहा है? अब हम लोगोंके सौभाग्यकी चीजें भी विदेशसे आने लगीं, चूड़ी महावर आदि। इससे बढ़कर बुरे दिन क्या होंगे! भगवानकी इच्छा!

दादीने राजेश्वरीके जानेके समयके ठीक दो घंटे पहले सब काम खतम कर डाले। दादीके सब कामोंमे विशेषता थी। वे काम करने लगती थीं तो घबड़ाती न थीं। काम शुरु करनेके पहले ही वे इस बातका निश्चय कर लेती थीं कि कितने समयके भीतर इस कामको समाप्त कर देना चाहिए, पुनः वे इस बातका निश्चय करती थीं कि किस प्रकार करनेसे यह काम इतने समयके अन्दर हो जायगा। इस प्रकार उस कामके संबंधकी सभी बातें पहले ही निश्चित करके वे काममें हाथ लगाती थीं और ठीक समयपर उनका काम खतम हो जाता था। दादी राजेश्वरीका शृंगार तथा उसके जानेकी और सब तैयारी कर रही थीं, उस समय वे प्रत्येक वस्तुके विषयमें आवश्यक उपदेश भी देती जाती थीं। सुननेवाले घबड़ाते थे। वे मन ही मन कहते थे,"इतना काम करना है जल्दी कैसे होगा? उसमे भी दादी स्वयं कर रही हैं, हम लोगोंको करने नहीं देतीं। आप भी जल्दी जल्दी हाथ नहीं चलातीं।" पर डरके मारे दादीसे कोई साफ साफ कुछ कह न सका। जब दादीने दो घंटे पहले ही सबसे कह दिया कि सब तैयारी ठीक है अब लड़कीको भेज दो, तब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

ठीक समयपर राजेश्वरी भेज दी गयी। पहले विचार था कि सवेरे राजेश्वरीको भेजकर सन्ध्याको हम लोग चलेंगे, पर राजेश्वरीके जानेपर लोगोंके विचार बदल गये और इसका कारण राजेश्वरीका जाना ही था। राजेश्वरीके जानेसे लोग उदास हो गये, लोग थक से गये। किसीको भी इस बातका स्मरण न रहा कि आज हमलोगोंको भी जाना है। सब लोग यों ही बिना किसी कामके चुपचाप बैठे रहे। जानेका समय भी बीत गया। दादीने कहा, "मुझे मालूम होता है कि अभी हमलोगोंको कुछ और यहां ठहरना पड़ेगा।" लोगोंने जब इसका कारण पूछा तब दादीने बतलाया कि यहांसे जानेका जी नहीं चाहता।

छठी शिक्षा
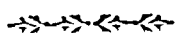
यथासमय राजेश्वरी अपनी ससुराल पहुंची, वहां जाते ही उसने अपनी सासकी जो दशा देखी उससे वह व्याकुल होगयी। उनकी बीमारी बहुत बढ़ गयी थी, वे खाटपर पड़ी थीं, कोई सेवा-शुश्रूषा करनेवाला न था। नौकरानियां थीं, पर सिवा छोटी छोटी सेवाके और वे क्या कर सकती थीं, रोगीकी सेवा किस प्रकार करनी चाहिए, इस बातकी उन्हें कोई शिक्षा तो थी ही नहीं। इस कारण राजेश्वरीकी सासकी तबीयत और खराब हो गयी थी। राजेश्वरीने आते ही उनका बिछौना साफ किया दूसरा साफ धुला हुआ बिछौना बिछा दिया, कपड़े बदलवाये, वैद्यको बुलाया। यह सब व्यवस्था करके उसने एक पत्र अपनी दादीको लिखा, उस पत्रमे यहांकी दशा उसने लिखदी। राजेश्वरीने जिस आदमीको डाक्टर बुलानेके लिए भेजा था वह लौट आया। उसने कहा, डाक्टर साहब आते हैं, दो तीन जगह देखने गये हैं, देखकर आनेको उन्होंने कहा है। यथासमय डाक्टर साहब आये, आकर रोगीको देखकर उन्होंने कहा, बड़ी सावधानीकी जरूरत है रोगीकी अवस्था खराब हो सकती है। रोगीके लिए नुस्खा लिखकर वे चले गये।

राजेश्वरी बराबर अपनी सासके साथ बैठी रही, वहांसे उठी

भी नहीं। तीन वज गये। नौकरानीने कहा, "वह, अपने भोजनके लिए कुछ वनालो, इस तरहसे रहनेसे कितने दिनोंतक ठहरोगी" राजेश्वरीने कुछ उत्तर नहीं दिया। नौकरानी रसोईके लिए सव ठीकठाक करके लौट आयी। उसने कहा, "तुम जाओ मैं रहती हूं।" राजेश्वरी रसोई वनाने गयी। क्या २ करना होगा यह सव उसने नौकरानीको वता दिया। इसी समय डाक्टरकी दूकानसे दवा लेकर आदमी आया। राजेश्वरी रसोईमेंसे आयी और डाक्टरकी वताई विधिसे उसने दवा दी। पुनः वह रसोई वनाने चली गयी। रसोई वनाकर राजेश्वरीने भोजन किया।

सन्ध्या हो गयी थी, राजेश्वरी अपनी सासके पास वैठी थी। एक आदमी चिट्ठी लेकर आया। चिट्ठी राजेश्वरीकी दादीके यहां-से आई थी। राजेश्वरीने चिट्ठी पढ़ी, उससे उसका मन कुछ प्रसन्न हुआ। दादीने लिखा था कि हमलोग अभी घर नहीं गये हैं, यहीं हैं, कल हम और तुम्हारे वाप आवेंगे, तुम्हारी सासकी जैसी अवस्था होगी, वैसा किया जायगा, तुम घवड़ाना मत, सावधानी-से रहना, सव ठीक होगा।

किसी प्रकार दिन वीत गया। रात आयी। कहते हैं कि रात को चोर तथा वुरे आदमियोंका वल वढ़ जाता है। यह वात वहुत सच मालूम पड़ती है। राजेश्वरीकी सासकी तवीयत रातको वहुत खराव हो गयी। राजेश्वरीने नौकरानीको यहीं रहनेके लिये कहा था और वह रही भी, पर उसको सोनेकी वड़ी विकट आदत थी, थोड़ी देर भी जगी नहीं रह सकती थी, जल्दी जागती

भी न थी। इस कारण जब जब जरूरत पड़ी, राजेश्वरीने उसको जगानेमें समय नष्ट करना अनावश्यक समझा। वह स्वयं सब व्यवस्था करती। बड़े दुःखोंसे रात बीती। प्रातःकाल होते ही गांवमे राजेश्वरीकी सासकी बीमारीकी खबर फैल गयी, बीमारी बड़ी कठिन है, यह बात भी लोगोंने जान ली। इस समय क्या करना चाहिये इस बातकी जहांतहां चर्चा होने लगी। कई लोग रोगीको देखने भी आये। उनमें स्त्रियां भी थी और पुरुष भी। सभीने यह राय दी कि तार भेजकर बाबूको बुला लो, न मालूम क्या हो, बीमारीकी जैसी अवस्था है उससे बचनेकी उमीद नही मालूम होती। आ जानेसे अन्तिम मुलाकात हो जायगी। सभी लोग अपनी अपनी सम्मति देकर चले गये। दस बजनेके समय राजेश्वरीके पिता और दादी आयीं। हाथ पैर धोकर दादी रोगीके पास गयीं, रोगीको उन्होंने देखा। वहीं बैठकर वे पैर मलने लगीं। इसी समय रोगीने आंखें खोलीं। दादीने पूछा, "कैसी तबीयत है बहू, क्या बड़ी तकलीफ हो रही है?" रोगीने कहा "पानी,पानी।"

दादीके कहनेसे राजेश्वरी पानी लेकर आयी, रोगीको पानी दिया गया। दादीने कहा, "बेटी, एक सौंफकी छोटी पोटली बनाकर जलमें डाल दो और वही जल दिया करो।" राजेश्वरीने दादीके कहनेके अनुसार व्यवस्था की। पुनः वह दादीके पास आकर बैठ गयी। उसने कहा, "दादी, मैं बहुत घबड़ा रही हूं, न मालूम क्या होगा।" दादीने कहा,"बेटी, घबड़ानेकी जरूरत नहीं।

घबड़ानेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है और बना बनाया काम बिगड़ जाता है। ऐसे समयोंमें भगवान्का स्मरण करना चाहिये। वे बुद्धि शुद्ध करते हैं, मनुष्यको उपाय सूझने लगते हैं, और वह विपत्तिसे पार हो जाता है।" राजेश्वरीने कहा,"दादी,तुम दो चार दिन ठहर जाती तो अच्छा होता।" दादीने कहा, हां "मैं ठहरूंगी, मैं तो अधिक दिन ठहरती, पर बेटी, तुमको मालूम है न कि हम तुम्हारे घरमें अन्नजल नहीं कर सकतीं। अतएव जबतक तुम्हारी सासकी यह कठिन अवस्था दूर न हो जाती, तबतक मैं अवश्य ठहरूंगी, उसके बाद सब व्यवस्था तुमको बताकर चली जाऊंगी। क्यों, अब तो तुम प्रसन्न हो न?"

राजेश्वरी दादीकी आज्ञाके अनुसार अपनी सासकी सेवा करने लगी। उसका परिश्रम देखकर नौकर-चाकर भी दंग रह जाते थे। नौकर-चाकर जबतक कि कोई काम करनेके लिये तैयार होते थे तबतक राजेश्वरी उस कामको खतम कर देती थी। राजेश्वरीकी तत्परता देखकर दादी बहुत प्रसन्न होती थीं।

आज चार दिनसे दादीकी देखरेखमें रोगीकी शुश्रूषा हो रही है। आज सवेरे दादीने कहा—बेटी, आज अपनी सासके लिये पथ्य बनाओ।

राजेश्वरीने कहा—दादी, डाक्टरने तो अभी भोजन देना मना किया है।

दादीने कहा—डाक्टर जो चाहे कहे, उसे कहने दो। देखती नहीं, रोगीकी दुर्बलता बढ़ रही है। अधिक दुर्बल होना अच्छा

नहीं। एक काम करो, थोड़ासा पुराना चावल ले लो, उसे खूब धोकर अधिक पानीमें बनाओ और गीला ही उतारकर रोगीको दो। हां, बागसे कच्चा बेल मंगा लो, उसे बीचसे तोड़कर उसमें थोड़ा सेंधा नमक डाल दो, फिर उसे पकाओ। पक जानेपर गुद्दी निकालकर मलकर रस्सा बना लो। उस रसमें जीरा और काली मिरिच भी डाल दो। यही झोल और भात रोगीको दो। पर यह सब तुम स्वयं करो, किसी दूसरेसे अच्छा न होगा। जो मैं कहती हूं सो करो, घबड़ाओ न, ज्वर बहुत कम है।

राजेश्वरी पथ्य बनाने चली गयी, दादी रोगीके पास बैठकर पङ्खा झलने लगी। थोड़ी देरके बाद रोगीकी नींद खुली। दादीने कहा कैसी तबीयत है, तुम सो गयी थी, इसीलिये मैंने जगाया नहीं। दवा खा लो।

दादीने राजेश्वरीको पुकारा, वह आकर दवा दे गयी। राजेश्वरीकी सासने दादीसे कहा—मां, अब नहीं सहा जाता, नन्हीसी बच्ची कितनी तकलीफ उठा रही है, सो भी मेरे लिये, मैं मर ही जाऊंगी तो क्या हो जायगा? न मालूम मैं कबतक ऐसी पड़ी रहूंगी, मर जाती तो कल्याण होता।

दादीने कहा—यह तुम कहती क्या हो? तुम्हारे मरनेकी जरूरत नहीं है, मरनेके लिये तो मैं तैयार हूं। तुम जी बेटा और बहू लेकर संसार चलाओ। क्या कुछ भूख लगी है, खाओगी?

राजेश्वरीकी सासने कहा—क्या खाऊं मां? भूख तो है, पर बार्लीके नामसे जी कांप जाता है।

दादी—अच्छा, थोड़ा भात खा लो।

रा० सा०—क्या डाकृर भात खानेको देगा?

दादी—डाकृर वैद्यकी बात तो मैं जानती नहीं। हां, यदि तुम भात खाना चाहो तो थोड़ा खा लो, मैंने बनवाया है।

रा० सा०—जैसी आपकी इच्छा। पर बालों मैं न खाऊंगी।

दादीने राजेश्वरीको पुकारकर पूछा "क्या हाल है?" उसने कहा "थोड़ी देरमें तैयार हो जायगा, भात उतार आई हूं।"

थोड़ी देरमें राजेश्वरी रोगीके लिये पथ्य लेकर आयी। उसने रोगीको उठाया और भोजन कराया। भोजन करनेके पश्चात् रोगीको बड़ी प्रसन्नता मालूम हुई। भोजन रुचिकर भी मालूम हुआ। रोगीने मनही मन राजेश्वरीको आशीर्वाद दिया।

रोगीके भोजनके समय दादी घरके बाहर चली गई थी, उन्होंने राजेश्वरीसे कह दिया था कि अधिक भोजन मत करने देना। अनिष्टकी सम्भावना तो नहीं है, पर थोड़े थोड़ेसे बढ़ाना अच्छा होता है। राजेश्वरीने दादीके कहनेके अनुसार ही किया था।

दादीकी चिकित्सा और परिचर्यासे राजेश्वरीकी सास शीघ्र ही नीरोग हो गयी। राजेश्वरी बहुत प्रसन्न हुई। उसी दिन दादी अपने जानेका प्रबन्ध करने लगीं। राजेश्वरीका मन उदास हो गया, उसने साफ साफ तो कुछ कहा नहीं, पर उसके चेहरेसे मालूम पड़ता था कि वह चाहती है कि दादी कुछ दिनोंतक और रहें। दादीने बड़े अच्छे ढंगसे उसे समझा दिया। उसको सासको तथा उसको आशीर्वाद देकर वे चली गयीं।

राजेश्वरीकी सास अच्छी होनेपर इस बातका प्रयत्न करने लगीं कि मेरी बहूको कुछ काम न करना पड़े। वे राजेश्वरीसे बनावटी झगड़ा कर लेती थीं और अपना काम खुद करती थीं। राजेश्वरी इस बातको जानती थी, इसीसे उसके मनमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता था। सासके नाराज होनेपर भी वह उनका सब काम जबरदस्ती कर आती थी, उनको एक भी काम नहीं करने देती थी। राजेश्वरीके यह सब 'ढंग देखकर सासने एक दिन कहा था कि मेरी देवी, मैं तुमसे हारी।

राजेश्वरीने सासके अच्छी होनेका वृत्तान्त अपने पतिको लिख दिया था। अपना बनाया रूमाल और पङ्खा भी भेजा था, उसको पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

सातवीं शिक्षा

दादी घरकी बहू-बेटियोंपर निगरानी रखती हैं। समय मिलनेपर उनके दोष-गुणोंको बतला दिया करती हैं। वे बहुओं और लड़कियोंसे हर घड़ी काम करवाती हैं, कुछ तो इससे अप्रसन्न होती हैं और कुछ नहीं। राजेश्वरी जब अपने बापके घर आयी तो दादीने उसके सामने कपड़ोंका गट्ठर लाकर रख दिया। उसने बड़ी खुशीसे उसे ले लिया। उसमेंसे उसने अच्छे कपड़े अलग कर लिए और पुराने कपड़े अलग। कौन ज्यादा फटा है, कौन नहीं फटा है, यह सब वह देखने लगी। कौन कपड़ा कथरीमें ऊपर रखने योग्य है, कौन भीतर रखने योग्य है, इन सबकी वह व्यवस्था करने लगी। उनमेंसे काले आदि रङ्गोंके किनार निकाल-कर वह दादीको देती जाती थी। दादी उससे सीनेके लिए सूत बटती जाती थी। दादीने राजेश्वरीको यह बता दिया था कि इतनी बड़ी कथरी होगी। राजेश्वरीकी मां लड़के लड़कियोंके साथ दिनरात घरका काम-धन्धा करती थीं, फिर भी समय मिलनेपर दादीके पास उपदेश सुननेके लिए चली आती थीं। आज भी आकर राजेश्वरीके साथ वह कथरी सीने लगीं। पहले राजेश्वरीने चारों ओर किनारे सीये, फिर चौखूंटे छोटे घरकी तरह सीने लगी। इधर उधर लाल पीले हरे इत्यादि अनेक

रंगोसे उसपर खूब बढ़िया सिलाई करने लगी। इस प्रकार चार पांच दिनमें वह कथरी तैयार हुई। यह एक साधारण कथरी थी, इस कारण इतनी जल्दी हो गयी, नहीं तो दो तीन महीनेमें अच्छी कथरी तैयार होती है। राजेश्वरी उसे सीना भी जानती है। राजेश्वरी बेल बूटा काढ़ना जानती है, कपड़ा सीना जानती है और भी मालूम नही कितने प्रकारकी सिलाई करना जानती है। राजेश्वरीने अबकी बार ऐसी अच्छी कथरी तैयार की है जिसे देखकर लोग विस्मित होते हैं। अलगसे देखनेपर मालूम पड़ता है मानों जरीका काम किया हुआ है। दादी कहती है, "ऐसी कथरी पहले बनती थी, पर आजकल तो कोई भी नहीं बनाता।"

कपड़ोंके जो टुकड़े बचे थे, उन्हें दादी इकट्ठा करके रखती। उन्ही सबोंको लेकर दादीने राजेश्वरीसे कहा, "इन सबकी छोटी छोटी लड़कों लायक कथरी सी दो। 'लड़को लायक' यह सुनकर राजेश्वरीका मुंह लज्जासे झुक गया, कान लाल हो गये। राजेश्वरीकी कमर देखकर, देहका भारीपन देखकर, दादीके मनमे सन्देह हुआ था, फिर उसके मुंहकी परीक्षा करके उन्होने जान लिया कि यह गर्भिणी है। नूतन गर्भिणीके पहले पहल गर्भके लक्षण नहीं मालूम होते। पर बहुदर्शी वृद्धा उसे सहज हीमे जान लेती है। दादीने यह शुभ समाचार अपनी बहूको सुनाया। उनके आनन्दका वारपार न रहा। सभी इस संवादको सुनकर आनन्दसागरमें गोते खाने लगे। राजेश्वरी बहुतही लज्जित हुई, पर मन

ही मन आनन्दित होती हुई दादीके पास जाकर बैठ गयी और वहीं छोटी कथरी सीने लगी। एक भविष्यत् कल्पनाके वश आज सभी प्रसन्न हैं। जो हो, आजकल घरमें अनेक तैयारियां होती हैं। वास्तवमे आजकलकी बहुएं विलायती ऊन खरीदकर मोजा, गंजी, गुलुबन्द इत्यादि तैयार करती हैं। जितनेकी ऊन खरीदती हैं उतने हीमे बाजारसे बना बनाया माल मिल सकता है। फिर ऐसा करनेसे क्या मतलब? इससे केवल नामवरी पानेके सिवा और क्या लाभ है? फिर भी यह सब काम जान लेना चाहिए। राजेश्वरी भी यह सब काम पहलेसे ही जानती थी। दादीने धीरे धीरे बिना किसी खर्चके ही घरमें कथरी वगैरह तैयार करवा लिये। गृहस्थ रमणीके घर उनकी हाथके बनायी हुई अनेक चीजें प्रस्तुत रहती हैं। अनेक घरोंमें विशेपकर छोटे छोटे गांवोंमें बहुत सुन्दर सुन्दर कथरियां तैयार होती हैं। उन्हें देखकर लोग मोहित हो जाते हैं। उसी साल महिला-शिल्प-प्रदर्शिनीमें अनेक लड़कियोंके हाथकी बनाई हुई कथरियां तथा और भी कई चीजें आई थीं, जिन्हें देखकर मेम साहिबाने उनकी प्रशंसा की थी। एक कथरी कहींके कलक्टरने ३५) रुपया देकर खरीदी थी। उसे वे विलायत ले गये।

आठवीं शिक्षा

दादीके पास बैठकर राजेश्वरी उसी प्रकार सिलाई कर रही थी। दादी भी कथाके रूपमें अनेक उपदेश दे रही थी। राजेश्वरी मन लगाकर उन्हे सुनती भी जाती थी और अपना काम भी करती जाती थी। इधर कानसे बात सुनती थी और उधर हाथसे सिलाई करती थी। दादीने कहा—इस समय खूब सावधान रहना चाहिए, खूब साफ सुथरा रहना चाहिए, देवता, ब्राह्मण, गुरुजनकी पूजा श्रद्धा और भक्तिसे करनी चाहिए, बहुत पवित्रतासे रहना चाहिए, साफ वस्त्र पहनना चाहिए, जिससे चित प्रसन्न रहे वही काम करना चाहिए। अच्छी अच्छी देवताओंकी मूर्तियां, सुन्दर सुन्दर देवताओंके चित्र घरमें सजाने चाहिए। इस समय मैले कपड़े और अशुद्ध वस्तुका उपयोग नहीं करना चाहिए। क्या घरमें क्या बाहर कहीं भी घृणित वस्तु न रहने देनी चाहिए। हमेशा शुद्ध, स्वच्छ और मनोरंजक वस्तु ही देखनी चाहिए। किसी प्रकारका भोजन जो न पचता हो या जिसे खानेकी इच्छा न हो, उसे न खाना चाहिए और भूखा भी न रहना चाहिए, ऐसा करनेसे लड़केको कष्ट पहुंचता है। गर्भिणीके सुख और स्वास्थ्यपर लड़केका सब कुछ निर्भर है। गर्भिणीको हर दम यह स्मरण रखना चाहिए कि

ही मन आनन्दित होती हुई दादीके पास जाकर वैठ गयी और वहीं छोटी कथरी सीने लगी। एक भविष्यत् कल्पनाके वश आज सभी प्रसन्न हैं। जो हो, आजकल घरमें अनेक तैयारियां होती हैं। वास्तवमें आजकलकी वहुएं विलायती ऊन खरीदकर मोजा, गंजी, गुलुवन्द इत्यादि तैयार करती हैं। जितनेकी ऊन खरीदती हैं उतने हीमें वाजारसे वना वनाया माल मिल सकता है। फिर ऐसा करनेसे क्या मतलव ? इससे केवल नामवरी पानेके सिवा और क्या लाभ है ? फिर भी यह सव काम जान लेना चाहिए। राजेश्वरी भी यह सव काम पहलेसे ही जानती थी। दादीने धीरे धीरे विना किसी खर्चके ही घरमें कथरी वगैरह तैयार करवा लिये। गृहस्थ रमणीके घर उनकी हाथके वनायी हुई अनेक चीजें प्रस्तुत रहती हैं। अनेक घरोंमें विशेपकर छोटे छोटे गांवोंमें वहुत सुन्दर सुन्दर कथरियां तैयार होती हैं। उन्हें देखकर लोग मोहित हो जाते हैं। इसी साल महिला-शिल्प-प्रदर्शिनीमें अनेक लड़कियोंके हाथकी वनाई हुई कथरियाँ तथा और भी कई चीजें आई थीं, जिन्हें देखकर मेम साहिवाने उनकी प्रशंसा की थी। एक कथरी कहींके कलक्टरने २५) रुपया देकर खरीदी थी। उसे वे विलायत ले गये।

आठवीं शिक्षा

दादीके पास बैठकर राजेश्वरी उसी प्रकार सिलाई कर रही थी। दादी भी कथाके रूपमें अनेक उपदेश दे रही थी। राजेश्वरी मन लगाकर उन्हे सुनती भी जाती थी और अपना काम भी करती जाती थी। इधर कानसे बात सुनती थी और उधर हाथसे सिलाई करती थी। दादीने कहा—इस समय खूब सावधान रहना चाहिए, खूब साफ सुथरा रहना चाहिए, देवता, ब्राह्मण, गुरुजनकी पूजा श्रद्धा और भक्तिसे करनी चाहिए, बहुत पवित्रतासे रहना चाहिए, साफ वस्त्र पहनना चाहिए, जिससे चित प्रसन्न रहे वही काम करना चाहिए। अच्छी अच्छी देवताओंकी मूर्तियां, सुन्दर सुन्दर देवताओके चित्र घरमें सजाने चाहिए। इस समय मैले कपड़े और अशुद्ध वस्तुका उपयोग नहीं करना चाहिए। क्या घरमें क्या बाहर कहीं भी घृणित वस्तु न रहने देनी चाहिए। हमेशा शुद्ध, स्वच्छ और मनोरंजक वस्तु ही देखनी चाहिए। किसी प्रकारका भोजन जो न पचता हो या जिसे खानेकी इच्छा न हो, उसे न खाना चाहिए और भूखा भी न रहना चाहिए, ऐसा करनेसे लड़केको कष्ट पहुंचता है। गर्भिणीके सुख और स्वास्थ्यपर लड़केका सब कुछ निर्भर है। गर्भिणीको हर दम यह स्मरण रखना चाहिए कि

भगवानने हमें पैदा किया है और दयाकरके एक और सन्तान दे रहे हैं। गर्भिणी यदि स्वस्थ होगी, तभी लड़का स्वस्थ, सबल और दीर्घजीवी होगा। गर्भिणीका शरीर यदि स्वस्थ न रहा, तो पेटमेंका लड़का क्या स्वस्थ रहेगा? इस कारण हरदम स्वास्थ्यकी ओर ध्यान रखना चाहिए। गर्भावस्थामें बीमार रहनेसे बहुत नुकसान होता है, एक तो गर्भिणी स्वयं कष्ट पाती है, दूसरे इससे लड़का हमेशा अस्वस्थ रहता है और उसकी आयु भी कम होती है। इस अवस्थामें बहुत सावधानी होनी चाहिए। किसी प्रकारका परिश्रम नहीं करना चाहिए, भारी चीज न उठानी चाहिए, दिनको सोना न चाहिए, रातको जागना भी ठीक नहीं, किसी कारण वश चिल्लाना अथवा दौड़ना न चाहिए, इन सबसे बच्चेको बड़ा नुकसान पहुंचता है। किसी प्रकार ठंडक न लगनी चाहिए, रात्रिको सिरमें गरम कपड़ा लपेट लेना चाहिए। गर्भिणीका बिछौना सन्ध्या होते होते घरके भीतर हो जाना चाहिये। संध्याके समयकी ठंड गर्भिणीके लिए हानिप्रद होती है। इस कारण इससे खूब सावधान रहना चाहिए।

गर्भावस्थामें खूब नरम बिछौनेपर सोना चाहिए। इस अवस्थामें खाने पीनेमें भी परहेज रखना चाहिए। जो घरके लोग दें वही खाना चाहिए, अपनी इच्छानुसार कोई काम करना बहुत खराब है। पहले दो तीन मास तक खूब हलका भोजन करना चाहिये, और नहीं, किन्तु इस समय दूधके साथ थोड़ा सा भात खानेसे गर्भिणीका बड़ा उपकार होगा। इसी प्रकार चार

मासतक मक्खन और दूध खाना चाहिये। पांचवें महीनेमें केवल दूध, छठे महीनेमे घी, सातवें महीनेमें दूधके साथ घी खाना चाहिये। इन सबोंका यदि नियमपूर्वक पालन किया जाय तो गर्भमेंका बच्चा तन्दुरुस्त होता है और गर्भिणीका शरीर भी तन्दुरुस्त रहता है।

राजेश्वरीकी मां वहींपर बैठी थी, दादीने उससे कहा—"देखो बहू, तुम तो यह सब जानती ही हो। राजेश्वरीके खाने पीनेपर विशेष ध्यान रखना, जो जो किया जाता है वह सब तो तुम जानती ही हो कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। आदमी तीन प्रकारसे सीखता है। एक तो सुननेसे सीखता है, एक देखकर और एक स्वयं सीखता है। गर्भावस्थाकी सावधानी तीनों तरहसे सीखी जा सकती है, यह प्रथा हमेशासे चली आयी है। कोई काम करनेसे सीखता है, कोई देखकर सीखता है और कोई अपने ही आप सीख लेता है। मैं भी एक समयमें छोटी थी। मैं जब पहले गर्भिणी हुई तब मेरी दादी और मांने मुझे बहुत कुछ सिखाया पढ़ाया था। उन्हीं सब शिक्षाओंसे, उन्हीं सब उपदेशोंके अनुसार मैं काम करती चली आयी। अब मैं भी बुड्ढी होती जाती हूं। राजेश्वरी पहले पहल गर्भिणी हुई है, वह यह सब बातें नहीं जानती, देखने सुननेसे धीरे धीरे सब जान लेगी।" "समझी न राजेश्वरी! तुम भी मेरे समान बुड्ढी होगी, तुम्हारे भी पतोहू आयगी, लड़के होंगे, नाती नातिन होंगी, तब तुम भी इसी प्रकार उन्हें उपदेश देना। समझी?" राजेश्वरीने ज़रा

मुस्कराकर लज्जासे सिर नीचे कर लिया। दादीने कहा, "इसमें लज्जाकी कौन बात है? मैं आज तुम्हारी दादी हूं,मेरी भी दादी थी, तुम भी किसीकी दादी होगी। इसी प्रकार हमेशा होता रहेगा। तुम जिसकी दादी होगी, वह भी किसी दिन किसीकी दादी होगी। अच्छा, अब मैं गर्भिणीके विषयमें कुछ कहती हूं,सुनो। गर्भिणीको पहले पहल दो एक महीनेतक उवान्त होता है। बर्फ खिला देनेसे वह छूट जाता है। भूख न लगनेपर लघुपाक वस्तु खानी चाहिए, इससे सहज हीमें सब रोग छूट जाते हैं। खांसी एक मिश्रीका टुकडा मुंहमें रखनेसे छूट जाती है। गरम जलको ठंढा करके पीना चाहिए। गर्भावस्थामें डाकृरकी दवा न करनी चाहिए। हां, यदि विशेष गडबड़ी हो तो लोगोंकी सलाहके अनुसार डाकृर वैद्यको बुलाना चाहिए।

दादीने किस्सा ही किस्सामें सब बातें विस्तृत रूपसे बता दीं। राजेश्वरी कलकी पुतलीके समान कथरी सी रही थी और बात भी सुनती जाती थी। फिर ज्यादा समय हो जानेपर राजेश्वरी कथरी सीना बन्द करके और दूसरा काम करने लगी।

नवीं शिक्षा

राजेश्वरीके दिन अब पूरे हो गए हैं। अब आजकलमेही बच्चा होनेवाला है। दादीने पहलेसे ही सूतिका-गृहका प्रबन्ध कर दिया था। आजकल हमारे यहां सूतिका गृहपर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। घरहीमे कोने या दरवाजेहीपर टट्टर या पुराने कपड़ेसे घेरकर सूतिका-गृह बना लिया जाता है। जगह कम है अथवा दुर्गन्धि है, इसका कुछ विचार कोई नहीं करता। किसी प्रकार बच्चा पैदा भर हो जाना चाहिए। पर ऐसा ठीक नहीं। सूतिका-गृह ऐसी जगह रखना चाहिए जहां ज्यादा सर्दी, गर्मी या गन्दगी न हो। पर ऐसा शिक्षित और समझदार लोग ही कर सकते हैं और लोग तो सब घर बराबर ही समझते हैं। इस प्रकार कितने ही बच्चे इन सब गड़बड़ीके कारण बिना मारे ही मर जाते हैं। दादीने पहलेहीसे इन सबका प्रबन्ध कर लिया था। आज राजेश्वरीको प्रसवकी वेदना हो रही है। कुछ समयके बाद भगवानकी कृपासे प्रसव हुआ। राजेश्वरीकी मा देवी देवताकी प्रार्थना करने लगीं। दादीने कहा,"बहू, जरा कडू, तेल तो ले आओ।" मांने जल्दीसे एक कूंडीमें तेल ले आकर दे दिया। दादी तेल राजेश्वरीके पेटमे लगाने लगा।

असली प्रसव-वेदनाके लक्षण सब कोई नहीं जानता। पेटमे

ज्यादा वेदना होनेसे प्रसवकी वेदना समझने लगना ठीक नहीं। प्रसव-वेदनाको समझना सबका काम नहीं, जो स्त्रियां इस विषयमें अधिक ज्ञान रखती हैं वे ही समझ सकती हैं। प्रसव-वेदना क्या है? दादी कहती हैं, प्रसव-वेदना पीठमें उत्पन्न होती है और वह पीठसे होकर पेटमें आती है। बीस बीस, पच्चीस पच्चीस मिनटके अन्तरपर यह वेदना उत्पन्न होती है और पुनः शान्त हो जाती है। कभी कभी चार चार पांच पांच मिनट-पर वेदना उत्पन्न होती है और वह शीघ्र शान्त भी नहीं होती। पर वह भी प्रसव-वेदना नहीं है। असली प्रसव वेदना वह है जब वेदनाके साथ साथ जरायुका मुंह कुछ कुछ खुलता मालूम पड़े और जल निकले। जिस वेदनामें जरायुका मुंह खुलता न मालूम पड़े, जल न निकले? उसे प्रसव-वेदना न समझना चाहिए। असली प्रसव-वेदना जितनी शीघ्रतासे हो, प्रसव-काल उतना ही नजदीक समझना चाहिए।

राजेश्वरीके प्रसवके इन सब लक्षणोंको देखकर दादीने धाय बुलानेके लिए आदमी भेजा और वे राजेश्वरीको सौर-घरमें ले गयीं। एक पतले बिछौनेपर उन्होंने उसे लिटा दिया और कहा—थोड़ा गरम दूध लाकर इसको पिला दो। इस समय ठण्ढी चीजें देना ठीक नहीं। प्यास मालूम होनेपर गरम जल ही देना चाहिए। ऐसा करनेसे प्रसूताको प्रसव-वेदना नहीं होती और प्रसव शीघ्र हो जाता है। प्रसव-कालके नजदीक आनेपर प्रसूताको पाखाना जाने और पेशाब करनेकी हाजत मालूम होती

है, यदि इसकी जरूरत हो तो घरमें ही उसकी व्यवस्था कर देनी चाहिए. पुनः उस स्थानको स्वच्छ कर देना चाहिए।

प्रसवके समय आजकलकी स्त्रियां व्याकुल हो जाती हैं। यह बुलाओ, वह बुलाओ, यह लाओ, वह लाओ, हाय कैसे होगा, भगवान रक्षा करो आदि चिल्लाकर घरभरको व्याकुल कर देती हैं। उनकी ऐसी दशा देखकर पुरुषोंका व्याकुल हो जाना स्वाभाविक ही है। इससे कभी कभी हानि भी हो जाती है। ऐसे समयमें हृदयको पोढ़ा रखना आवश्यक है । यह ईश्वरके अधीन है। समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। वेदना शुरू होनेके छः घन्टेके बाद लड़का होना स्वाभाविक है। आजकल नई सभ्यताके अनुसार अर्थात् नई नई चालोंसे प्रसूतिके यथेच्छाचार और विलासिताके कारण कभी कभी स्वाभाविक प्रसव नहीं होता। इसीसे राजेश्वरीको गर्भावस्थामें चुपचाप बैठा रहना दादीको अच्छा नहीं लगता, वे कुछ न कुछ काम उससे अवश्य कराती रहती थीं। वे कहती थीं—इस समय हाथ पैरसे काम लेनेपर शीघ्रतासे प्रसव हो जाता है, किसी प्रकारकी यन्त्रणा नहीं होती। साधारणतः गृहस्थोंके घरमें स्वाभाविक ही प्रसव होता है। गरीब दुःखी तथा छोटे लोगोंकी तो बात ही क्या। उनमेंसे बहुतसे ऐसे होते हैं जिन्हें नारा कटवानेके पैसेतक नहीं मिलते। वेदना हुई, प्रसव हुआ, फिर किसीने जाकर नारा काट दिया। थोड़ी ही देरमें प्रसूति स्वस्थ और सबल हो गयी। यह जो कुछ गड़बड़ी है सो विलासी बड़े आदमी कहलानेवालोंके यहां। दुलारी दुलहिनको

ही अधिक दुःख उठाना पड़ता है। कभी कभी छः घन्टेकी जगह छः दिन प्रसवका कष्ट भोगना पड़ता है। कभी प्रसव स्वाभाविक रूपसे न होकर बालकके हाथ या पैर बाहर निकल आते हैं। ऐसे समयमें अनुभवी डाक्टरों और धायकी जरूरत पड़ती है। सुखमे दुःख हो जाता है। कभी कभी प्रसूतिके उठने बैठनेमे गलती करनेसे उसकी ऐसी अवस्था हो जाती है। पहलेकी शिक्षा और नियमको न मानकर गर्भिणी आज सभ्यता और विलासिताका अनुसरण करती हैं। इससे कितनी ही अस्वाभाविक घटनाएं होती हैं। हमारे बड़े घरोंमें बिना डाक्टर या धाय आये काम नहीं चलता। बड़े बड़े शहरोंमे सब तो रहते नहीं, और गांवमें डाक्टर कहांसे आवें? इस कारण आसपासके छोटे मोटे डाक्टर आकर बिना कुछ समझे बूझे ही दवा दे देते हैं। पहलेके वैद्योंका कहना है कि गर्भिणीको दवा न देनी चाहिए। हां, कोई ऐसा मौका आ जाय जिसमें दवा दिये बिना काम न चले, उस समय दवा देनी चाहिए। यदि प्रसव न होता हो अथवा शिशुका कोई अंग न निकलता हो या इसी प्रकारके अन्य किसी उपद्रवमें दवा देना आवश्यक है। फिर भी किसी अच्छे वैद्यकी सम्मतिके बिना दवा न देनी चाहिए। गावमें जहां डाक्टर नहीं हैं होमियोपैथिक चिकित्सा होती है। पलसिटिला नामक औषध दो तीन बार देनेसे प्रसव सहजमें हो जाता है। गर्भिणीको प्रसवके समय चुपचाप एक जगह बैठना चाहिए, ज्यादा इधर उधर छटपटाना अच्छा नहीं, इससे प्रसवमें तकलीफ होती है। प्रसव-

कालमें गर्भिणीको बायें करवट सोना चाहिए, हाथको सिरके नीचे रखना चाहिए। दोनो पैर सीधे फैलाकर रखना चाहिए। इससे सहजमें प्रसव हो जाता है। कोई कोई चित्त होकर प्रसव करना ठीक समझती हैं। यदि व्यथा धीरे धीरे बन्द हो जाय तो मुंहमें वाल लगाकर अथवा मुंहमे अंगुली लगा कर कै कर देना चाहिए।

अबकी बार राजेश्वरीको जोरसे व्यथा होने लगी, धाय भी आई थी। दादीने कहा—"देखो धाय, यह पहला प्रसव है, जरा सम्भाल रखना।" धायने कहा—"डर किस बातका है, मां? भगवानकी दयासे अभी सब ठीक हुआ जाता है।" राजेश्वरीसे कहा—"हां बहू, जरा कांखना तो" "वाह, मांजी हो गया।" इसी समय दादी राजेश्वरीको कांखनेके लिए उत्साहित करने लगी। प्रसव-द्वारसे लड़केका मुंह निकला जानकर दादीने कहा—"देखो, जरा सम्हालना।" इसी समय धायको सावधान रहनेकी जरूरत है, नहीं तो प्रसूतिको हानि होनेकी सम्भावना रहती है। बालकके मुंहपर जो कफ और लार आदि लिपटा रहता है उसको भी सावधानीसे साफ करनेकी जरूरत होती है, नही तो वह मुंहमें और नाकमे घुस जाता है और बालकका सांस बन्द कर देता है। यदि मालूम पड़े, बालकके गलेमे लार लिपटा हुआ है तो बड़ी सावधानीसे अंगुलियों द्वारा उसे अलग कर देना चाहिये, जिससे बालकके गलेसे निकल जाय। प्रायः लोग बालकका मस्तक निकलते ही उसके

बाकी शरीरको खींचकर निकालनेका प्रयत्न करते हैं, पर यह अच्छा नहीं है। थोड़ी देर ठहर जानेसे आपही आप समस्त शरीर बाहर हो जाता है। खींचकर बाहर निकालनेसे प्रसूति और बालक दोनोंके प्राणोंका भय रहता है। इसीलिये दादी धायको सब विषयोंमें सावधान रहनेके लिये कहा करती थी। वह धाय भी कुछ ऐसी वैसी नहीं थी। उसने भी कई बार प्रसव कराया था। यद्यपि उसने स्कूल कालेजमें पढ़ा नहीं है, पर इस विषयमें उसकी निपुणता ऊंची है। उसकी माता भी इस काममें बड़ी चतुर है। वह राजेश्वरीकी दादीको बहुत मानती है। उनमें उसकी बड़ी श्रद्धा है। वह कहती है, "दादीके ऐसी मैंने दूसरी स्त्री नहीं देखी। जो कुछ मैंने सीखा है वह सब उन्हींसे सीखा है।"

जो हो, भगवानकी कृपासे राजेश्वरीने एक सुन्दर बालक उत्पन्न किया। दादीने धायकी लड़कीसे कहा (जो उसके साथ साथ सीखनेके लिये ऐसे अवसरोंपर जाया करती थी)—"ले, इस लड़केको तू गोदमें लेकर बैठ जा। देखना, नाड़ीपर दाब न पड़े।" धायने कहा—"हां बेटी, बहुत सावधान रहना, नाड़ीपर तनिकसा दाब पड़ने ही खून निकलने लगेगा।" उसने कहा—"अच्छा।" उस समय पहले चिथरेसे उसने लड़केके हाथ मुंह पोंछ दिये। थोड़ी देरमें लड़का रोने लगा। धायने रेशमी सूतसे यथारीति बांधकर नारा काट दिया और तेलमें भीजे हुए कपड़ेकी एक पट्टी उसपर रख दी। दादीने थोड़ा

मधु लेकर लड़केके मुंहमें लगाकर कफ वगैरह निकालनेके लिये कहा।

इस समय हमलोगोंके पुराने आचार-विचार प्रायः लुप्त हो रहे हैं। इस समय हमलोगोंके यहां जातकर्म-संस्कार नहीं किया जाता। यह दश विधि-संस्कारोंमेंका एक प्रधान संस्कार था। आज इन संस्कारोंका नाम भी मुश्किलसे सुनाई पड़ता है। इन संस्कारोंके द्वारा वालक पुष्ट और बुद्धिमान होता था। हमलोगोंके पूर्वज ऋषियोंने इन संस्कारोंका प्रचार किया था। उनके प्रचारका वडा ऊंचा और लाभकारी उद्देश्य था। जातकर्ममे होनेवाले होम, देवताओंकी पूजासे पवित्र जो घृत, चीनी और मधु वालकको पहले पहल चटाया जाता था, आयुर्वेद मतानुसार यह रासायनिक योग है। वालकके जीवनमें प्रथम प्रथम इसका प्राशन करानेसे जीवनभर लाभ होता है, पर आज इस आवश्यक वातको लोग भूल गये हैं। हाय! यह कितने दुःखकी वात है! यदि संस्कारके नामसे कोई चिढ हो, यदि भारतीय सभ्यतासे घृणा हो और देवताओंपर अश्रद्धा हो तो कमसे कम इस रसायनका उपयोग तो न छोड़ना चाहिए।

कर्म्मयोग

लेखक—बङ्गालके सच्चे कर्म्मयोगी

श्रीअश्विनीकुमार दत्त

लेखकने इस पुस्तकमें कर्मयोगके कठिन विषयको उदाहरणों द्वारा बड़ी ही सरलतासे समझाया है। निष्काम कर्मकी महिमा बतलाते हुए आपने सच्चे कर्मयोगीके लक्षणोंकी विशद रूपमें व्याख्या की है। आपका यह ग्रन्थ कैसा है इसके सम्बन्धमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी मुखपत्रिका लिखती है :—

"श्री अश्विनीकुमार दत्तकी लेखनीका चमत्कार किसी सहृदय साहितज्ञसे छिपा नहीं है। दत्त महोदयने भक्तियोग, प्रेम और कर्मयोग जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर संसार-संतप्त जीवोंको आध्यात्मिक सुशीतल छाया दान करके भारतवर्षको चिरबाधित किया है। इस पुस्तकमें आपने आदर्श कर्मभूमि, मोक्षसेतु, कर्मकेन्द्र, निष्काम कर्म, लोकसंग्रह, कर्मयोगीके लक्षण प्रभृति गहन विषयोंको बड़ी ही सरलता, मनोरंजकता और विवेचना द्वारा अंकित किया है। पढ़ते-पढ़ते चित्तको एक अपूर्व विश्रांतिका आनन्द मिलता है। किंकर्तव्यविमूढ़ भारतीय जनताको यह "कर्मयोग" नामक पुस्तक संजीवनी शक्तिका काम देगी, इसमें सन्देह नहीं। अनुवादक महोदयका प्रयास सफल और स्तुत्य है।" करीब १५० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल ।≠)

मालव-मयूर

राजस्थान (मध्यभारत और राजपूताना) का सचित्र मासिक पत्र, आकार बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य ३॥ वार्षिक।

सम्पादक

पं० हरिभाऊ उपाध्याय, महात्मा गांधीके "हिन्दी-नवजीवन"के उपसम्पादक।

मयूरका जीवन-कार्य

असत्य, अन्याय और अत्याचारका निर्भयता, शान्ति और विनय-पूर्वक विरोध करना तथा राजस्थानकी आन्तरिक शक्तिको जागृत और विकसित करना।

मयूरकी विशेषतायें

१. सत्य, शान्ति और प्रेम इसके जीवनका धर्म है।

२. यह विश्व-बंधुत्वका प्रेमी, राष्ट्रीय धर्मका उपासक और भारतीयताका अभिमानी है।

३. यह विवेक-पूर्वक प्राचीनताकी रक्षा करता है और नवीनताका स्वागत।

४. देशी-राज्योंको यह ममत्वकी दृष्टिसे देखता है।

५. विज्ञापनबाजीके अनर्थसे समाजको बचानेके लिये इसमें विज्ञापन नहीं लिये जाते। सिर्फ लोकोपयोगी विज्ञापन **मुफ्त** छाप दिये जाते हैं।

६. ललित कलाओंके नामपर विषय-विलास-प्रेरक सामग्रीका प्रचार करनेकी प्रवृत्तिका यह विरोधी है।

७. छपाई, कागज तथा पोस्टेजके अलावा किसी किस्मका खर्चा इसपर नहीं लगाया जाता है।

नोट—सस्ता-साहित्य-मंडलकी उन्नतिके सम्बन्धमें तथा कौन कौनसी पुस्तकें निकलीं और निकल रही हैं आदि सब बातोंका उल्लेख इस पत्रमें विशेष रूपसे रहता है।

कुछ सम्मतियोंका सार

पू० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"मालव-मयूर" बहुत अच्छा निकला। छपाई और कागज उत्तम है। भाषा और विषय-योजना भी ठीक है।

सरदार माधवराव विनायक किबे—मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह एक उच्च कोटिका मासिक-पत्र है।

सर्वेन्ट आव् इंडिया—......ने एक महत्वपूर्ण पत्रकी वृद्धि की है। इस मासिक-पत्रका सम्पादन वे विशेष योग्यता और पूरी जिम्मेवारीके साथ करते हैं, जो कि हमें महात्मा गांधीकी प्रत्यक्ष देख-भालमें तालीम पाये सज्जनोंमें दिखाई देती है।

प्रताप—"मालव-मयूर" में मौलिकता और सात्विकता है। अधिक विच... और विवेकके साथ चुनी हुई बहुतसी टिप्पणियां इसमें रहती हैं। हमें विश्वास है कि "मयूर" का मीठा और सात्विक ढंग अपना रंग अवश्य लावेगा और उससे म० भा० और रा० पू० के लोगोंकी अत्यन्त निर्बल और निर्जीव आत्माको बल मिलेगा।

मतवाला—सभी संख्यायें एकसे एक बढ़कर हैं। कवितायें और लेख बड़े ही सुन्दर, सरस और निर्दोष होते हैं। सम्पादकीय अंश अत्यन्त प्रशंसनीय होते हैं। अधिक पृष्ठ-संख्या वाले पत्र 'मयूर' से शिक्षा ग्रहण करें।

जयाजी प्रताप—लेख उच्च कोटिके हैं। उनपर दृष्टि रखते हुए अगला ...विचार पिछलेसे बढ़ा चढ़ा मालूम होता है।...की टिप्पणियोंमें sense of proportion और sense of responsibility होती है, जिनकी इस समयके बहुतसे सम्पादकोंमें कमी नजर आती है।

कविकौमुदी—इसके सम्पादक हिन्दीके अच्छे और विचारशील लेखकोंमें हैं। संपादकीय नोटोंमें, उनकी स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता और उत्तम विचारोंका ...कार चिन्ह प्राप्त होता है।

पता—मालव-मयूर, अजमेर,
(राजपूताना)

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डल-का जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इसमें प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य, महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके लिए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बाबू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकोंका मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ३) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अर्थात् उन्हें १) में लगभग साढे चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएँ

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाएँ निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें वा न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।

(१) वार्षिक ग्राहक—चूँकि प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें पोस्टेज के अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० खर्च ग्राहकोंको अधिक लग जाता है अतएव यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अर्थात् तीन रुपया १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च। वार्षिक ग्राहक जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशित पुस्तकें उन्हें लेनी होंगी।

(२) जो सज्जन ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें सदाके लिये लिख लिया जायगा और ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे पुस्तकका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोड़कर वी० पी० से भेज दी जावेंगी।

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई दो रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें।

क्योंकि इससे आप बार बार वी० पी० छुड़ानेके झंझटसे बच जावेंगे और पोस्टेजमें भी आपको बहुत ही किफायत रहेगी। और स्थाई ग्राहक फीस आठ आने भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक

(१) जो सज्जन मालासे निकलनेवाली सब पुस्तकें न लेना चाहें, अपने मनकी पुस्तकें लेना चाहें वे ऊपर लिखे न० २ के प्रवेश फीस वाले ग्राहक हो सकते हैं। पर उन्हें वर्षभरमें कमसे कम २) मूल्यकी पुस्तकें जिस मालाके वे ग्राहक बनें उस मालाकी लेनी होंगी।

नोट—आप जिस मालाके जिस श्रेणीके वार्षिक या प्रवेश फीस वाले ग्राहक बनना चाहें खूब स्पष्ट लिखें। दोनों मालाओंके बनना चाहें तो वसा लिखें

सस्ती साहित्य मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिकाका सत्याग्रह (म०गांधी) पृष्ठ ३७२ मूल्य ॥) (२) शिवाजीकी योग्यता-पृष्ठ १२२ मूल्य ।≈) (३) दिव्य जीवन पृष्ठ १३६ मूल्य ≈) (४) भारतके स्त्री रत्न-पृष्ठ १०२ मूल्य ।≈) (५) व्यावहारिक सभ्यता-पृष्ठ १०८ मूल्य ।)॥ (६) आत्मोपदेश पृष्ठ ११२ मूल्य ।-)

सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

वर्ष १] सस्ती विविध पुस्तकमाला [पुस्तक
(सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला)

सीताकी अग्नि-परीक्षा

लेखक—
राय कालीप्रसन्न घोष बहादुर
विद्यासागर
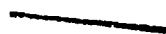
हिन्दी-प्रेमियोंसे अनुरोध

इस मण्डलके स्थायी ग्राहक होनेके नियम पुस्तकके अन्तमे दिये हुए हैं। आप उन्हें एक बार अवश्य पढ़ लें और अपनी रुचिके अनुसार स्थायी ग्राहक होकर व अपने मित्रों-को बनाकर इस मण्डलकी पुस्तकोंके प्रचारमें सहायता पहुंचावें।

वर्ष १] सस्ती विविध पुस्तकमाला [पुस्तक

(सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला)

सीताकी अग्नि-परीक्षा

(काव्य, इतिहास, विज्ञान)

लेखक—

राय कालीप्रसन्न घोष बहादुर

विद्यासागर।

अनुवादक

ठाकुर देवबलीसिंह

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

प्रथम बार] १९२९ [मूल्य ।-)

जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,
अजमेर

लागत का व्योरा

कागज	१२५)
छपाई	१४०)
बाइंडिंग	१५)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	१५७)
कुल जोड़	४३७)

प्रतियां २०००

एक प्रति का मूल्य =)॥

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका
"हनुमान प्रेस"
२, माधो सेठ लेन, कलकत्ता।

भूमिका।

"जो प्रत्यक्ष है, प्रामाणिक है, वही ध्रुव सत्य है, विश्वसनीय है, इसके अतिरिक्त लोकातीत और ज्ञानातीत कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिसको मनुष्य अपने उद्योग और अध्यवसायसे आयत्त कर सके।" आधुनिक विज्ञानका यह दम्भपूर्ण सिद्धान्त ठीक वैसा ही भ्रमपूर्ण और बेजड़ है, जैसा एक दूधमुंहे बच्चेका कहना कि मेरी ही अभिज्ञता संसारकी अभिज्ञता है और जिसे मैं नहीं जानता वह संसारके लिये अपरिज्ञेय है। वास्तवमें यह कितनी हास्यजनक बात है कि क्षुद्र मानव अनादि अनन्त कालव्यापी प्रकृतिके नियमको अपनी तुच्छातितुच्छ अभिज्ञता और अल्पज्ञताके भीतर सीमाबद्ध समझे! आजकलके नये नये आविष्कारों और ज्ञान-विज्ञानकी क्रमिक उन्नतिसे क्या यह बात सिद्ध नहीं होती कि आज जो असम्भव और असाध्य है वही समय पाकर कभी संभव और सुसाध्य हो सकता है? इसी प्रकार असंख्यों विलुप्त-प्राय धर्मों, जातियों और देशोंके विवादपूर्ण इतिहाससे क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि प्राचीन कालके ऋषि मुनि और महात्माओंके लिये जो कार्य सहजसाध्य था वही काल गतिसे हम लोगोंके लिये असम्भव और असाध्य प्रतीत होने लगा है?

विजातीय शिक्षा और सभ्यताके विकारसे अनेकों भ्रान्त-नवयुवक आजकल रामायण और महाभारत की पवित्र कथाओं को काल्पनिक और कपोलकल्पित गप्पें (Fictions) कहकर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं। विकृत बुद्धिवाले ये हतभाग्य

कुछ सम्मतियोंका सार

पू० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"मालव-मयूर" बहुत अच्छा निकला। छपाई और कागज उत्तम है। भाषा और विषय-योजना भी ठीक है।

सरदार माधवराव विनायक किबे—मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह एक उच्च कोटिका मासिक-पत्र है।

सर्वेन्ट आव् इंडिया—......ने एक महत्वपूर्ण पत्रकी वृद्धि की है। मासिक-पत्रका सम्पादन वे विशेष योग्यता और पूरी जिम्मेवारीके साथ करते हैं जो कि हमें महात्मा गांधीकी प्रत्यक्ष देख-भालमें तालीम पाये सज्जनोंमें दिखा देती है।

प्रताप—"मालव-मयूर" में मौलिकता और सात्विकता है। अधिक विचार और विवेकके साथ चुनी हुई बहुतसी टिप्पणियां इसमें रहती हैं। हमें विश्वास है कि "मयूर" का मीठा और सात्विक ढंग अपना रंग अवश्य लावेगा और उससे म० भा० और रा० पू० के लोगोंकी अत्यन्त निर्बल और निर्जीव आत्माको बल मिलेगा।

मतवाला—सभी संख्यायें एकसे एक बढ़कर हैं। कवितायें और लेख बड़े ही सुन्दर, सरल और निर्दोष होते हैं। सम्पादकीय अंश अत्यन्त प्रशंसनीय होते हैं। अधिक पृष्ठ-संख्या वाले पत्र 'मयूर' से शिक्षा ग्रहण करें।

जयाजी प्रताप—लेख उच्च कोटिके हैं। उनपर दृष्टि रखते हुए [illegible] नंबर पिछलेसे बढ़ा चढ़ा मालूम होता है।...की टिप्पणियोंमें sense of proportion और sense of responsibility होती है, जिसकी इस [illegible] बहुतसे संपादकोंमें कमी नजर आती है।

कविकौमुदी—इसके सम्पादक हिन्दीके अच्छे और विचारशील लेखक हैं। सम्पादकीय नोटोंमें, उनकी स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता और उत्तम विचार [illegible] द्वारा चित्त प्रसन्न होता है।

पता—मालव-मयूर, अजमेर,
(राजपूताना)

सीताकी अग्नि-परीक्षा

काव्य-इतिहास-विज्ञान

प्रथम परिच्छेद

"पाप्मभ्यश्च पुनातु वर्द्धयतु च श्रेयांसि सेयं कथा ।
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतेव मातेव गङ्गेव च" ॥ ❀

†सुवेल नामक पर्वतकी ऊंची चोटीके निकट, समुद्रके किनारे, लङ्काके उत्तरी दरवाजेपर आज बड़ी भीड़ है। विशाल-काय मेघनाद और महापराक्रमी रावणके वधके समय लङ्काके बाहरी

❀संसारका मङ्गल करनेवाली, संसारके मनुष्योंको मुग्ध करनेवाली, माताकी तरह संसारका हित चाहनेवाली, गंगाकी तरह पापोंका नाश करनेवाली उस जानकीके चरित्रकी कहानी मनुष्योंको पापोंसे बचावे और सभीके सुखसम्पद्को बढ़ावे।

† वाल्मीकिके भूगोलके अनुसार लङ्काके चारों ओर चार मैदान थे। उत्तर दिशाके मैदानकी शेष सीमापर समुद्रके किनारे एक छोटा पर्वत था। उसका नाम था सुवेल। जैसा कि वाल्मीकिके युद्धकाण्डके ३७ वे सर्गमें है:—

"सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान् प्रभुः,
रमणीयतरं दृष्ट्वा सुवेलस्य गिरेस्तटम् ।"

फाटकपर मनुष्योंकी जो भीड़ हुई थी, आज उससे भी कहीं अधिक भीड़ है। एक ओर रावणकी प्राचीर-परिवेष्टित काव्य-वर्णित रमणीय लङ्का है और दूसरी ओर दक्षिण भारतका कटिबन्ध-स्वरूप उत्ताल तरंगोंवाला विशाल समुद्र लहरें मार रहा है। बीचमें बहुत दूरतक फैला हुआ विस्तीर्ण मैदान है। आज इस बड़े मैदानमें बित्तेभर भी जमीन खाली नहीं, सभी दर्शकोंसे भरी हुई है।

तथापि विचित्रता तो यह है कि लङ्काके निकट आजकी इकट्ठी हुई यह जनता मूक बनकर अथवा असंख्यों चित्र लिखीसी मूर्त्तियोंकी भांति शान्त और स्तब्ध हो श्वास रोके खड़ी है। जहां किसी विशेष कारणसे बहुतसे लोग अनायास एकत्र हो जाते हैं वहां उनके मीठे और कड़े, धीरे और जोरसे बातचीत करनेकी आवाजके मिल जानेसे एक बड़ा कोलाहल मच जाता है। किन्तु आजका यह जनसमुद्र भयङ्कर तूफानके पूर्वकी निस्तब्ध प्रकृतिके समान एकदम निःशब्द है। सब अपने अपने स्थानपर निश्चल निस्पन्द भावसे ठीक पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह अपने आपमें लीन हैं। मुख खोलकर बोलने और आंख उठाकर सामने खड़े मनुष्यकी ओर ताकनेका भी किसीको साहस नहीं होता। इसका कारण क्या है?

पूर्वोक्त दर्शक-मण्डलीके बीच, मिट्टीके चबूतरेपर जटा-जूट-धारी विश्वविजयी रामचन्द्रजी विषण्ण भावसे बैठे हैं। उनका धनुषबाण दूर फेंका पड़ा है, मुख उदास और नेत्र जलभरे

जल रहे हैं। बीच बीचमें हृदय और मनको दग्ध कर देनेवाला दीर्घ श्वास उन्हें क्षुब्ध कर रहा है। देखनेसे मालूम होता है कि रामचन्द्रजीका हृदय फटकर टूक टूक हो रहा है और हृत्पिण्ड मानों किसी गुप्त और अचिन्तनीय दुःखसे जलकर खाक हो रहा है। श्रीरामचन्द्रजीकी दाहिनी और बाईं ओर सुग्रीव, अंगद विभीषण आदि लङ्का-युद्धके सहायक मित्रगण बैठे हैं। आगे कुछ दूरपर भ्रातृ-वत्सल लक्ष्मण और भक्त-शिरोमणि वीर-श्रेष्ठ हनुमान हैं; सम्मुख,आंखोंके सामने स्त्रीसमाजकी आदर्शरूपिणी,कोमलांगी, ऋषि-मुनियोंकी आराध्यदेवी, निर्मलता और पवित्रताकी प्रति-मूर्त्ति अयोध्याकी राजलक्ष्मी श्रीजानकीजी खड़ी हैं।

जानकीजी हाथ जोड़े खड़ी हैं। एक समय था जब मिथिलाके राजभवन और अयोध्याके राजप्रासादमें जानकीजीके चारों ओर असंख्य दास दासियां भक्तिभाव युक्त हाथ जोड़कर खड़ी रहनेमें अपनेको उसी प्रकार कृतार्थ समझती थीं जैसे भक्त अपनी सर्व-दुःखनाशिनी, अभयदायिनी देवीकी मूर्त्तिको पूजकर अपनेको कृतार्थ समझता है। आज वही जानकी कृताञ्जलिपुट हो सिर झुकाये खड़ी हैं। जानकीजी सदा ही पतिके प्रेममें पागल, पतिके सुहागमें विभोर और पतिके हृदय-राज्यपर निर्द्वन्द्व अधिकार जमानेवाली अधिष्ठात्री देवी रही हैं, पर आज पतिके कोपानलमें पड़ी हुई हैं। वह अपने प्रेमपात्र और प्राणाधार पतिके सम्मुख उस भावसे कभी नहीं खड़ी हुई थीं जिस भावसे आज उन्हें खड़ा होना पड़ा है। अस्फुटित कमल-सदृश उनके

नेत्रोंसे झर्झर आंसुओंकी धारा वह रही है। उनकी कोमल हृदयलतिका दुःखी और शोकातुर मनुष्यकी तरह रह रहकर कांप उठती है। वह इसी प्रकार सिर झुकाये आंसुओंकी धारा वहा रही है और "हाय यह क्या हुआ !" यह वार वार सोच रही हैं।

परन्तु जानकीजीकी अश्रुवर्षा अथवा शरीरके कम्पनसे भयका कोई चिह्न प्रकट नहीं होता। उनकी दृष्टि कातर है तथापि दयावती देवीकी अत्युज्ज्वल स्निग्ध दृष्टिकी तरह स्नेह और करुणासे परिपूर्ण है। कभी कभी उस दृष्टिमें विरक्ति और अभिमानकी थोड़ी झलक आ जाती है। रामचन्द्रजीके विषण्ण और उदास मुखकी ओर एक एक वार वह दृष्टि फिरती है; मानों दयासे पिघल अपने आपको भूल, दृष्टिकी अचिन्तनीय और अव्यक्त भाषामें वह कह रही हैं "हाय राम ! तुम मुझे पहचान न सके ! हा हृदयवल्लभ ! जीवन-सर्वस्व ! तुम इतने बड़े मार्मिक पुरुष और हृदयकी वातोंके परखनहार अन्तर्यामी होते हुए भी अपनी चिरसंगिनीके हृदयको तौलकर देखनेमें समर्थ नहीं हुए।

आज लङ्काके भीषण समरका अन्त हो गया। आज जय जयकारके साथ विजयोत्सव मनानेका शुभ अवसर आया है, पर इसके विपरीत आज सभी किस अचिन्तनीय शोकसागरमें गोते लगा रहे हैं? आज सभी विषण्ण क्यों हैं? अत्याचारी रावण जो देवताओंके लिये भी दुराधर्ष और अजेय था, जो दक्षिण भारतके लिये कण्टक था यों कहिये कि सभी अनर्थोंका मूल कारण था आज [illegible] विश्वविजयी,

दुर्भेद्य प्राचीर-परिवेष्टिता, वीर-हुङ्कार-निनादिता लङ्का श्रीराम-चन्द्रजीके पैरोंतले लुढ़केगी, लंका आज वीरशून्य हो जायगी, किसीने इसकी आशा की थी? किसने सोचा था कि ललनायें और जङ्गलोंके ऋषिमुनि अब निर्भय होकर रहेंगे! आज वही दुष्ट नराधम रावण रामचन्द्रजीके बाणोंसे विद्ध होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ है और उसका लंकाका राज्य भारत साम्राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ है। लङ्काकी धन-सम्पदा सती साध्वी, जानकी-जीके शापानलमें भस्म होकर मानो संसारको विस्मित कर रही है; तथापि किसीके चेहरेपर हंसी नहीं है। कोई श्रीरामचन्द्रजी-का अभिनन्दन नहीं करता और न कोई जानकीजीकी वंदना ही कर रहा है। इसका कारण क्या है?

कारण सुनने योग्य नहीं, उसका उल्लेख करनेसे भी पाप लगेगा। कारण है जानकीजीके चरित्रकी पवित्रताकी परख करना अर्थात् जिस जानकीके जन्मसे संसार पवित्र हो गया है, जिनकी चरित्र-शक्तिके अलौकिक प्रभावसे कविके काव्यमें अमृत-की धारा बह गयी है, मनुष्य-समाजके करोड़ों स्त्री-पुरुष जिनकी स्वर्गीय पवित्रताका अमृतरस पीकर साधारण ऊंचाईसे सैकड़ो हाथ ऊंचे उठ गये है, और जिनके नाममात्रके उच्चारणसे प्राणियोंके पाप जलकर भस्म हो जाते हैं, उन्हीं ज्योतिर्मय पुण्यश्लोका जनकतनयाकी आज अग्नि-परीक्षा है।

एक अर्थमें, पदोन्नति और जीवनको उन्नत बनानेमें अग्नि-परीक्षाकी अपरिहार्य्य आवश्यकता है। जैसे सोनाको विना

तपाये या बिना उसकी जांच किये भूषण नहीं बनाया जाता. उसी प्रकार जो समाजमें सोना है—हृदयकी उच्चता और उदारता तथा चरित्रकी महत्तामें जो शीर्ष स्थानीय हैं—उनकी जबतक अच्छी तरह परीक्षा न होगी, वे संसारके पथप्रदर्शक और आदर्श नहीं बन सकते। वास्तवमें जो लोग मनुष्य-समाजमें किसी न किसी अंशमें श्रेष्ठ हैं, जो ज्ञान, गुण, प्रतिभा, ज्योति, प्रतिष्ठा, गौरव अथवा जीवनके नित्य नैमित्तिक पवित्र अनुष्ठानोंमें सर्वसाधारणसे कुछ भी ऊपर हैं, उनमेंसे कोई भी सुखशय्यापर आरामकी नींद नहीं सोता, कोई भी अपना जीवन हंसी खेलमें नहीं बिता देता। उनमें सभीको कठिन अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है। कहीं तो उन्हें जीवनकी क्षुद्रता, कहीं निम्न श्रेणीके मनुष्योंके ईर्ष्या द्वेष, कहीं आकस्मिक विपत्ति और कहीं दैवी दुर्घटनामें परीक्षा देनी पड़ती है। उनमेंसे किसी किसीको अग्नि-परीक्षामें अहोरात्र जलते रहना पड़ता है। वे अपने आप दुःख सहन करते हुए मनुष्य-जातिको शापके बदले आशीर्वाद देकर मनुष्यत्वकी महिमा बढ़ाते हैं।

इसका साक्षी इतिहास है। इतिहासके पहले परिच्छेदसे वर्तमान अध्यायतक पन्ने पन्ने स्तर स्तरमें यही एक बात मुख्य रूपसे [illegible] है। यूरोपके साहित्य और सभ्यताके जन्मदाता प्रतिभाशाली होमर हैं और उनके [illegible] सर्व प्रथम प्रतिष्ठा करनेवाले [illegible] आनन्द-मूर्ति [illegible] हैं। यद्यपि यूरोप आज नानाविध स्वार्थ-संघर्षके लिये [illegible]

आदर्श स्थान अधिकार किये हुए है तथापि आज भी होमर और सोक्रेटिसके नाम उनके सभी वैभवोंके ऊपर मणि मुक्ताओंके समान शोभा पा रहे हैं। किन्तु पृथ्वीके न्यायकी वलिहारी है! जिन दो महात्माओंके नामोंकी महत्ताका यूरोपको इतना गर्व और आदर है, उनमेसे एक अर्थात् कविगुरु होमर देशवासियोंके द्वार द्वार भिखमंगेकी तरह मुट्ठीभर अन्नके लिये मारे मारे फिरे और किसी तरह अपने दुर्वह जीवनका अन्त किया और दूसरे अर्थात् ज्ञानाचार्य्य सोक्रेटिसको कई एक बुद्धिहीन मूर्ख सोहृदोंके ईर्षा-पूर्ण अन्यायके कारण विष खाकर शरीर त्याग करना पड़ा।

फ्रांसीसी जातिका राजनीतिक इतिहास आदिसे अन्ततक अन्याय, अत्याचार, प्रजाके हाहाकार और पाशविक इन्द्रिय-लोलुपताकी उन्मत्ततासे भरा हुआ है। जिन्होंने राजशक्ति पाकर फ्रांसीसी जातिके राजसिंहासनको अलंकृत अथवा अपमानित किया है उन्होंने भोग-विलासके लिये कोई दुष्कर्म उठा नहीं रखा है और प्रजा-पीड़नके लिये कोई पाप करनेसे वाज नहीं आये हैं। गांवोंके कुत्ते वकरो और जंगलोंके सांप भालू भी उनकी तुलनामें कहीं कोमल स्वभावके हैं।

फ्रांसके ऐसे सम्राट और सम्राज्ञियोंने (सम्राटोंमें चार्ल्स*हेनरी

* रत्नगर्भा (!) कैथारिनाके दूसरे लड़केका नाम चार्ल्स नवम था। कैथारिना अपने शत्रुओंको विषप्रयोग द्वारा मार डाला करती थी। पुत्र चार्ल्स उसकी अपेक्षा कुछ कोमल स्वभावका था। वह अतिथियोंको निमंत्रण देकर घर बुलाता और उन्हें गोलियोंसे मारकर खुशीके मारे खिल खिलाकर हस पड़ता था। परन्तु ऐसा होते हुए भी ये लोग रोमके टाइविरियस इत्यादि सम्राटोंकी अपेक्षा ऊंची श्रेणीके जीवथे ।

और चौदहवें लूई तथा सम्राज्ञियोंमें मारगारिटा और कैथारिना-का नाम विशेष उल्लेखनीय है) सोनेकी अट्टालिकाओंमें सैकड़ों दास दासियोंसे परिवेष्ठित रहकर सुहागकी शय्यापर ऐशो-आरामकी जिन्दगी वितायी है और वैभवका डंका बजाकर चले गये हैं; परन्तु जिस राजदम्पतिने प्रजाकी भलाई करना ही अपने पार्थिव जीवनका एकमात्र लक्ष्य बना लिया था और दीन-दुखियोंके दुःखकी बात सुनकर जिनकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह जाती थी और उनका दुःख दूर करनेके लिये तुरत तत्पर हो जाते थे, ऐसे साधु स्वभाववाले सोलहवें लूई और कोमलताकी मूर्त्ति मेराया एन्टानेटाका सारा जीवन दुस्सह दुःख और यन्त्रणामें बीता और सारे जीवनकी चरम सीमापर पहुंचकर अन्तमें पुत्र-तुल्य प्रजाके प्रति अपने उदार विचारोंके कारण पशुकी तरह मारे गये।

इसीलिये हमने कहा है कि जो मानव-समाजमें भूषण-स्वरूप हैं, उनके लिये अग्निपरीक्षा अवश्यम्भावी है। अग्निपरीक्षा-का यदि यह अर्थ लिया जाय तो जानकीजीका अमृत सदृश मधुर जीवन आदिसे अन्ततक लगातार कठोर परीक्षाका जीवन है। जानकीजीने जन्मसे ही माताका मुख नहीं देखा, माताकी गोदमें बैठकर आत्माको शीतल नहीं किया और न माताका दुग्ध पानकर अपनी प्यासको बुझाया था; तथापि उनने चरित्रकी प्राकृत मधुरता और स्वाभाविक विकासके कारण सभी प्रकारके कोमल, मधुर और पवित्र गुणोंसे परिपूर्ण होकर स्त्री-

जातिके शीर्षस्थानपर विराजमान हुई हैं। उनकी मां नहीं हैं। वे सहिष्णुताकी प्रतिमूर्त्ति धरित्री देवीको ही माता समझकर उनकी पूजा करके अपने आप पृथ्वीके समस्त प्राणियोंकी माता बन गयी हैं, यह सामान्य परीक्षा नहीं है।

दूसरी परीक्षा हुई है जानकीजीके पिताकी धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञाके समय। बालिकायें नव यौवनकी पहली लहरके समय आशानुरूप वर और ईप्सित विवाहकी बात सोचकर जो आनन्द और सुख पाती हैं, उसे कहना व्यर्थ है। इसके विपरीत जानकीजी आनन्द और उल्लासके बदले रातदिन दुश्चिन्ताकी अग्निमें जलती रही है और अपने उच्च चरित्रके अनुरूप पति मिलनेके लिये प्रार्थना करती हुई ईश्वरकी ओर दृष्टि लगाये दिन काटती रही हैं। उनके असाधारण रूपकी बातकर मिथिलाके उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम सभी दिशाओंसे वीर लोग वीर वेषमें उनके पिताके यहां आये हैं। भाग्यके फेरसे वह किसके हाथमें पड़ेंगी और किस पापी दुराचारीकी सेवा इन्हें करनी पड़ेगी, इस बातकी चर्चा सभी जगह हो रही है। किन्तु स्वर्णप्रतिमा जानकीजी इस परीक्षामें सफल हुई हैं—अपनी हृदय-शक्तिके अतर्कित आकर्षणके कारण लोकाभिराम श्रीरामचन्द्रकी संगिनी बनकर पिता और बन्धु-बान्धओंके मनोरथोंको सफल करनेमें सफल हुई हैं।

जानकीजीकी तीसरी परीक्षा अभिषेकके उत्सवके समय हुई। राजाधिराज दशरथ रामचन्द्रजीको युवराजके पदपर अभिषिक्त करेंगे और जानकीजी युवराज्ञी होंगी—उस समयके भारतके

राजसिंहासनपर रामचन्द्रजीकी बायीं ओर बैठेंगी। जानकीजीका क्या ही सौभाग्य है! जानकीजीके इस अचिन्तनीय सौभाग्यके कारण अयोध्याके घर घरमें आनन्दकी बधाई हो रही है, समान उम्रकी सखियोंमें मीठी और रसीली हँसी मसखरी हो रही है। इधर जानकीजीका जगत-हितकारक सौभाग्य उन्हें जटावल्कल-धारी श्रीरामचन्द्रजीके साथ दण्डकारण्यके दुर्गमपथमें ले जा रहा है। यह क्या साधारण परीक्षा है?

जानकीजी यदि चाहतीं, यदि संसारकी और बालिकाओंकी तरह संसारिक सुखकी पूजा करना जानतीं, तो वह सासुओं और हितैषियोंकी बात रख सकती थीं और अनायास अयोध्यामें रहकर राजप्रासादमें सुख और सौभाग्यका जीवन बिता सकती थीं। परन्तु उनके समान आदर्श स्त्रीके लिये यह कदापि सम्भव नहीं था। वह संसारकी असंख्यों अबला, पति-प्राणा, प्रेममयी सतियोंको आदर्श जीवनकी शिक्षा देनेके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई थीं। अतएव उनके जीवनमें राजप्रासादमें रहनेका सुख कैसे प्राप्त होता?

उन्होंने पतिके साथ वन जाकर दिखला दिया कि सुख-सौभाग्यमें पली हुई एक सुन्दरी रमणी पति-प्रेमको पूरा करनेके लिये किस तरह पृथ्वीके सभी वैभवोंको तृणवत् पैरोंतले ठुकरा दे सकती है और उन्होंने अपने इस महान् उच्चादर्शसे दृढ़प्रतिज्ञ, धर्मभीरु, पुण्यव्रती, पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजीको भी विस्मित कर दिया।

उस समय एक ओर भारतकी राजधानी अयोध्याका अतुलनीय वैभव और भोग-विलासका प्रचुर भाण्डार है और दूसरी ओर जानकीजीका प्रेममय प्राण है; एक ओर कुलगुरु वशिष्ठ, देवी अरुन्धती, सास, ससुर और सखियोंका अनुरोध-उपरोध है और दूसरी ओर जानकीका प्रेममय प्राण है; एक ओर असंख्यों दास दासियोंका विलाप और असंख्यों अनुरक्त प्रजाका हाहाकार और आरजू-मिनती है और दूसरी ओर जानकीका प्रेममय प्राण है; एक ओर सर्पों, नरमांस-भोजी पशुओं, कंकरो और कांटोंसे भरे हुए दुर्गम वनकी विभीषिका और वृक्षोंके नीचे घास-फूसकी शय्या और वन-जीवनका भयङ्कर और रूखा चित्र है और दूसरी ओर जानकीका प्रेममय प्राण है; किन्तु पृथ्वीके उस अश्रुत-पूर्व हृदयकी भयंकर परीक्षामें उन्होने संसारके सभी वैभवोंको तिरस्कृत और अपमानित कर ठुकरा दिया। उनके प्रेममय प्राणने सैकड़ों चन्द्रोंकी भांति उज्ज्वल, शीतल कान्ति लिये हुए उद्भासित होकर पृथ्वीके असंख्यों स्त्री-पुरुषोंको प्रेमका अतुलनीय सौन्दर्य्य दिखला दिया।

जब माता कौशल्या आदि सभी माननीय गुरुजन जानकी-जीको वन जानेके संकल्पसे रोकनेकी चेष्टा करके हार गये, तब स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने उनके कमलवत् कोमल हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर उन्हे बहुत कुछ समझाया-बुझाया, भय दिखलाया, भावी सुख-सम्पदका चित्र खींचा और प्रेमकी बातें कहकर

उन्हें दिलासा देना चाहा, परन्तु जानकीजी इससे मस न हुईं। जो जानकी लज्जावती लताकी तरह लज्जासे सदा सकुची रहती थीं, रामचन्द्रजीकी ओर आंखें उठा करके बोलनेमें जो लज्जासे मानों गड़ जाती थीं, जो प्रेममुग्ध युवतियोंकी तरह प्रेमके आमोद-प्रमोदकी बातोंको छोड़ और किसी प्रसंगपर अपने प्राण-प्रिय पतिसे बातचीत करना पसन्द ही नहीं करती थीं, आज वही जानकी गुरुजनोंके सामने, लजीली बालिका होते हुए भी, अस्सी वर्षकी वृद्ध तपस्विनीकी भांति सभीको पातिव्रत धर्मका सार तत्व समझा रही हैं। आज उन्होंने प्रसंग-क्रमसे अपने अन्तर्निहित प्रेमके पवित्र रहस्यको व्यक्त करके आदर्श सती अरुन्धतीको भी भक्ति और विस्मयसे सिर नवानेके लिये बाध्य किया है।

जानकीजीकी अग्निपरीक्षाके रहस्यको समझनेके लिये ऐतिहासिक काव्यके इस प्रसंगके चित्रको ध्यानपूर्वक पढ़नेकी आवश्यकता है। जानकीजीके मुखसे इस अवसरपर जो बातें निकली हैं, उन्हें सभी स्त्रियोंको सदाके लिये अपने हृदयमें रख लेना चाहिये। जानकीजी किस प्रकृतिकी स्त्री हैं, वह कैसा हृदय लेकर पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई थीं और वह अपने प्रेम और भक्तिके इष्टदेव प्राणाराध्य रामचन्द्रजीको कितनी श्रद्धा और प्यार करती थीं इत्यादि बातोंको थोड़ा बहुत समझे बिना उनकी अग्निपरीक्षाका गूढ़ रहस्य समझमें नहीं आ सकता। जानकीजी कहती हैं:—

"प्रभो! पिता, माता, पुत्र, कन्या, प्यारी सखियां अथवा अपना प्राण भी, पति-प्राणा स्त्रीके लिये, पतिकी तुलनामें कुछ नहीं*क्योंकि क्या इहलोक क्या परलोक सभी जगह पति ही स्त्रीका एकमात्र भरोसा है: अतएव यदि तुम आज ही वनवासी होकर दुर्गम वनमें प्रवेश करो तो मैं भी तुम्हारे रास्तेके कुशकांटों-को कुचलती हुई तुम्हारे आगे आगे चलूंगी। मैं तुम्हारी बात

* न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखी जना,
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ।
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव,
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ।
ईर्षारोषौ बहिष्कृत्य पीतशेषमिवोदकम्,
नय मां वीर विश्रब्धः पापं मयि न विद्यते ।
सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः,
अचिन्तयन्ती त्रीन् लोकान् चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ।
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगंधिषु ।
साहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः,
न ते दुःख करिष्यामि निवसन्ती त्वया सह ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि,
इच्छामि सरितः शैलान् पल्वलानि सरांसि च ।
सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी,
एवं वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ।"
(अयोध्याकाण्ड २८ सर्ग)

अनुवाद जितनेका किया गया है उसके सभी मूल अंशको यहां स्थानाभावके कारण उद्धृत नहीं किया गया है।

न रख सकी इसके लिये मुझपर क्रोध न करना, विरक्त न होना। यात्री जैसे दूर देश जाते समय पानावशेष शीतल जलको आग्रहके साथ ले लेता है, उसी प्रकार तुम भी मुझे अपने साथ ले चलो। मैंने तो तुम्हारे निकट कोई अपराध नहीं किया है, फिर तुम क्यों मुझे घर छोड़कर अकेले वन जा रहे हो? मैं त्रैलोक्यका सुख-सम्पद् नहीं चाहती, मैं सिर्फ पतिके चरणोंकी सेवा और पातिव्रत धर्मका पालन करनेकी आकांक्षा रखती हूं। अपने पिताके राजभवनमें मैं जिस प्रकार सुखसे रहती थी, वैसे ही वनमें भी तुम्हारे साथ सुखसे रहूंगी और ब्रह्मचर्य्यका पालन करती हुई निरन्तर तुम्हारे चरणोंकी सेवा करती रहूंगी तथा वन्य फूलोंके सौरभसे तृप्त रहकर मैं तुम्हारे साथ जङ्गलों जङ्गलों घूमा करूंगी। अब तो तुमने मेरी बात समझ ली, मैं तुम्हारी वही जानकी हूं।"

"हे महाभाग, मैं अवश्य तुम्हारे साथ वन जाऊंगी। तुम किसी तरह मेरे इस पवित्र संकल्पमें बाधा नहीं दे सकते। तुम जिस प्रकार फलमूल खाकर जीवन निर्वाह करोगे मैं भी उसी प्रकार फलमूल खाकर तुम्हारे साथ साथ रहूंगी। मैं कभी किसी प्रकारके सुखकी अभिलाषा प्रकट करके तुम्हें कष्ट न दूंगी, किसी प्रकार भी मैं तुम्हारे दुःखका कारण और बोझ न बनूंगी। मैं तुम्हारे आगे आगे चलूंगी और तुम्हारे भोजनसे बचे हुए जूठनको ही खाकर सन्तुष्ट रहूंगी तथा वनकी नदियों और पहाड़ों...... और उनके सरोवरोंके [illegible]

करते हुए जल तरंगोंको देख देख सुखी होऊंगी। एक दो दिन नहीं, यदि तुम सैकड़ों हजारों वर्ष जंगलोंमें रहो तब भी मैं तुम्हारे साथ ही साथ जंगलोंमें रहूंगी और तुम्हारे साथ रह सकनेके कारण मुझे अकथनीय आनन्द मिलेगा।

"मेरा हृदय और प्राण, मेरा स्नेह, प्रीति और भक्ति, इस संसारमें एकमात्र तुम्हींमें निबद्ध है। मैं तुम्हारे सिवा और किसीको जानती ही नहीं, तुम्हारे चरणोंका ध्यान करनेके सिवा और किसी काममें मुझे शान्ति ही नहीं मिलती; अतएव मैं विनती करती हूं कि मुझे छोड़ मत जाओ, मैं किसी तरह तुम्हारे कष्टका कारण नहीं होऊंगी। परन्तु यदि तुम मुझे अपने साथ न ले चलो, यदि मेरा तुमसे वियोग हो जाय, तो मैं अवश्य प्राण त्याग कर दूंगी।* मैं जब तुम्हारे पीछे पीछे जाऊंगी तब वह वनपथ मेरे लिये विहार-शय्याकी तरह कोमल और सुखकर प्रतीत होगा, वनके कुश कतरे आदि कंटीली झाड़ियोंसे मुझे किसी प्रकार कष्ट न मिलेगा। मैं उन्हे रूईके कपड़े और मृग-चर्मके समान कोमल समझूंगी। वनमें यदि मैं तेज हवासे उड़ी हुई धूलसे ढक भी जाऊंगी तो मैं उस धूलि-पटलको चन्दनकी तरह शीतल समझकर उसका आदर करूंगी और

---

* अनन्यभावामनुरक्तचेतसां
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां
नातो मया ते गुरुता भविष्यति॥
इत्यादिकानि।

वनमें जब तुम्हारे चरणोंके निकट घासोंसे भरी हुई भूमि-शय्यापर सोऊंगी, तब अयोध्याके राजमहलके पलंगको भी तुच्छ समझूंगी।"

"फिर भी कहती हूं, हे नाथ! मैं वनमें माता पिताके लिये विकल न होऊंगी और अयोध्याके राजप्रासादको भूलकर भी याद न करूंगी। मैं तुम्हें सच कहती हूं, तुम मेरे लिये कष्ट न पाओगे, तुम्हारा सहवास मेरे लिये साक्षात् स्वर्ग है। तुम्हारा वियोग ही मेरे लिये नरक है। * तुम यह समझकर प्रसन्न होओ और मुझे अपने साथ ले चलो। यदि तुम ऐसा न करोगे तो मैं आज ही विष खाकर इस शरीरका अन्त कर दूंगी। जो तुमसे विद्वेष करते हैं जानकी कभी उनके अधीन रहकर इस पृथ्वीपर नहीं रह सकती।"

दशरथ और रामकी अयोध्या उस समय पृथ्वीपर सर्वप्रधान नगरी थी और असंख्यों स्त्री-पुरुष वहां वास करते थे। अयोध्याके वृद्ध और युवा, शिक्षित और अशिक्षित तथा अयोध्याकी सौभाग्य-वती तथा अनाथा सभी प्रकारकी स्त्रियां जानकीजीके त्यागमय अध्यवसायको देखकर विचार करने लगीं कि स्त्री-चरित्रका चरम उत्कर्ष कितना ऊंचा हो सकता है। जो स्वार्थ-

---

१ यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना,
इति जानन् परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह।
अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसि,
विषमद्यैव पास्यामि मा वशं द्विषतां गमम्।

सुखको ही संसारका सब कुछ समझती थी वह भी क्षणभरके लिये अपने स्वार्थ-मोहको भूल गयीं। जानकीजीके ये वचन देवपूजाके निर्माल्य पुष्पकी भांति कालस्रोतमें बहते हुए संसार-के असंख्यो काव्य और संगीतोंमे बिखर गये।

जानकीजीकी चौथी परीक्षा चौदह वर्षके वनवासमे हुई थी। अयोध्यासे दण्डकारण्य और दण्डकारण्यसे दक्षिण पथमें कुश-कंटकमय दुर्गम वनोंके बीचसे पैदल जानेके लिए एक महीने-से कम नहीं लग सकता और इस समय जंगल कहनेसे जो जंगल समझा जाता है उस समयके जंगल वैसे ही न थे। किन्तु जानकी-जीने जनक ऐसे राजाकी कन्या और दशरथ ऐसे राजाधिराजकी पुत्रवधू तथा भारत-साम्राज्यकी अधीश्वरी होते हुए भी केवल पतिप्रेमकी व्याकुलताके कारण इतने बड़े रास्तेको पैदल चलकर तै किया था। मार्गके कष्टसे अवसन्न हो जानेपर भी पतिके मुखको देखकर प्रफुल्लित रहती थीं, पैरमें कांटोंके गड़ जानेपर पीड़ाको हंसती हुई सह लेती थीं। वृक्षोके नीचे कंक-ड़ीली जमीनपर सोकर भी अपने प्राणाधिक पतिको सदा प्रफुल्ल रखनेकी चेष्टा करतीं और गृह रहते समय अनेकों दास दासियों-को जितना करना सम्भव न था वह अकेली, उमरकी छोटी होते हुए भी, रात-दिन कठिन परिश्रम करके -दूरवर्त्ती गोदावरी नदीसे जलसे भरा हुआ घड़ा ले आकर, फूल चुनकर और फल तोड़कर—थके हुए पतिदेवके पावोंको दबा राज्याधिकारसे वञ्चित और निर्वासित पतिके संतप्त प्राणको सुख-शान्तिसे शीतल बनाये रखती थी।

इसपर भी वह जंगल कैसा है ? जिन्होंने वाल्मीकिके महाकाव्य और प्रसिद्ध कवि भवभूतिके उत्तर-रामचरितको पढ़ा है—उत्तर-रामचरितके दण्डकारण्य इत्यादि पहाड़ों, नदियों और झरनोंसे भरे हुए उस विस्तीर्ण वनभूमिके विचित्र वर्णनको जिन्होंने पढ़ा है—वही जानकीजीके वनवास-दुःखका थोड़ा बहुत अनुमान कर सकते हैं। वनमें कहीं भूखे व्याघ्र भयङ्कर गर्जन करके सारे वन-प्रदेशको गुंजित कर रहे हैं, कहीं-कहीं डरावने भालु दल-के-दल घूमते हुए वनैले जीवोंको भी सशङ्कित और संत्रस्त कर रहे हैं, कहीं बड़े-बड़े अजगर अपनी श्वास-अग्निसे ऐसा दावानल उत्पन्न करते हैं जिससे वनका हराभरा शीतल श्यामल प्रदेश झुलस जाता है और कहीं विकराल शरीरवाले वनचर राक्षस हाथमें विषैले अस्त्र लेकर, मनुष्य मारनेकी इच्छासे सदा चारों ओर घूमा करते हैं। पतिप्राणा और प्रेमपरायणा जानकीजी निडर और निश्चिन्त मनसे रातदिन पतिकी सेवामें लगी रहती थीं और पतिका मुख क्षणभरके लिये भी उदास देखती तो उसे प्रफुल्लित करनेके लिये मानों अपना हृदय-पटल खोलकर स्वामीके चरणोंतले फैला देती।

जानकीजीकी जीवनव्यापी अग्नि-परीक्षाका पांचवां परिच्छेद है रावणका अशोकवन। जो पलभरके लिये भी रामचन्द्रजीका विरह-दुःख न सह सकती थीं और जो रामचन्द्रजीको नेत्रोंसे दूर छोड़कर पित्रालय जानेमें भी आनन्द न पाती थीं, आज कहां हैं वह जानकी और कहां हैं उनके प्रेममय राम ! उस समयकी

उनके मनकी अवस्था एक पुरानी कवितामें अच्छी तरह प्रकट हो गयी है। जानकीजी साधुमति विभीषणकी सहधर्मिणी सरमा-को सम्बोधन करके कहती हैं।

"हारो नारोपितः कण्ठे
मया विश्लेषभीरुणा
इदानीमावयोर्मध्ये
सरित्-सागर-भूधराः।"

"सखी, मैं कभी गलेमें हार नहीं पहनती थी कि कहीं रामके हृदयके साथ मेरे तृषातुर हृदयका किञ्चित् विच्छेद न हो जाय, इसी भयसे मैं हार पहनना पसंद नहीं करती थी। एक पतले तागेके समान हारसे जितना विच्छेद और अन्तर हो सकता है, मैं उसे भी सहन नहीं कर सकती थी। इस समय पृथ्वीके किस भागमें मेरे वह राम हैं और किस भागमें मैं हूं और हम दोनोंके बीच न जाने कितने सरिता, सागर और पर्वतोंका अन्तर है।"

जानकीजी रामके प्रेममें इतनी व्याकुल थीं सही, पर क्या फिर वह अपने प्राणाधिक रामचन्द्रजीके पदारविन्दका दर्शन कर सकेंगी? क्या फिर रामचन्द्रजीके साथ हृदयको शीतल करने-वाले प्रेमके अमृत-सागरमें हंसकी भांति गोते ले लेकर पृथ्वीके मनुष्योंको स्वर्गीय प्रेमकी प्रतिभा दिखलायेंगी? फिर क्या कभी समुद्रकी रेखा पार करके पुण्यमय भारतभूमिमें, भारतके स्वर्णसिंहासनपर रामचन्द्रजीकी बाईं ओर विराजेंगी और फिर

क्या कभी अयोध्यामें लौटकर अयोध्याकी अधिष्ठात्री देवीकी नाईं असंख्यों मनुष्योंका पालन तथा असंख्यों मनुष्योंके सुख-दुख और शान्तिकी व्यवस्था करके अपने परार्थ-जीवनको सफल करेंगी? मनमें अब वह आशा तो नहीं है। एकमात्र अपनी निर्मल, तेजोमय, ऊर्ध्वोन्मुख आत्माका अजेय बल अवशिष्ट रह गया है और रह गयी है अपनी हृदयनिहित देवदुर्लभ पवित्रता और पतिप्रेमका पुण्यमय अवलम्बन। किन्तु वह बल और अवलम्बन इतना अधिक है कि दुरात्मा लङ्कापतिके अशोक वनमें असहाय होती हुई भी अपने आप वह असीम सहाय और शौर्य्यसे सम्पन्न हैं, अकेली होती हुई भी अलौकिक शक्तिशालिनी देवीकी भांति सरमा और त्रिजटा इत्यादि अपने भक्तोंके सिवा और सभीके लिये चिन्तातीत हो गयी हैं।

विकराल दांतोंवाली डरावनी राक्षसियां जानकीजीको सदा घेरे रहती हैं, कभी कल्पनातीत भय दिखलातीं, कभी सुख-सम्पद्-का लालच दिखलाकर उन्हें लुभानेकी चेष्टा करती हैं। रावण स्वयं वहां बार बार आकर कभी हाथोंमें खड्ग लिये तर्जन गर्जन करता और कभी हाथ जोड़े सामने खड़े होकर लङ्काका साम्राज्य-सम्पद् जानकीजीके पैरोंपर उपहार देनेके लिये प्रार्थना करता है किन्तु पतिप्राणा जानकीजीकी अत्यन्त उग्र तथा पवित्र दृष्टि जलती हुई बिजलीकी तरह एक प्रकारकी लोकातीत शक्ति प्रकट करके सभीको सैकड़ों हाथ दूर किये रहती है। जो रावण पहले कहीं भी पराजित नहीं हुआ था, वह यहां सतीकी प्रदीप्त दृष्टि

आगे एक तरहसे हार सा गया—क्रोध, दुःख और मनके क्षोभसे थर थर कांपने लगा। सतीके चरित्रकी अग्निपरीक्षा साहित्य-संसारमें सैकड़ों काव्योंमें वर्णित हुई है; परन्तु वैसे सभी काव्य जानकीके चरित्र-परीक्षारूप जगद्दुर्लभ दैवकाव्यके निकट क्षण-भरके लिये टिमटिमाकर एक बार ही बुझ गये हैं। धन्य है भारतभूमि! धन्य है भारतीय आर्य्योंकी धर्ममयी सभ्यता! धन्य हैं भारतके आदि कवि वाल्मीकि तथा धन्य हैं काव्य और इतिहासकी चिराराध्य जगत्पावनी माता जानकी!!

जानकीजीके जीवनकी छठी परीक्षा आज समुद्रके तटपर स्वामीके सम्मुख हो रही है। यह परीक्षा रूपक नहीं, यह सर्वतो-भावेन और सभी प्रकारके अर्थोंमें यथार्थ अग्नि-परीक्षा है। जन्म-दुःखिनी जानकीजी दस मासतक रावणके अशोक वनमें मन और बुद्धिकी अचिन्तनीय और असह्य यन्त्रणासे दग्ध होकर तथा अत्यन्त भीषण चरित्रकी परीक्षामें अपनी अप्रतिहत आत्माकी शक्तिसे सिर्फ अपने चरित्रकी पवित्रताको बचाये रखकर पतिके सम्मुख आयी हैं। इतने दुःख और कष्टके बाद पति आज प्रेम भरी मीठी मीठी बातोंसे उनके हृदयको शीतल करेंगे, इसी आशाकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी हुई हैं। किन्तु अकस्मात् यह क्या हुआ? वह सोचे बैठी हैं कि उनके प्राणाराम राम आज उन्हें नयनोंके जलसे नहलाकर निर्मल मुक्ताकी मालाकी तरह हृदयमें रख लेंगे; रामके उस प्रेमपूर्ण हृदयमें आज कहांसे, किस कारण यह दुर्दमनीय कठोर परिवर्त्तन संघटित हुआ है?

पतिप्राणा स्त्रियां इस पृथ्वीपर पुरुषोंके पापाचारके कारण समय समयपर अनेक प्रकारके दुःख भोगा करती हैं। किन्तु जानकीका आजका दुःख समुद्रसे भी गहरा तथा शैल-शिखर व्यापी दावानलसे भी दुर्निरीक्ष्य है। वह जिस पतिको अपने हृदयमें प्रेमके पवित्रतम आसनपर देवताकी नाईं प्रतिष्ठित करके अहोरात्र पूजा करती थीं, जिसको सदा अपने दूसरे प्राण अथवा दूसरी प्रतिमूर्त्ति समझकर निडर और निर्भर होकर विश्वासी समझती थीं और प्यार करती थी वही पति आज उनके प्रतिकूल आचरण कर रहा है—वही राम आज उनके प्रतिकूल हैं, इसे जानकीजी कैसे समझेंगी और कैसे सहन कर सकेंगी?

रामके इस आकस्मिक चित्त-परिवर्त्तनके दो कारण हो सकते हैं। एक कारण लौकिक है और दूसरा अलौकिक है। अलौकिक कारण है, भाग्यकी विधिलिपि अर्थात् जो नीयति धीरे धीरे जानकीजीके विचित्र जीवनमें स्त्रीचरित्रके विभिन्न अलौकिक सौन्दर्य्योंको चित्रकी नाईं तहपर तह खोलकर दिखाती रही है, उसी अबोध्य तथा कठोर नीयतिकी यह भाग्य-लेखा है जो स्त्री-चरित्रके पूर्ण सौन्दर्य्य अर्थात् सतीत्वके चरमोत्कर्षको दिखलानेके लिये रामचन्द्रजीकी मनोवृत्तिमें स्वयं प्रकट हुई है। इस अलौकिक कारणका अर्थ समझ लेना सम्भव होते हुए भी सरल नहीं है।

लौकिक कारण है, [illegible] और पुरवासी [illegible] [illegible] । [illegible]

जानकीजीको रावणकी नगरीमें कई बार देखा है। पहला दर्शन हुआ है हरी हुई जानकीजीकी खोज करते समय और अंतिम दर्शन हुआ है रावणवध और लङ्का विजयके बाद। हनुमानजीने जब पहले पहल अशोकवनमें जानकीजीका दर्शन पाया तब उन्होंने जानकीजीकी उस समयकी मूर्त्ति देखकर उसको भक्तिसे गद्गद् होकर प्रणाम किया। एक-वस्त्रा, अलंकार विहीना, असहाय रमणी आंसुओंकी धारायें बहा रही है। तथापि अपनी प्रदीप्त अग्निशिखाकी भांति अलौकिक तेजस्विताके प्रभावसे शस्त्रधारी रावणको भी सहमाकर अपने सतीत्वके दुराधर्ष सम्मानकी रक्षा कर रही हैं। इस मूर्त्तिको देखकर हनुमानजी दंग रह गये। हनुमानजीने जब रावणका मृत्यु-संवाद लेकर लङ्कामें प्रवेश किया उस समय भी क्या देखते हैं कि उनकी आराध्य देवी जनकनन्दिनी उसी प्रकार बैठी हुई हैं।

"ददर्श मृजयाहीनां सातङ्कामिव रोहिणीं
वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः समावृताम्।"

माताने स्नानतक भी नहीं किया है। रामको कब क्या होगा, इसी चिन्तासे सर्वदा सशंकित रहती हैं। शरीरकी सुध न लेनेके कारण वह धूलिधूसरित हो रहा है। वह वृक्षके नीचे आकाशसे गिरे हुए तारेको नाईं निरानन्द बैठी हुई हैं; किन्तु वहां भी राक्षसियोंने चारों ओरसे उन्हें घेर रखा है। रामचन्द्रजी यदि स्वयं अशोक-वनमें आकर जानकीकी इस मूर्त्तिको देखते उन्हें ले आनेके लिये किसी दूसरेको न भेजकर स्वयं वहां जाते

तो उनके मनमें कभी भी ऐसा विकार न होता। वह अवश्य भक्तिसे विह्वल होकर—उच्छ्वसित होकर—संसारकी आदर्श रूपिणी इस सतीका उचित स्वागत करके अपने राम नामको सार्थक करते तथा इस प्रेममयीकी प्रेम-तपस्यासे अपने मनमें शान्ति-लाभ करते और हृदयको शीतल करते। किन्तु विधाता-की ऐसी इच्छा नहीं थी। उन्होंने विभीषणको इस कार्यमें नियुक्त किया और जानकीजीको नहला, शरीरमें दिव्य अंगराग लेपन कर और दिव्य भूषण पहनाकर अपने सामने लानेकी आज्ञा दी।

"दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम्।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम्॥"

रामचन्द्रजीके मनमे जो यह असंगत इच्छा उत्पन्न हुई और अनुचित शब्द निकले इसका कारण है भाग्यका खेल। और विभीषण जैसे बुद्धिमान और यथार्थ तथ्यको जाननेवाले धर्मात्मा पुरुष भी एक बार भी उस बातका प्रतिवाद न करके —उस आज्ञाके प्रत्युत्तरमें एक शब्द भी न कह करके —तुरन्त जानकीजीको अंगरागसे पवित्र करने और नाना प्रकारके उत्तम वस्त्रोंसे सुसज्जित करनेके अभिप्रायसे अशोक वनको दौड़ गये, यह भी भाग्यका ही खेल था। परन्तु पतिप्राणा जानकीजी पहले पहल तो लङ्काके आभूषणोंको छूनेके लिए राजी न हुईं। जब विभीषणने आरजू-मिन्नत करके और समझा-बुझाकर उन्हें अंगाभरण धारण करनेके लिए अनुरोध किया तब जानकीजीने

साफ साफ कह दिया, "नहीं, मुझसे यह न हो सकेगा: मैं जिस वेषमें हूं उसी वेशमें पतिका दर्शन करूंगी—मैं अस्नात अवस्थामें ही रामचन्द्रजीके सम्मुख उपस्थित होऊंगी।"

"एवमुक्तवः तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम्।
अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्त्तारं राक्षसेश्वर।"

किन्तु प्रभु-वाक्यपरायण मूर्ख विभीषण जानकीजीके मनोगत भावको समझ न सके अथवा समझनेके लिये चिन्ताकी उच्च चोटीतक पहुंचनेका उन्होंने अवसर ही न पाया। उन्होंने परिचारिकाओंको ताकीद करके जानकीको स्नान कराया और उसे रावणके गृहके रत्नजटित बहुमूल्य वस्त्रों और अलंकारोंसे सुसज्जित करके पालकीमें बैठा रामचन्द्रजीके पास ले चले।

जानकीजी अपनी स्वाभाविक सरलताके अनुसार, रामचन्द्रजीकी दर्शन-लालसाकी अतीव व्याकुलताके कारण दो एक बार आपत्ति करके ही चुप हो रहीं। उन्होंने फिर कुछ न विचारा। किन्तु उनकी पवित्र देह मानों आज दूसरेकी नासमझीके कारण लङ्काके पापार्जित वस्त्रको स्पर्श करके किञ्चित् अपवित्रसी हो गयी—मानों तुलसी, चन्दन और गंगाजल इत्यादिकी पूजार्ह देव-भोग्य सामग्री पापाचारीके व्यवहारसे कलंकित पङ्कको स्पर्श करके किञ्चित् दूषित हो गयी। जो चीज साधारण मनुष्योंके शरीरको सहज ही सह्य हो सकती है वही असाधारण और उच्च श्रेणीके मनुष्योंके सूक्ष्म तन्तुओंवाले शरीरके लिये असह्य हो जाती है। लङ्काके समान पापपूर्ण स्थानके मणि

माणिक्य भी जानकीजीसे सहे नहीं गये, उसने मानों शुद्ध शरीरको किञ्चित् कलुषित कर दिया। जो जानकीजी दस मासतक रावणके बगीचेमें यदृच्छानुसार फल मूल खाकर जीवन-निर्वाह करती रही हैं और लङ्काका एक चित्ता तागा भी न छूकर अपने उसी मलिन वस्त्रमें शरीर ढके रही हैं, आज वही जानकी मानों विभीषणकी नासमझीके कारण राक्षसके उपचार और उपहारको ग्रहण करके देवताओंकी दृष्टिमें भी किञ्चिन्मात्र दूषित हो गयी हैं। इस प्रकार जब वह स्नान और अनुलेपन कर और अपूर्व वस्त्राभूषणसे सज-धजकरके तथा अपने अतुलनीय रूपसे दमकती हुई मूर्त्तिमयी कनक-दामिनीकी तरह रामचन्द्रजीके सामने आ खड़ी हुईं उस समय उनके रूपकी ज्योतिसे सारा जन-समाज मोहित और स्तम्भित हो गया सही, पर रामचन्द्रजीकी मनोवृत्ति और बुद्धि-विवेक सहसा एकदम अंधकारमें डूब गया। इस प्रकारकी अतुलनीय मूर्त्ति—असाधारण रूपवती रमणी—रावण जैसे दुराचारीके नगरमें रहकर अपनी पवित्रता बचाये रखनेमें समर्थ हुई हैं, इस विषयमें रामचन्द्रजीके मनमें सहसा घोरतर सन्देह उत्पन्न हुआ। रामने जब विभीषणको अशोक-वाटिकामें भेजा, उस समय भी उनका मन जरा कलुषित था। उस सन्देहने अब बड़े [illegible] [illegible] रूप धारण करके उनको [illegible] ढक लिया। उनके [illegible] नेत्रोंसे आग [illegible] अग्निकी वर्षा होने लगी। रामचन्द्रजी [illegible] और [illegible] करके क्षणभर तक चुपचाप खड़े रहे.

फिर वो एक लम्बी सांसें खींचकर अपने हृदयकी दहकती विषाग्निको लगातार बाहर करने लगे और जानकीजीके प्रति मर्म-भेदी कठोर वाक्योंका प्रयोग करने लगे।

इस संसारमें जहां अमृत है वहीं विष है। पौराणिक कवियोंने इस तत्त्वके रहस्यको समझा था, इसीलिये उन्होंने अगाध समुद्रसे पहले अमृत निकाला है, पीछे कालकूट विष निकाला है, किन्तु रामचन्द्रजीका हृदय सिर्फ प्रेम, भक्ति, स्नेह और दयाका अगाध समुद्र कहलाता है। नयनाभिराम श्रीराम-चन्द्रजीको जिसने एक बार अच्छी तरह देखा है वही चिर दिनके लिये उनका क्रीत दास बन गया है। श्रीरामचन्द्रजीने समाजके बहिर्भूत और अस्पृश्य निषाद-नायक गुह चाण्डालको भी प्रेमके आवेशमें गाढ़ आलिङ्गन करनेमें संकोच नहीं किया है और सभी अनर्थोंकी जड़, सभीके नाशका मूल कारण विमाताको भी उन्होंने स्नेहके शब्दोंमे सम्बोधन करनेमें कृपणता नहीं दिखलायी है। दीन-दुखी और भिक्षुकोंकी कौन कहे, अयोध्याके पशु-पक्षी भी मानों रामचन्द्रजीके गुणोंसे वशीभूत रहते थे। रामचन्द्रजी जिस मार्गसे चलते उस मार्गके बच्चेसे बूढ़ेतक सभी उनके नव दुर्वादल-के समान श्याम गात्र और शान्त-स्निग्ध नेत्रोंको देखकर अपने नेत्रों और प्राणोंको शीतल करते और क्षणभरके लिये एक प्रका-रके अलौकिक और अननुभूतपूर्व आनन्द-रसमें गोते लगाने लगते। रामचन्द्रजीके उसी हृदय—उसी शीतल अमृत समुद्र-से आज सहसा गरलोद्गार होगा, क्या किसीने इसका अनुमान किया

था ? इसीलिये जो लोग चारों ओर खड़े हैं वे सभी उनके उस समयके चेहरेका तेवर देखकर, भय और दुःखसे व्याकुल हो रहे हैं और सोच रहे हैं कि "हाय ! रामचन्द्रजीको क्या हो गया ! जानकीजीपर यह कौनसा वज्रपात हुआ ! राम जानकीके चिर-कीर्तित अमृतमय प्रेममें किसने कहांसे हलाहल मिला दिया !

उपस्थित दर्शकोंमें सुग्रीव, विभीषण, हनुमान आदि वीरोंने रामचन्द्रजीके चरित्रको कुछ समझा है सही पर, उन्होंने भी पूरी तरहसे समझनेका अवसर नहीं पाया। उनकी दृष्टिमें रामचन्द्रजी वीरोंमें वीर हैं—वीर-श्रेष्ठोंमें महावीर हैं—समरभूमिमें दुर्जय, राजनीतिमें अत्यन्त नीतिकुशल होते हुए भी देवताओंकी तरह दयाधर्मकी मूर्त्ति स्वरूप हैं। किन्तु रामचन्द्रजी पौरुष और साहस, रणक्षेत्रके कठोर कार्यों तथा शत्रु-मित्रके शासन-पालनके निष्ठुर और कोमल दुष्कर धर्मोंमें असाधारण महिमामय और तेजस्वी पुरुष होते हुए भी उनके हृदयका आभ्यन्तरिक अंग कितना कोमल और प्रेममय था, इसे वह लोग नहीं जानते थे—अच्छी तरह नहीं समझ सकते थे। इसीसे वे लोग बिना कारण शुद्धाचारिणी जानकीके प्रति रामचन्द्रजीके ऐसे कठोर व्यवहारको देखकर अत्यन्त दुःखी हुए और एक तरहसे स्तम्भितसे हो गये।

परन्तु लक्ष्मणजीकी अवस्था बिल्कुल भिन्न थी। लक्ष्मणजी जो दूसरोंहीकी तरह सदासे ही सब देखते आ रहे हैं और कानोंसे सुनते आ रहे हैं परन्तु रामचन्द्रजीके आजके इस व्यवहारको देख-कर [illegible] और [illegible] सामने

अंधेरा छा गया, क्योंकि लक्ष्मणजी इस संसारमें यदि कुछ जानते थे तो वह रामचन्द्रजीका हृदय था, यदि किसी पदार्थकी पूजा करते थे तो वह पदार्थ रामचन्द्रजीका चरित्र था। लक्ष्मणने वेद-वेदान्त नहीं पढ़ा था। उन्होंने पढ़ा था केवल रामचन्द्रजीके लोकोत्तर जीवन-वृत्तान्तको। उन्होंने पिता माताकी भी उपासना नही की थी उन्होंने उपासना की थी सिर्फ रामचन्द्रजीके चरण-कमलोंकी। वह आज अपने उसी चिर-परिचित और चिरजीव-नाराधित रामचन्द्रजीको पहचानते हुए भी पहचान न सके। जो रामचन्द्र पृथ्वीको सारी शक्ति और वैभव, कीर्ति और सम्मान एक ओर रखते तो पतिप्राणा पतिमय-जीविता जानकीको दूसरी ओर रखते, संसारकी सारी सुख-समृद्धिकी अपेक्षा जानकीको सहस्रों गुना अधिक समझते थे वही राम आज जानकीके विषयमें कालान्तक यमराजकी नाईं कठोर और भयङ्कर हो गये हैं, रामचन्द्रजीके इस अस्वाभाविक भावपरिवर्तनको लक्ष्मण किसी तरह सहन नहीं कर सकते हैं।

फिर भी लक्ष्मण जैसे रामचन्द्रको जानते थे ठीक वैसे ही रामचन्द्रजीके हृदय और शरीरके अर्धांश—प्रीति और पवित्रताकी साक्षात् मूर्त्ति—जानकीजीको भी जानते थे। जलती हुई आगकी लौमें धूआं उठनेके विषयमें धब्बा लगनेको वह सम्भव समझ सकते थे पर जगत्-पावनी जानकीके चरित्रके विषयमें स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर सकते थे कि उसमें तिलभर भी कलंक लग सकता है। उनकी दृष्टिमे जानकीजी शुद्धि और सौंदर्य्यकी मूर्त्तिमती

देवी हैं और उमरमें छोटी होती हुई भी चरित्र-सम्पद्के कारण सुमित्राकी तरह पूजनीया माता हैं। उन्होंने जानकीजीके दोनों पैरोंको छोड़ अन्य किसी अङ्गको अपनी जिन्दगीमें देखा ही नहीं। रावण जब जानकीजीको हरण कर लिये जा रहा था उस समय जानकीजीने अपना जो वस्त्र गिरा दिया था उस वस्त्रके विषयमें जब रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे पूछा उस समय लक्ष्मणने कहा था, "माताके पांवोंके नूपुरको छोड़ और किसी आभूषणको मैं पहचान नहीं सकता।*" आज उसी सर्वजनपूज्या और सर्व-विध सम्मानार्हा जानकीकी ऐसी लांच्छना देखकर वह मर्मान्तिक दुःखसे व्याकुल हो गये और आकाशके चन्द्र सूर्यको मन ही मन कोसने लगे। मनुष्य-जीवनके अस्तित्वमें ही उन्हें सन्देह हो गया।

---

* पृथ्वीके अनेकों धुरन्धर विद्वान् भारतीय सभ्यताको संसारकी आदि सभ्यता और सम्पूर्णाङ्गसे देव-सभ्यता कहकर इसकी प्रशंसा किया करते हैं। जो लोग इसमें विश्वास नहीं रखते लक्ष्मणके मुखसे निकला हुआ निम्न लिखित श्लोक अवश्य ही उनके मनमें विस्मय और भक्ति उत्पन्न कर देगा। रामने जब लक्ष्मणको जानकीके गिराए हुए वस्त्रोंमेंसे केयूर और कुण्डल इत्यादि भूषणोंको पहचान लेनेको कहा तब लक्ष्मणने कहा था—

"नाहं जानामि केयूरं नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।"

अर्थात् मैं इन केयूरोंको नहीं पहचानता जो हाथके अलङ्कार हैं। मैं इन कुण्डलोंको भी नहीं पहचान सकता क्योंकि ये कानके भूषण हैं। मैं तो सिर्फ पाँवोंके दोनों नूपुरोंको पहचानता हूँ, क्योंकि नित्यप्रति मैं माताके चरणोंको वन्दना किया करता था।

लक्ष्मण एक एक वार अपनी आंखोंके सामने रामचन्द्रजीकी उस समयकी मूर्त्तिको देखते और मानों सोचते थे,-"जिसे आज-तक दयाका सागर और महत्व तथा मधुरताका आदि स्थल समझकर पूजा करता आया हूं वही राम क्या मेरे सामने वैठे हैं? जिन्हें विवाहके दिनसे जानकीजीको दिनमें दश वार देखे विना चैन ही नहीं मिलता था और जानकीजीको यथार्थ ही जीवन-सर्वस्व समझकर जो व्याकुल होकर पूजते थे वही राम क्या मेरे सम्मुख वैठे है? जिन्होने अयोध्याके राजभवन अथवा अत्यन्त दुर्गम दण्डकारण्यमें जानकीको अपने कोमल .. वाहुओंको छोड़ और किसी उपधानपर सिर रखने ही नहीं दिया और जानकीको आंखोंकी आड़ करके एक डग भी दूर हटाना पसन्द नही करते थे वही राम क्या मेरे सामने वैठे हैं? अधिक क्या, जो राम जानकीके विरहमें वन-मार्गों और गिरिशिलाओंपर व्याकुल होकर उन्मत्तकी भांति विलाप करते थे और वनके लता-वृक्षों और पशु-पक्षियोंको सम्वोधन कर अपने हृदयके दुःसह दुःख और मर्मान्तिक पीड़ाको प्रकट करते थे, वही राम क्या मेरे सम्मुख खड़े हैं?

इसी प्रकारकी अनेकों बातें लक्ष्मणको याद आयीं। लक्ष्मणका भ्रातृस्नेहाकुल और अनाविलकी नाईं धर्ममय उदार हृदय जलकर खाक होने लगा। वह पागलसे हो गये। श्रीरामचन्द्रजीने जानकीके परित्यक्त वस्त्रको देखकर क्षणभर संज्ञाशून्य रहनेके वाद फिर किस प्रकार करुण स्वरमें विलाप किया

था॰*वह बात लक्ष्मणको याद आयी। रामचन्द्रजी सुग्रीवके साथ मैत्री स्थापन करनेके बाद प्रस्रवण पर्वतके सुरम्य अधोभागमें कुन्द, कदम्ब, सिन्धुवार, शाल, शिरिष और मालती इत्यादि वनज पुष्पोंकी शोभा देखकर पुनः पुनः जानकीजीका नामोल्लेख करके कितनी ही बातें करते थे और वर्षाऋतुके आनेपर नव जलधरका गम्भीर गर्जन, मोरोंका कुहुक-रव और कोमल पंखरियोंवाली चिड़ियोंका मधुर कुंजन सुनकर जानकी की बातें कहते और विलाप करते थे। यही सब बातें लक्ष्मणको याद आयीं।

और समुद्र-तटकी एक चिरस्मरणीय बात उन्हें याद आयी। प्रेमावतार रामचन्द्रजीकी वह अपूर्व कहानी वाल्मीकिकी कृपासे प्रेमकी गाथाकी नाईं अब भी स्वर्णाक्षरोंमें लिखी हुई है और इस पृथ्वीपर जहां जो कोई प्रेमकी तपस्याके लिये दीक्षा लेता है यह कहानी उसके हृदयको अमृतकी धाराकी नाईं स्पर्श करती है। अतएव राम-जानकीके प्रेम-यज्ञकी पूर्णाहुति देते समय उस कहानीका एक अक्षर भी छोड़ा नहीं जा सकता। हमने जानकीका पतिप्रेम कुछ कुछ समझा है, अब हमें समझ लेना चाहिये कि जानकीके प्रति रामचन्द्रका कैसा प्रेम था और यह भी अनुभव कर लेना चाहिये कि रामचन्द्रजी जानकीको दण्ड देकर अपनी आत्माको ही कितने परिमाणमें पीड़ित कर रहे हैं।

"[illegible]।
[illegible]।"

सन्ध्याका समय है। आकाशमें शरत्कालके चन्द्रमाकी चांदनी छिटक रही है। सामने उत्ताल तरंगोंवाला समुद्र लहरें मार रहा है और उसकी प्रत्येक लहरोंकी नील आभाके ऊपर चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब और ज्योत्स्ना क्रीड़ा कर रही है। रामचन्द्रजी साथकी सेनाको समुद्रके तटपर ठहरनेकी आज्ञा देकर आप महेन्द्र पर्वतके* शिखरपर जानकीके ध्यानमें अकेले बैठ हुए हैं और मानों लहरोंसे खेलती हुई चाँदनीके तरल सौन्दर्य्यको देखकर जानकीके रूपकी चन्द्रिकाको स्मरण कर रहे हैं। जानकीका उद्धार करनेके लिये किस प्रकार दुस्तर समुद्रको पार करेंगे, इसीको सोचते हुए लम्बी सांस ले रहे हैं। इस समय समुद्र मतवालेकी तरह एक एक बार अट्टहास्य कर उठता है, और दूरसे सायँ सायँका जो शब्द सुनायी दे रहा है उससे ऐसा मालूम पड़ता है, मानों समुद्र भी शोकसे विलाप कर रहा है।

"सागरञ्चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम्।
सागरञ्चाम्बरञ्चेति निर्व्विशेषमदृश्यत।"

रामचन्द्रजीको जान पड़ता है कि उनके सिरके ऊपर मेघोंसे ढका हुआ जो आकाश लटक रहा है वह भी एक महासमुद्र है, और आकाशकी छायासे ढका हुआ असीम समुद्र भी एक अधःक्षिप्त आकाश है। देखते २ रामचन्द्रजीका हृदय एकबारगी अवसन्न हो गया और समुद्रकी ठंढी वायुसे उनका सारा शरीर

* "महेन्द्रमथ संप्राप्य रामो राजीवलोचनः।
आरुरोह महाबाहुः शिखरम् द्रुमभूषितम्॥"

शिहर उठा। रामचन्द्रजीके सुख-दुःखके साथी, मित्र, सहायक और नित्यसेवक लक्ष्मण आड़में निकट ही बैठे हुए थे। लक्ष्मण समीप हैं, ऐसा समझकर रामचन्द्रजीने समुद्रकी हवाको सम्बोधन करके एक लम्बी सांस ली और ऊपर एक बार चन्द्रमाकी ओर दृष्टि करके बाष्परुद्ध कण्ठसे बड़ी ही व्याकुलताके साथ कहने लगे—

वाहि वात यतः कान्ता, तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः॥"

"जाओ, हवा जाओ, जहां मेरे बिरहसे शीर्ण दुस्सह दुःखसे व्याकुल मेरी प्राणप्यारी जानकी अकेली बैठी हुई हैं, धीरे धीरे बहती हुई एक बार वहां जाओ और उनके स्पर्शसे शीतल और सुगन्धपूर्ण होकर फिर मेरे पास लौटकर मुझे स्पर्श करो। तब तुम्हारे छूनेसे ही मैं उनके शरीरके स्पर्श करनेका अकथनीय आनन्द पा जाऊंगा और वह भी मेरी तरह आकाश और चन्द्रकी ओर दृष्टि लगाये हुए हैं; इसलिये इस चन्द्रमाको देखनेसे ही मैं उनको (सीताको) आंखोंके सामने देखनेका आनन्द उपभोग करूंगा।*

कहते कहते रामचन्द्रका अगाध हृदय उमड़ उठा। एक बार मालूम हुआ मानों समुद्रमें कूद पड़ेंगे—समुद्रकी अतल शय्यापर अनन्तकालके लिये शयन करके अपने हृदयकी जलनको ठण्डी करेंगे। तत्पश्चात् एक ओर पुरुषार्थपूर्ण प्रतिहिंसा

* श्लोकका शब्दार्थ न देकर इसका सिर्फ भावानुवाद कर दिया है।

और दूसरी ओर जीवन-सर्वस्व जानकीको देखनेकी अतुल उत्कण्ठा दोनों ही हृदयमें फिर जाग उठीं। रामने कहा, "इस प्रकारका व्यवहार मेरे ऐसे मनुष्यको नहीं शोभता—

"यदि तन्त्वायमानस्यं शक्यमेतेन जीवितुम्।
यदहं त्वा च वामोरुरेकां धरणिमाश्रितौ।"

मैं और मेरे हृदयकी जानकी दोनोंही एक ही पृथ्वीपर वास करते हैं, इसीसे मुझे इस समय सन्तोष होता है। मैं इसी बातको सोचकर और इसी प्रकार जानकीको हृदयमे अनुभव कर जीवन धारण करूंगा और जानकीका उद्धार करके संसारसे उऋण होऊंगा। निर्जल शस्य-क्षेत्र समीपके जलपूर्ण भूमिके अन्तःस्रोतके संयोगसे जैसे गीला बना रहता है, उसी प्रकार मैं भी 'मेरी जानकी जीती है' इस धारणासे हृदयको शीतल बनाये रखकर अपना जीवन धारण करूंगा।

रामके मुखसे ऐसी और भी अनेकों बातें निकलीं। प्रत्येक बातका भावार्थ यही था कि रामका हृदय एक सुन्दर पिञ्जरा है और उस पिञ्जरेमें नित्य विचरण करनेवाली चिड़िया राममोहिनी जानकीजी हैं। रामचन्द्रका शरीर सभी प्रकारके पुरुषार्थ और शक्तिसे पूर्ण विकसित एक नक्षत्र है और उस नक्षत्रमें प्राण-देवी हैं पुण्यमयी जनकनन्दिनी। यों तो सभी सच्चरित्र मनुष्य अपनी जीवन-संगिनीको हृदयसे प्यार करते हैं, किन्तु जानकीके प्रति रामका प्रेम कुछ भिन्न प्रकारका था। उसमें प्रीति, भक्ति, हृदयका प्यार, प्रेमाकुल शरीरकी उन्नत लालसा अत्यन्त अधिक और

अच्छी तरह मिल जानेसे सदा एक विचित्र वस्तुकी नाईं विकसित रहती थी और जानकीजीके भौंरोंकेसे काले केश, नीलकमलसे स्निग्ध नेत्र, लाल धकधक करते हुए दोनों होठोंसे लेकर शरीरके सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग सर्वदा ध्यानकी वस्तुकी नाईं रामके मानस-नेत्रोंमें वर्त्तमान रहते थे।

जानकीजी रावणके गृहमें रहती हैं; किन्तु रामकी आत्मा—रामका हृदय, मन और प्राण—मानों प्रेमके किसी अदृश्य और अलौकिक शक्तिके प्रभावसे सूक्ष्म शरीरी पदार्थकी नाईं सदा जानकीके पास रहते हैं। रामचन्द्रजीको दृढ़ विश्वास है कि उनकी प्रेमकी पुतली जनकसुता नवयुवती होती हुई भी देव-कन्याकी नाईं तेजस्विनी सती है और अपने सर्वोच्च सम्मान और सतीत्वकी रक्षाके लिये वे देवांगनाओंकी नाईं शक्तिशालिनी हैं। लंकामें तो एक ही रावण है, पर रामका यह दृढ़ विश्वास है कि यदि इस प्रकारके लाखों रावण मिलकर भय दिखावें तो भी सती साध्वी जानकीकी स्वाभाविक तेजःशक्तिको विचलित नहीं कर सकते। रामचन्द्रजी इसी प्रकार सोचते सोचते लक्ष्मणकी ओर देखकर फिर बाष्पगद्गदकण्ठ हो बोले।

मेरी वह अनिन्द्याङ्गी जानकी इस समय राक्षसके चंगुलमें पड़कर आर्त्तनाद कर रही है। हाय! मैं जिनका स्वामी हूं वह अनाथाकी नाईं सहायताके लिये पुकार रही है तौभी मैं उनका परित्राण करनेके लिये आगे नहीं बढ़ता। मैं इसे किस प्रकार सहन कर सकता हूं। वह [illegible] जानकी [illegible] राक्ष-

धिराज दशरथकी पुत्रवधू और मेरी प्राणाधार हैं। मेरी इस प्रकारकी जानकी राक्षसके दुर्वान्त वाक्यवन्त्रणासे पीड़ित हो रही हैं, यह मुझसे कैसे सहा जा सकता है? शरत्कालकी चन्द्रकिरण जिस प्रकार नीले बादलोंके पर्देको भेदकर अपनी पूर्ण आभाके साथ चमकती है, उसी प्रकार जानकी भी दुर्द्धर्ष राक्षसोंको जीतकर अपनी स्वभावशुद्ध चरित्र-शक्तिसे दमकती हुई मुझे दर्शन देंगी। वह तो यों ही कृशाङ्गी हैं, तिसपर भी विदेशमें, भाग्यके फेरसे अनाहार और अन्तर्दाही शोकके कारण और भी कृश हो जायंगी! हाय! कब मैं उन सभी दुःखोंके मूल कारण महापापी रावणके वक्षःस्थलपर भीषण आघात कर पाऊंगा? कब मैं उस आघातसे रावणका वध करके सीताके हृदयको शीतल करूंगा? हाय! कब वह स्वर्गीय प्रतिमा देवी-स्वरूपा सती, मेरी जीवनमयी जानकी औत्सुक्यपूर्ण व्याकुलतासे मुझसे गले मिलकर और आनन्दाश्रु बहाकर हृदयको शीतल करेंगी? कब कितने दिनके बाद हृदय निहित शोक शल्यरूपी मलिन वस्त्रको शरीरसे उतारकर जानकीरूपी शुक्लाम्बरको धारण करूंगा?"*

रामचरितके ये सब चित्र और रामकी ये सब बातें लक्ष्मण-

---

* "कदा नु खलु मे साध्वी सीताऽमरसुतोपमा,
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं जलम्।
कदा शोकमिमं घोरं मैथिलीविप्रयोगजं,
सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा॥"

को एक एक करके स्मरण हो आयीं: और जो राम सचमुच गृहप्रतिष्ठित देवीकी नाईं जानकीकी पूजा करते थे, वही राम आज जानकीको पाप-स्पृष्ट निकृष्ट वस्तु समझकर असंख्यों मनुष्योंके सामने कटुवाक्योंसे जर्जरित करके उनका परित्याग कर रहे हैं, इस दृश्यको देखकर लक्ष्मणके हृदयमें एक प्रकारकी आगसी लग गयी। किन्तु राम पर्वतकी नाईं अटल हैं। उन्हें न दया आती है, न दुःख होता है, हृदयमें पूर्वसञ्चित प्रीतिका कण मात्र भी संचार नहीं होता। वह मानों अपने आपको एकबारगी भूलकर और अपने जीवनकी आदिसे अन्ततककी सारी घटनाओंको विस्मृत करके नील-कुञ्चित-कुन्तला रूपोज्ज्वला जानकीको एक एक बार कनखियोंसे देखते हैं और एक प्रकारके अचिन्तनीय क्रोधसे भस्म हो होकर जानकीसे कहते हैं।

"भद्रे! तुम जहां चाहो चली जाओ, अब तुम्हें मैं नहीं चाहता। नेत्र-रोग-ग्रसित मनुष्य जैसे दीपककी शिखाकी ओर ताक नहीं सकता, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी ओर दृष्टिपात नहीं कर सकता हूं। जिस स्त्रीने परवश होकर दूसरेके गृहमें वास किया है, उस स्त्रीको क्या कोई सत्कुलमें पैदा हुआ तपस्वी पुरुष पुरानी मित्रता और स्नेहके लालचसे ग्रहण कर सकता है? यह सभी जानते हैं कि रावण महापापी है। जब उसने पाप दृष्टिसे तुम्हें देखा है, तब मैं पर, इस कुलमें जन्मा हुआ तुम्हें फिर कैसे ग्रहण कर सकता हूं?"

राम, इन सब बातों और इनसे भी अधिक कठोर और

अकथ्य शब्दोंका प्रयोग कर जानकीजीके हृदयको विदीर्ण करने लगे और उस समय समुद्रके किनारे शब्दहीन निस्पन्द जन-समुदायमें जितने प्रकारके मनुष्य खड़े थे, सभीको दुस्सह शोकसे व्याकुल करने लगे। किन्तु लक्ष्मण अब इस समय व्याकुल नहीं हैं। उनका हृदय थोड़ी देर पहले अत्यन्त विकल हो गया था पर वह व्याकुलता अब नहीं है। इस समय वह ध्यान लगाये योगीकी नाईं अपने आपमें मग्न हैं। उनके मुखकी कान्ति मलिन पड़ गयी है। मुख मानों फटा पड़ता है पर उससे बात नहीं निकलती। उन्हें देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि मानों ईश्वरके ध्यानमें लीन होकर उनका प्राणपखेरू इस संसारको त्यागकर उड़ गया।

यह कहना व्यर्थ है कि जानकीकी अवस्था इस समय बिलकुल विचित्र है। जानकीजी अपने सतीत्व और पवित्रताकी रक्षा करनेमें स्वर्गीय वीराङ्गनाकी नाईं तेजस्वी स्त्री होती हुई भी बचपनसे ही स्नेहशील, नम्रस्वभावा और कोमलांगी थीं। स्वामीके निकट वह सदा ही वृक्षसे लिपटी हुई सुन्दर लताकी नाईं रहती थीं। जबसे वह स्वामीके गृह आयी हैं सर्वदा ही स्वामीके स्नेह, आदर और हार्दिक प्रेमके सैकड़ों उपचारोंसे लालित-पालित हुई हैं। वह जैसे रामचन्द्रजीको संसारमें अद्वितीय वीर और महात्मा समझती थीं वैसे ही अपनेको भी रामचंद्रजीके हृदयकी उपयुक्त राजेश्वरी—रामचन्द्रके लिये उपयुक्त देवी—समझकर अपना आदर करती थीं। आत्मसम्मानका यह भाव पतिप्रेममें ही सीमित रहता था, कभी स्वामीको

अतिक्रमाकर अभिमानके रूपमें नहीं प्रकट होता था। इसका परिणाम यह होता कि जानकीके नेत्रोंमें कोई क्रोधकी झलक न देख पाता। जानकीका अमंगल चाहनेवाली स्त्रियां भी कभी उनके मुखसे कोई कड़ी बात सुनकर दुःखी न होतीं। आज इस जानकीके स्वभावमें क्षणभरके लिये एक विचित्र परिवर्त्तन दिखलायी पड़ा—जानकीजीने क्षणभरके लिये अपनी स्वाभाविक कोमलताको भूलकर एक गम्भीर भाव धारण किया, जो कड़ा तो न था पर कुछ उत्तेजित था, उसमें पूजाके योग्य अभिमानकी तनिक स्वाभाविक झलक थी।

जानकीजी यदि चाहतीं तो श्रीरामचन्द्रजीको अनेकों कड़ी बातें कह सकती थीं। वह कह सकती थीं—"नाथ! तुम अयोध्याके राजसिंहासनसे वञ्चित होकर वनवासी हुए हो, इसमें तुम्हारी विमाताका दोष है न कि मेरा दोष है? तुमने वनवासके दिनोंमें मुझे ऋषि-तपस्वियोंके आश्रमके निकट—दीवारोंसे घिरी हुई किसी अच्छी कुटीमें, पहरुओंकी रखवालीमें न रखकर घास-फूसकी कुटीमें—बिना रक्षकके रक्खा था, इसमें तुम्हारा दोष है न कि मेरा? तुमने कुटिलस्वभावा शूर्पणखाका अपमान और खर दूषण इत्यादि राक्षसोंका वध करके लङ्काके पापी रावणको अपना जानी दुश्मन बना लिया था, इसमें तुम्हारा दोष है न कि मेरा? और तुम उस रावणका, मेरे हरणका संवाद सुनते ही तत्काल नाश करनेमें समर्थ नहीं हुए हो, इसमें तुम्हारा दोष है न कि मेरा?"

परन्तु जानकीने रामचन्द्रजीके प्रति कटु वचनके प्रत्युत्तरमें कटु वचनका व्यवहार नहीं किया। वह रामके उल्लिखित दुर्वचनोंको सुनकर पहले तो लज्जासे गड़ गयीं—पत्थर हो गयीं। रामचन्द्रजी इतने लोगोंके सामने, इस प्रकार जनतासे परिपूर्ण स्थानमें मुझे विषैले वाक्यशूलोंसे विद्ध करके मेरी और अपनी—दोनोंकी ही लाञ्छना कर रहे हैं, इस बातको सोचकर जानकीजी लज्जासे एकबारगी गड़ गयीं; मानों उन्होंने अपने शरीरमें अपने ही पैठकर लोगोंकी दृष्टि बचाकर छिप जाना चाहा।* इसके बाद थोड़ी देरतक वह करुण और अनुच्च स्वरमें रोती रहीं। जानकीजी पहले कभी रोयी न थीं। आज थोड़ी देरतक मनभरकर रोती रहीं। पिता जनक—वह शान्तिमूर्त्ति राजर्षि—तो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। अयोध्यामें सास श्वसुरके कोमल मधुर लाड़-प्यारके सामने अपने पिताको याद करनेका अवसर ही नहीं पाती थीं और पतिके प्रेमके आगे उन्हें संसारकी कोई चिन्ता ही न थी। वह जिस रास्तेसे चली जाती थीं दास दासियां आगे आगे दौड़कर उस रास्तेसे कुश काँटोंको हटा देती थीं। अतएव अयोध्यामें कभी उनकी आंखोंसे एक बून्द आंसू भी न गिरा था। आज उनके खिले हुए नील कमल सदृश नेत्रोंसे लगातार आंसुओंकी वर्षा होती रही। उनके हृदयके राम—प्राणोंसे प्यारे राम—हृदयके आराध्य देव—उनके

* "प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा।
वाक्शरैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्त्तयत्॥"

पति—उनके हृदयकी हड्डी पसलीतकको स्वप्नातीत पाप शब्दोंसे जला जलाकर सभी लोगोंके सामने उनका परित्याग कर रहे हैं। इस अचिन्तनीय घटनाको देखकर उनका वक्षःस्थल नेत्रोंकी अश्रुधारासे भीगता रहा। अग्निपरीक्षा और किसे कहते हैं? यही तो जानकीकी सहस्र अग्निपरीक्षा है। जब इस भीषण हृदय-दाह और निरन्तर अश्रुवर्षासे मन कुछ हलका हुआ, जानकीको जब ऐसा प्रतीत हो गया कि उनके पार्थिव-जीवनका अब अन्त हो गया—पृथ्वीपर उनका अब और कोई नहीं रह गया, तब उन्होंने आँचलसे आंसुओंको पोंछा और रामकी ओर देखकर गद्गद् कण्ठसे कहने लगीं।

"किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम्,
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव।
न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि,
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे।
पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशंकसे,
परित्यज्यैनां शङ्कान्तु यदि तेऽहं परीक्षिता।"

पाठक देखते हैं कि जो जानकी दण्डभरमें दस बार रामका नाम लेकर भी तृप्त न होती थीं, वह जानकी आज रामचन्द्रजीको केवल 'वीर' 'महाबाहो' आदि शब्दोंसे संबोधित कर रही हैं। रामकी रण-दुर्मद वीर-शक्तिपर ही दृष्टि रखकर [illegible] शब्दोंकी योजना कर रही हैं। एक बार भी अपने निरपरिमित स्नेह, करुणा और महत्ताको लक्षित करनेवाले किसी शब्दका

प्रयोग कर उनको दयासे पिघलानेकी चेष्टा नहीं करती है। यही स्नेह और कोमलताकी मूर्त्ति, जानकीके कोमल हृदयकी अन्तिम सीमा है—कटूक्तियोंकी पराकाष्ठा है। क्रोधकी एक और पहचान होती है। उपदेशकी गम्भीरतामें जानकी युवती होती हुई भी चरित्रकी दुर्निरीक्ष्य उच्चताके कारण इस समय वृद्धा तपस्विनी प्रतीत होती हैं। जानकीजी चाहती नही, तथापि उनकी असाधारण, अलौकिक और ऊर्ध्वचारी प्रकृति इस कठिन विपत्ति अथवा परीक्षाके समय स्वयं अपने उत्कर्षकी ऊंचीसे ऊंची चोटीपर पहुंचकर रामको सम्बोधन करते समय समस्त संसारको ही मानों स्त्री-चरित्रके विषयमे शिक्षा दे रही है। जानकीजी कहती हैं—

"वीरवर! नीच जातिके पुरुष नीच जातिकी स्त्रियोंके प्रति जैसे कड़े शब्दोंका व्यवहार करते हैं तुम भी मेरे प्रति वैसे ही अयोग्य अश्रवणीय कड़े शब्दोंका व्यवहार करके क्यों आत्म-निग्रह कर रहे हो? तुम जैसी मुझे समझते हो मैं वैसी स्त्री नही हूं। चरित्रबलही मेरा एकमात्र भरोसा है। मैं अपने उसी चरित्रके नामसे शपथ कर कहती हूं कि मैं सम्मानयोग्य और सर्वथा विश्वसनीय हूं। तुम मेरा सम्मान और विश्वास करके मनमे शान्ति लाभ करो। तुम नीच प्रकृतिकी स्त्रियोंके चरितका विचार करके सारी स्त्रीजातिको ही एक समान समझे बैठे हो—स्त्रीजाति मात्रके चरित्रपर सन्देह कर रहे हो। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम यदि मुझे जानते हो, तुम्हारे सामने

यदि मेरी परीक्षा पहले भी हो चुकी हो तो अपनी यह शङ्का और सन्देह तुम एकबारगी त्याग दो।"

जानकी फिर कहती हैं—"तुम और मैं बहुत दिनोंतक एक साथ रहे हैं, बहुत दिनोंतक हमने एक दूसरेको अधिकाधिक अनुरागसे प्यार किया है। यदि इससे तुम मुझे अच्छी तरह न समझ सके हो तो, मैं योंही मर चुकी हूं, फिर दुहराकर मरना क्या है? तुमने जब महावीर हनुमानको मेरी खोज करनेके लिये लङ्कामें भेजा, तभी क्यों नहीं मेरे परित्यागका समाचार भेज दिया? ऐसा करनेसे मैं तो उसी समय इस प्राणको त्यागकर तुम्हारे सभी कष्टोंका अन्त कर दे सकती थी। तब इस प्रकार मेरा उद्धार कर तुमको अपना जीवन संकटमें डालकर व्यर्थ इतना कष्ट न उठाना पड़ता और न तुम्हारे इष्ट मित्रोंको इतना कष्ट उठाना पड़ता।

जिनके शरीर वा मनमें किसी प्रकारका पाप छुपा रहता है, उसका हृदय, विचारकर्त्ताके सम्मुख खड़े होनेपर, अपने आप काँपने लगता है—चेहरा पीला पड़ जाता है। जानकीजी भाग्यके फेरसे विपत्तिमें पड़ी थीं सही, पर उनका हृदय और मन सदा पर्वतके समान अटल अचल बना रहा, मुखश्री रविकरणकी स्वाभाविक ज्योतिसे चमकती थी। उनके प्रत्येक भाव उपदेशपूर्ण थे, पर उनमें कातरताका लेश भी न था। रामचन्द्र [illegible] भर्त्सना, [illegible] नीति और [illegible] तुलनाएँ किये जाते कितने ही प्रतिवाद क्यों न हों पर हृदयकी

उच्चता, उदारता, निष्कलङ्क प्रेमकी महत्तामें इस समय वह जानकीके सामने प्रभाहीनसे हो गये; क्योंकि रामका मन इस समय सन्देहके अन्धकारसे घिरा हुआ है, उनका प्रेम संसारकी घृणित नीतिके सामने हारकर कोंढ़ीसे झरे हुए फूलकी नाई मुरझा गया है। पर जानकीका प्रेम उस घृणित नीतिको पांवो तले कुचलकर अपनी पूर्ण ज्योति और पुण्यमय परोपकारके साथ चमक उठा है। इसीलिये जानकीके मुखसे इस समय जो शब्द निकल रहे है, वे किसी दैवी शक्तिसे पूर्ण प्रतीत होते हैं जानकीजी उन शब्दोंकी उदारता और गम्भीरतामें एक प्रकारसे आत्मविस्मृतसी होकर फिर बोलीं :—

"त्वया तु नृपशार्द्दूल रोषमेवानुवर्त्तता,
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।
अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात्,
मम वृत्तञ्च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम्।
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीड़ितः,
मम भक्तिश्च शीलञ्च सर्वन्ते पृष्ठतः कृतम्।"

अर्थात्—

"राजाधिराज! तुम्हारे लिये यह दुःखकी बात है कि तुमने नीच प्रकृतिके मनुष्यकी नाईं क्रोधके वशीभूत होकर मुझ सरीखी स्त्रीको साधारण श्रेणीकी स्त्रियोंके समान समझ लिया। तुम विचारवान मनुष्य हो, तथापि तुमने एक बार भी मेरी जाँच न करके—मेरा जानकी नाम इस संसारमें क्यों

इतना सम्मानित समझा जाता है, इसका एक बार भी विचार न करके—मेरे आदरणीय चरित्रकी उपेक्षा की है। और तुमने बचपनमें जो संकल्प करके मेरा पाणिग्रहण किया था, उसे और मेरी प्रीति,भक्ति आदि सभीको एक दम पैरोंतले ठुकरा दिया है।"

यह कहते कहते जानकीके शरीरसे एक प्रकारकी स्वर्गीय ज्योति प्रकट हो गयी और हृदयमें एक प्रकारकी अनिर्वचनीय दैवी शक्तिका संचार हुआ। वाष्पगद्गद् कण्ठसे जनकनन्दिनीने लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा, "सुमित्राकुमार !"—माता लक्ष्मी इस समय लक्ष्मणको भी देवर अथवा वत्स लक्ष्मण कहकर सम्बोधन नहीं करती हैं। लक्ष्मण भी मानों कोई अपरिचित हैं इसी कारण वह उन्हें इस प्रकार सम्बोधन कर रही है। वह कहती हैं "सुमित्राकुमार ! मेरी अन्तिम बात रखो। मेरे लिये अभी यहां एक चिता तैयार कर दो। चिताकी जलती हुई आग ही मेरे इस आकस्मिक दुःखका एक मात्र औषध है। मैं झूठा अपवाद सहकर क्षणभर भी जीवित रहना नहीं चाहती। पति मेरे व्यवहारोंसे सन्तुष्ट नहीं हैं। जब उन्होंने सबके सामने मेरा परित्याग कर दिया है, तब अग्नि ही मेरे लिये एकमात्र शरण है। मैं अग्निमें प्रवेश करके इस देहका अवसान करूंगी।"

हमने पहले ही कहा है कि लक्ष्मणजी इतनी देरतक ध्यानमें योगीकी तरह निश्चल होकर बैठे थे। जानकीकी आज्ञासे सहसा उनका ध्यान भङ्ग हुआ। उन्होंने एकाएक होशमें आकर आंखमें नेत्रोंको नाचकर रामचन्द्रजीकी ओर एक बार देखा और जानकी-

की अग्नि-परीक्षा ही रामके मनका संकल्प है, यह उनके रंग ढंगसे समझकर तुरत चिता तैयार की।

लोग मूर्त्तिका विसर्जन करते हैं नदी या समुद्रके जलमें; पर आज्ञाकारी लक्ष्मणने अयोध्याकी स्वर्ण-प्रतिमाको—रामचन्द्रजी-के हृदयकी अधिष्ठात्री देवीको—दूरवर्त्ती लङ्काके बाहरी दरवाजे-पर चिताकी अग्निमें विसर्ज्जन करनेके लिये शीघ्रताके साथ पूरी तैयारी कर ली। लक्ष्मणने क्या इस समय मिथिला और अयोध्याका स्मरण करनेका अवसर पाया था? हाय मिथिलाके वृद्ध राजा जनक! तुम इस समय कहां हो? तुम जिसे पलभर भी न देखनेसे संसारको सूना समझते थे, जिसको सन्तानके रूपमें पाकर अपनेको गौरवान्वित समझते थे, तुम्हारी वही हृदयकी जानकी आज सदाके लिये संसार त्याग करने जा रही है। तुम उसे एक बार देख भी न सके! और अयोध्याकी दुःखिनी महारानी माता कौशल्या! तुम इस समय कहां हो? तुम राम सरीखे पुत्रकी अपेक्षा भी जिस जानकीको अधिक प्यार करती थी—जिसके निर्मल और कोमल स्वभाव और सुन्दर मुखच्छविको देखकर संसारके सारे दुःखोंको भूल जाती थी, तुम्हारी वही प्राणोंसे प्यारी पतोहू—तुम्हारे हृदयकी सम्पत्ति—आज चिताकी अग्निमें जीती हुई जल रही हैं! तुम एक बार उनके चन्द्रमुखके देखनेका भी अवसर न पा सकीं!

चिताकी अग्नि लहलहाकर जल उठी। चारों ओर जो लोग खड़े थे सभी धधकती आगकी लपकती लौकी ओर टकटकी

लगाकर देखते रहे। उन्होंने रामके क्रोधको इतनी देरतक साधारण मनुष्यके क्रोधके समान समझा था। रामने किस अभिप्रायसे जानकीके प्रति इस प्रकार क्रोधकी अग्निवर्षा की थी इतनी देरके बाद उन लोगोंकी समझमें आया। किन्तु जानकीजी अपनी अन्तिम घड़ीके समय भी अपने चरित्रकी महत्ताके कारण धीर-स्थिर हैं और पतिप्राणा सतीके पातिव्रत्य धर्मपर अचल अटल हैं। रामने उनका परित्याग किया है, किन्तु उन्होंने रामका परित्याग नहीं किया है। उन्होंने, स्वामीकी तजी हुई साधारण स्त्रियोंकी नाईं आगकी ओर न दौड़कर, दूरवर्त्ती तीर्थकी यात्रा करनेवाली तपस्विनीकी भांति, स्वामीकी बार बार भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा की और तत्पश्चात् अग्निकी प्रदक्षिणा करके धर्म और देवताओंके उद्देश्यसे ऊपर दृष्टि किये हुए हाथ जोड़कर कहने लगीं—

> "यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्,
> तथा लोकस्य साक्षी माम् सर्वतः पातु पावकः।
> यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः,
> तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः।"

अर्थात्—

यदि मेरा मन रघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजीसे क्षणभरके लिये भी विचलित न हुआ हो तो सभी लोकोंके साक्षी यह अग्नि सब तरहसे मेरी रक्षा करें।" इतना जानकीने कह अग्निको साक्षी करके फिर कहा—

वचसि मनसि काये जागरे स्वप्नसंगे,
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं,
सुकृतदुरितभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी ।

अर्थात्—यदि मनसा, वाचा, कर्मणा मैं शुद्धाचारिणी न होऊं—यदि मैंने मन, वचन या शरीरसे स्वप्न या जाग्रत अवस्थामें कभी भी रामचन्द्रके सिवा किसीका भी पतिभावसे चिन्तन किया हो तो सभी जीवोंके पाप-पुण्यकी साक्षी यह अग्नि मेरे इस पाप-स्पृष्ट शरीरको अभी भस्म कर दे ।

जानकीजीने इस प्रकार क्रमसे तीन बार इन उल्लिखित शपथ-वाक्योंका उच्चारण करके अग्निदेवताका पूजन किया, फिर हृदय और मनमें एक बार भी विचलित अथवा भयभीत न होकर अग्निमें कूद पड़ीं । जिस समय तप्त-सुवर्ण-वर्णवाली यह जगन्मोहिनी सुन्दरी देवी तप्त-सुवर्ण-सदृश भूषणसे सुसज्जित होकर अग्निके निकट उपस्थित हुईं, उस समय दर्शकमण्डलीने समझा था कि कोई स्वर्गदेवी पृथ्वीके पापके कारण स्वर्गसे पतित होकर नरकमें गिर रही है । किन्तु जानकीका कोमल शरीर—विकसित लावण्यकी वह प्रेम-मूर्त्ति—स्नेह, करुणा, महिमा और मधुरिमाकी वह मोहिनी मूर्त्ति—अग्निकी लपलपाती जीभमे ढक गयी—क्षणभरके लिये अदृश्य हो गयी । अग्निमे घी डाल देनेसे जैसे वह दहक उठती है उसी प्रकार उस अग्निकुण्डने जानकीको पाकर औरभी जोर पकड़ लिया और उनके उच्छ्व-

सित रूपको एकबारगी निगल गयी। स्त्रियोंने आर्त्तनाद कर रुदन करना आरम्भ कर दिया; बच्चे और बूढ़े जमीनपर लोट लोटकर चिल्लाने लगे और जिस विशाल जनसमूहको इतनी देर-तक निस्तब्ध और गम्भीर देखकर हमने आश्चर्य्य किया है वही अब विलाप, परिताप और हाहाकारके हृदय-विदारी गगनभेदी शब्दोंसे भयंकर बन गया।

आदिकवि वाल्मीकिसे लेकर भारतके अनेक कवियोंने ही जानकीके इस अग्नि-परीक्षाके वृत्तान्तको अपनी अपनी कवितामें वर्णन किया है। गोस्वामी तुलसीदासने भी इस प्रसंगका वर्णन करते हुए ऐसे मर्मस्पर्शी और तौले हुए शब्दोंमें यह चित्र खींचा है जिसे पढ़कर आंखोंसे आंसू निकल पड़ते हैं। उन्होंने लिखा है—

सुनि संदेस भानु-कुल-भूषन।
बोलि लिये जुवराज बिभीषन॥
मारुतसुतके संग सिधावहु।
सादर जनकसुतहिं लेइ आवहु॥
तुरतहिं सकल गये जहँ सीता।
सेवहिं सब निसिचरी बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखावा।
सादर तिन्ह सीतहिं अन्हवावा
बहु प्रकार भूषन पहिराये।
सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याये॥

ता पर हरषि चढ़ी बैदेही ।
सुमिरि राम सुख-धाम सनेही ॥
बेत पानि रच्छक चहुं पासा ।
चले सकल मन परम हुलासा ॥
देखन भालु कीस सब आये ।
रच्छक कोपि निवारन धाये ॥
कह रघुबीर कहा मम मानहु ।
सीतहिं सखा पियादे आनहु ॥
देखहिं कपि जननीकी नाईं ।
बिहँसि कहा रघुनाथ गुसाईं ॥
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरखे ।
नभतें सुरन्ह सुमन बहु बरखे ॥
सीता प्रथम अनल महँ राखी ।
प्रगट कीन्हि चह अन्तर साखी ॥
दो०—तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुरबाद ।
सुनत यातुधानी सब, लागीं करन बिषाद ॥
प्रभुके बचन सीस धरि सीता ।
बोली मन-क्रम-बचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी ।
पावक प्रकट करहु तुम्ह वेगी ॥
सुनि लछिमन सीता के बानी ।
बिरह-बिवेक-धरम-जुति-सानी ॥

लोचन सजल जोरि कर दोऊ।
प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥
देखि रामरुख लछिमन धाये।
पावक प्रगटि काठ बहु लाये॥
पावक प्रबल देखि वैदेही।
हृदय हरष कछु भय नहिं तेही॥
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं।
तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना।
मो कहं होहु श्रीखंड समाना॥

श्री-खंड-सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस-वन्दित चरन रति अति निरमली॥
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महं जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे सुरनभ सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्रीसत्य श्रुति जग विदित जो।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥
सो राम वाम विभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव-नील-नीरज-निकट मानहुं कनक पंकजकी कली।

वाल्मीकिजी रामायणमें लिखा है कि रामचन्द्रजीने सीतासे कठोर वचन कहे थे। रामचन्द्रजी जानकीके अग्निमें प्रवेश करते समय सिर झुकाये हुए चुपचाप बैठे थे, पर जब जानकीजी [illegible] [illegible] नहीं जलीं [illegible]

तब रामचन्द्रके धीरजका बन्धन टूट गया। तब उनकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी धारा बड़े वेगसे बहने लगी। जानकी अब इस संसारमें नहीं हैं, ऐसे सोचकर वह अधीर हो उठे।

जानकीके लिये रामचन्द्रजीने जो शोक और व्याकुलता प्रकट की है, उसे पढ़कर सम्भवतः अनेकों स्त्रियां मनमें बहुत दुःखित होंगी। वह सम्भवतः श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष करके कह सकती हैं कि "तुम निर्दयी और निष्ठुर हो, जिसको तुमने कुछ क्षण पहले इतने तिरस्कारके साथ आहुतिकी तरह एक प्रकारसे आगमें झोंक दिया है, उसके लिये अब व्यर्थ इस तरह शोक और विलाप क्यों कर रहे हो?" रामके विषयमें ऐसी बातें कहना बिल्कुल असंगत है। भवभूतिके काव्यमें उल्लिखित वन-तापसी वासन्ती श्रीरामचन्द्रजीको ऐसे ही दो चार शब्द कहकर दुःखके आवेशमें मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थीं। वासन्ती कहती हैं, "राम! तुम्हीं न सदा जानकीकी ओर देखते हुए कहते थे कि—

"त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे,
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण।"

अर्थात्—"तुम ही मेरी जान, तुम ही मेरा हृदय, तुम ही मेरी आंखोंकी चाँदनी (पुतली) हो, तुम मेरे शरीरमें शीतल अमृत हो। तुम्हीं न सैकड़ों मीठी मीठी बातें कहकर उस कोमल

स्वभाववाली अबलाको मुग्ध किये रहते थे? क्या तुम वही राम हो? इसकी चर्चा करना भी व्यर्थ है।"

परन्तु यही वासन्ती फिर अन्यत्र रामचरित्रमें या जानकीके प्रति जहां रामचन्द्रके प्रगाढ़ प्रेमकी अधीरताकी समालोचना करती हुई कहती हैं:—

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि,
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।"

हम भी यहां इसीलिये रामचन्द्रजीके चरित्रकी ओर अधिक समालोचना नहीं करना चाहते। हम वन-तापसी वासन्तीका पदानुसरण करके सिर्फ यही कहेंगे कि जो रामके समान लोकोत्तर पुरुष हैं उनके मन और चरित्र दोनोंको समझना बहुत कठिन है। उनका हृदय एक ओर पुष्पके समान कोमल और दूसरी ओर वज्रके समान कठोर है। वह कब किस उद्देश्यसे कैसा काम करते हैं, इसे साधारण मनुष्य सोचकर हृदयंगम नहीं कर सकते। नहीं तो स्नेह और प्रेमके अगाध समुद्र श्रीरामचन्द्र अपनी प्राणोंसे प्यारी जानकीको अग्निमें क्यों झोंक देते? यह क्या कभी दूसरोंके लिये सम्भव है?

परन्तु राम यदि राम हैं तो जानकी भी किसी तरह कम नहीं। जानकीके पिताका नाम महात्मा जनक है। आप याज्ञवल्क्यके शिष्य हैं। प्रातःस्मरणीय ब्रह्मवादी राजा [illegible] हुए भी अपने जीवनकी [illegible] कारण ऋषि मुनियोंके लिये भी वैराग्यके महान दृष्टान्त हो गये हैं। उन्हीं

जानकीकी अग्निपरीक्षाकी बात सुनकर एक बार कहा था—"वह अग्नि कौन है जो मेरी कन्याकी परीक्षा करेगी।"*
जानकी उसी जनककी शिष्या हैं उन्हींकी देखरेखमें पाली पोसी गयी हैं और उन्हींसे जानकीने शिक्षा दीक्षा भी पायी है। रामचन्द्रजी जानकीके जनकजीके साथके सम्बन्धका उल्लेख करके बातचीत करनेमें अत्यन्त गर्व अनुभव करते थे और ऐसे पुण्यश्लोक तपःपूत महात्माकी कन्याका चरित्र संसारके लिये स्वभावतः कितना उच्च आदर्शस्वरूप होगा, इसे सोचकर जानकीको हृदयसे श्रद्धा करते थे। वास्तवमें रामचन्द्रजी चरित्रके कारण जिस प्रकार मनुष्यजातिके आराध्य देवकी संज्ञा पा गये हैं, उसी प्रकार, नहीं उससे भी अधिक, जानकीजी चरितकी पवित्रताके लिये स्त्रीजातिकी आदर्शस्वरूपा हो गयी हैं। उन्होंने जन्मग्रहण किया था, इसीलिये भारतभूमिका 'पुण्यभूमि' नाम अधिक सार्थक और उपयुक्त हो गया है, इसीलिये पृथ्वीका सारा स्त्री-समाज अपनेको श्रेष्ठ और सम्माननीय समझनेका अधिकारी हुआ है। जानकीजी रावणकी अशोकवाटिकामें अपनी अलौकिक और अजेय शक्तिके कारण ही अपनी रक्षा कर सकी थीं।† आज इस शपथ-परीक्षाके

---

* "आः कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने।"

† जो अलौकिक रहस्य-विज्ञान अर्थात् Occult Scienee के अच्छे जानकार हैं वे कहा करते हैं कि संसारके सभी पदार्थ—विशेष करके वे पदार्थ जिनमें प्राण हैं—अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओंके पर्देसे सदा ढके रहते हैं। वह

समय पृथ्वीकी साधारण अग्नि क्या उन्हें जला सकती है? यह कभी संभव नहीं।

रामचन्द्रजी जिस समय जानकीके शोकसे व्याकुल होकर अश्रुवर्षा कर रहे थे और दर्शकमण्डलीके सभी लोग जब रामचन्द्रजीको घेरकर या समुद्रतटके मैदानमें इधर उधर भटककर विलाप कर रहे थे, उस समय जानकीने अग्निकुण्डसे अक्षत शरीर निकलकर सामने खड़े हुए सभी लोगोंको विस्मय और हर्षसे दंग कर दिया। सभीने देखा कि अग्नि उन्हें छूतक नहीं गयी है। उसी समय कई एक देवता भी राम और लक्ष्मणकी नजरोंके सामने प्रकट होकर जानकीके अकलंकित चरित्रके विषयोंपर जयजयकार शब्द करके आनन्द प्रकट करने लगे। सभीको देखकर आश्चर्य हुआ कि जानकीके ललित और कोमल शरीरका

परमाणुओंका पर्दा शरीरके भीतरसे सैकड़ों रेखाओंके रूपमें निकलता है और फिर मण्डलाकार होकर उस शरीर अथवा शरीरी पदार्थको घेर रहता है। इसका नाम अरा (aura) है। अङ्गरेजीका अरा शब्द संस्कृतके 'अर' शब्दसे निकला है या नहीं, पंडितलोग इसका विचार करेंगे। किन्तु 'अरा' शब्दकी अङ्गरेजी भाषामें निम्नलिखित रूपसे व्याख्या की जाती है :—

आगमें जलना तो दूर रहा, वह मानो अग्निमें स्नान करके और भी अधिक स्निग्ध और कान्तिमय हो गया है और उनके अङ्गाभरण वस्त्र और शिरोभूषण कुसुमदाम भी ज्योंका त्यों रह गया है। *

उन देवताओंमेंसे जो देवता उस अग्निमें प्रतिष्ठित थे—वाल्मीकिने जिन्हें अग्निदेव कहकर उल्लेख किया है, उन्होंने रामचन्द्रजीको सम्बोधन करके कहा, "राम, यह लो, यह तुम्हारी जानकी हैं, इन्हें ग्रहण करो। ये मिथिलानरेश जनककी कन्या हैं। इनके शरीरमें पाप छूतक भी नहीं गया है। जानकी मन-वचन-कर्मसे सती हैं और इस संसारसे एकमात्र तुम्हीमें अनुरक्त हैं। जानकीजी जिस समय राक्षसनगरीमें असंख्य राक्षसियोंके पहरेमे वन्द थी, उस समय इनका चित्त और चरित्र पलभरके

परिमाणमें शक्तिशाली होकर पृथ्वीके पाप-ताप और पापात्माओंकी पाप-दृष्टिसे मनुष्यको बचाये रखती है। इन पण्डितोंने इस बातको प्रमाणित करनेके लिये बहुतसी ऐतिहासिक कहानियोंका दृष्टान्त दिया है। उन्होंने ऐसे बहुतसे प्रामाणिक दृष्टान्तोंका उल्लेख किया है कि सती साध्वी स्त्रियां निद्रित अवस्थामें केवल अपने शरीरसे निकली हुई तेजःशक्तिके असीम प्रभावसे पापस्पर्शसे अपनी रक्षा कर सकी हैं। यदि आजकलकी सती स्त्रियोंकी चरित्र रक्षाके सम्बन्धमें आवरण-मण्डलकी तेज.प्रभा इस प्रकार कारगर होती है तो जगन्माता आराध्य देवी जानकीके शरीरमें वह किस प्रकार विकसित हुई होगी, पाठक इसका स्वयं अनुमान कर लें।

* उपर्युक्त वाक्य कविकी कल्पना प्रसूत हैं या ऐतिहासिक सत्य भी इनमें है, इस बातकी आलोचना द्वितीय परिच्छेदमें की जायगी।

नहीं कर पाया हैं। मैं यह भी जानता हूं कि जानकी अपने तेजो-मय चरित्रशक्तिके प्रतापसे ही सर्वत्र सुरक्षित रह सकती हैं। जैसे समुद्रकी तटवर्त्ती पर्वतकी चट्टानपर हजार चेष्टा करनेपर भी समुद्रकी लहरें नहीं पहुंच सकती, उसी प्रकार रावणकी सारी चेष्टायें इनके सामने व्यर्थ हुई हैं। वह दुराचारी मनमे भी इस सतीका अपमान करनेमें समर्थ नही हुआ है। क्योकि महासती जानकीका रावणके अन्तःपुरमे जलतो हुई आगकी लौकी तरह स्पर्श करना भी कठिन था। सारांश यह कि प्रभा जैसे सूर्य्यसे स्वभावतः अविच्छिन्न है उसी प्रकार जानकी भी मुझसे सर्वदा अभिन्न और अविच्छिन्न हैं। जानकी तीनलोकमे पवित्र हैं और कीर्त्तिको जैसे मनस्वी पुरुष त्याग नही सकते, उसी प्रकार जानकीको भी त्यागना मेरे लिये असम्भव है।"

रामचन्द्रजी फिर कहने लगे—"देवताओ,आप लोग संसारके रक्षाकर्त्ता, दयालुहृदय और स्वभावतः ही परहिताकांक्षी हैं। आपने जो बातें अभी कही हैं वे सभीके लिये मंगलजनक हैं।

रावणेनापनीतैषा वीर्य्योत्सिक्तेन रक्षसा,
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने वने।
रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा,
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः।
प्रलोभ्यमाना विविधन्तर्ज्यमाना च मैथिली,
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना।
विशुद्धभावा निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व राघव,
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते।
लंकाकाण्डम्—विंशत्यधिकशततमः सर्गः।

मैंने जानकीको अत्यन्त शुद्धाचारिणी और सती-साध्वी समझते हुए भी श्रवणकटु दुर्वचनोंका प्रयोग करके अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित किया था। वह सिर्फ लोकापवादसे बचनेके लिये ही। आज आप लोगोंकी बातोंसे उस विषयमें भी सम्पूर्ण निश्चिन्त हुआ। अब मैं सहर्ष जानकीको ग्रहण करता हूं।*

---

* 'ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैव वदतां वरः,
दध्यौ मुहूर्तं धर्म्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः।
एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः,
उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः।
अवश्यञ्चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा।
बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः,
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि।
अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिवर्तिनीम्,
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम्,

रामचन्द्रजीकी बात पूरी होनेपर हजार कण्ठोंसे फिर एक बार गगनस्पर्शी जयजयकारका गर्जन हुआ और इस बार जानकीके रूखे होंठोपर एक हंसीकी रेखा दीख पड़ी। जानकीजी अग्नि-परीक्षाके उद्देश्य और देवचरित्रकी गति और परिणतिको सम्यक उपलब्ध करके रामचन्द्रजीके प्रति भी प्रसन्न हुईं। रामचन्द्रजीने एक एक करके आविर्भूत हुए सभी देवताओंको प्रणाम करके उनकी पूजा की। इसी समय श्वेताम्बरधारी श्वेतमूर्त्तिवाले एक देवतापर सहसा उनकी दृष्टि जा पड़ी। वह देखते ही कांप उठे और उस देवपुरुषके चरणोंको छूकर उन्होंने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। देवताने रामचन्द्रजीको गाढ़ आलिंगन करके स्नेहपूर्ण मीठे स्वरमे कहा :—

"मेरे राम, तुम मुझे पहचान सकते हो? मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूं। तुम्हे आशीर्वाद देनेके लिये मैं देवताओंके साथ यहां आया हूं। मैं तुम सरीखे पुत्रके पुण्य प्रतापसे स्वर्गवासी हुआ हूं सही, पर आज तुमको यहां विजयी देख जो आनन्द पा रहा हूं, स्वर्गवासका सुख भी उसकी तुलनामें कुछ नहीं। कैकेयीने जो कड़ी बातें कहकर तुम्हे वनवास करनेके लिये मुझे वाध्य किया था वे आजतक शूलकी तरह मेरे हृदयको खोभते थे। मैं आज तुम्हे लक्ष्मणके साथ निरापद देखकर ग्रहणमुक्त सूर्य्यकी नाईं दुःखरहित हुआ हूं। कौशल्या इतने दिनपर आज कृतार्थ हो गयी। वनवाससे जब तुम घर लौट जाओगे वह तुम्हे देखकर अत्यन्त सुखी होंगी। पुरवासी लोगोंका भी सौभाग्य

है कि वे तुम्हें राजसिंहासनपर राज्येश्वरके रूपमें अभिषिक्त करेंगे। वत्स! भरत सचमुच अत्यन्त धर्मपरायण वीर पुरुष हैं। उसका स्वभाव अत्यन्त निर्मल और मनमें अनुरक्त है। तुम जाकर भरतसे मिलो, यही देखनेकी अब मेरी इच्छा है। मेरी प्रतिज्ञाको पूरी करनेके लिये तुम वनवासी हुए थे। अब तुमने लक्ष्मण और जानकीके साथ वनवासकी निर्दिष्ट अवधि बिताकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है और दुराचारी रावणका वध करके देवताओंको प्रसन्न किया है। तुम इस कठिन कार्य्यका सम्पादन करके यशके भी भागी हुए हो। अब भारत साम्राज्यके राजपदपर अभिषिक्त होकर भाइयोंके साथ चिरंजीवी होओ।"

देवमूर्त्ति दशरथ लक्ष्मणको भी आलिंगन करके बोले—"पुत्र, तुम निरन्तर मन वचन कर्मसे राम और जानकीकी सेवा करना, इसीसे तुम्हें धर्मलाभ होगा। राम सदा मनुष्य-जातिका उपकार करनेमें लगे रहते हैं। रामके प्रसन्न रहनेसे तुम्हारे मन और पुण्यकी बढ़ती होगी।" राम और लक्ष्मणके पीछे जानकी भी नम्रभावसे और [illegible] हाथ जोड़े खड़ी थीं। दशरथने जानकीको कोमल और मधुर शब्दोंसे सम्बोधन करके कहा—

चरित्रकी ख्याति हो हुई है। तुमने अलौकिक शक्ति दिखलाकर अपने चरित्रकी पवित्रताको बचा रखा है और अग्निपरीक्षाके कठिन अनुष्ठानसे समस्त संसारके सामने सभी श्रेणीकी नारियोंमें तुम कीर्त्तिमती और यशस्विनी हो गयी हो। तुम सरीखी सतीको पतिसेवाका उपदेश करना निष्प्रयोजन है। तथापि मैं कहता हूं कि तुम अपने पतिको सदा देवता समझ उसमें श्रद्धा रखना।"

इसी प्रकार बातके सिलसिलेमें रामचन्द्रजीने फिर हाथ जोड़कर कहा—"पिता! मेरी वनवास यात्राके समय माता कैकेयीके प्रति क्रुद्ध होकर कैकेयी और भरत दोनोंको ही कठिन शाप देते हुए आपने उनका त्याग किया था। आप यदि उनके प्रति पुनः प्रसन्न होवें तो मेरा हृदय शीतल हो।" यह बात वाल्मीकिके युद्धकाण्डमें है।

इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत्,
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च।
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया,
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो।

दशरथजी उत्तर देते हुए बोले, "पुत्र, मैं तुम्हारी बातसे प्रसन्न हुआ और कैकेयी तथा भरत दोनोंहीको मैंने हृदयसे क्षमा किया।" इतना ही कह दशरथजी लक्ष्मण और जानकीको पुनः आशीर्वाद देकर स्वर्गको पधारे। दूसरे देवता भी देखते ही देखते अन्तर्द्धान हो गये। इधर वीरोत्तम रामचन्द्रजीने मुस-

कुराती हुई,प्रेम और स्नेहकी मूर्त्ति जानकीजीको गाढ़े आलिंगनमें बद्ध करके, समवेत योद्धाओंको अपने अपने स्थानपर रात बितानेके लिये कहकर, लक्ष्मण और जानकीके साथ लता-पत्र-निर्मित अपनी प्रवासकुटीमें प्रवेश किया। बहुत देरतक दुःस्वप्न देखनेके बाद जागनेपर जैसा आनन्द होता है अथवा दीर्घकालव्यापी कठिन तपस्याके बाद सुख-शान्तिमयी सिद्धि पा जानेपर जैसा आनन्द होता है, इस समय सुख और शान्ति एक साथ मिल जानेसे रामचन्द्रजीको भी वैसा ही आनन्द हुआ। रामचन्द्रजी सभी प्रकारसे कृतार्थ हो गये।

जानकीकी अग्निपरीक्षा-सम्बन्धी प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी यहां समाप्त हो गयी। परन्तु इस स्थानपर दो चार कठिन वैज्ञानिक प्रश्नोंका समाधान करना और उत्तर देना बाकी रह गया है। प्रश्न और उत्तर दोनोंकी ही पुस्तकके द्वितीय परिच्छेदमें पाठक आलोचना करेंगे।

करनेवाला है। उनकी यह उक्ति अक्षरशः सत्य है। क्योंकि जानकीकी इतिहास-कथा जिस स्थानपर पढ़ी सुनी जाती है वहां पवित्रताका स्वर्गीय समीर चलता रहता है, मनुष्योंके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगती है और हृदय उत्कर्ष तथा उच्चताकी अन्तिम सीमापर पहुंच जाता है। जानकीके नामपर पृथ्वीपर अजस्र पुष्पवृष्टि हो। यह नाम भारतीय महिलाओंके कोमल हृदयमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रह जावे।

द्वितीय परिच्छेद

काव्य-इतिहास-विज्ञान

"इह प्रमाणपथेनैव तत्त्वं व्याख्यायते परम्।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते।"

हमने जानकीकी अग्निपरीक्षा-सम्बन्धी कथाको ऐतिहासिक घटना कहकर उल्लेख किया है; और हमने यह भी कहा है कि उसमें विश्वास करते समय दो एक कठिन वैज्ञानिक प्रश्न सहज ही हमलोगोंके मनमें इसके अन्तराय-स्वरूप उठते हैं। विज्ञानके पहले इतिहास है इसलिये पहला प्रश्न यह उठता है कि यह कहानी इतिहाससे सत्य है कि नहीं। जानकीकी सचमुच परीक्षा हुई थी या इस कहानीका आद्योपान्त सभी वृत्तान्त काव्य-कल्पनाके रसिक वाल्मीकिकी कल्पनामात्र है?

अग्निपरीक्षाके वृत्तान्तका यदि पृथ्वीके इतिहासमें किसी दूसरी जगह उल्लेख न हुआ होता—यदि इस पृथ्वीपर और किसी देश या युगमें किसी दूसरे स्त्री-पुरुषके भाग्यमें अग्नि-परीक्षाकी कठोर व्यवस्था न की गयी होती तो जानकीकी अग्नि-परीक्षा सम्बन्धी कहानी कवियोंके धर्मानुरागसे लिखा हुआ

कविकी कल्पनाका अपूर्व उच्छ्वास कहकर उसकी उपेक्षा भले ही कर सकते थे। परन्तु वास्तवमे अग्नि-परीक्षाकी विधि किसी न-किसी रूपसे प्राचीन इतिहासकी प्रसिद्ध विधि है। सभी देशोंके इतिहासमे ही, कभी साधारण रूपसे और कभी विशेष गम्भीरताके साथ इसका उल्लेख किया गया है। जिन्होने ऐतिहासिक तथ्यकी नाना प्रकारसे आलोचना करके एक सिद्धान्त-पर पहुंचनेकी विशेष चेष्टा की है उन लोगोंके लेखोंमें भी इसकी प्रामाणिकता स्वीकार की गयी है। ऐसी अवस्थामें यदि हम पुराने इतिहासके साक्ष्यका विश्वास करें तो हमें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि अग्निका स्पर्श कराकर चरित्रकी पवित्रताकी जांच करना केवल भारतीय कविकी मनगढ़न्त काव्यकल्पना नहीं है।

यूनानियोंमे समय-समयपर अग्नि-परीक्षाकी व्यवस्था की जाती थी। इसके प्रमाण यूनानी कवि सफोक्लिसके ग्रन्थ हैं। सफोक्लिसने अनेकों नाटक लिखे हैं। उनके एक नाटकमे आत्माकी पवित्रताको प्रमाणित करनेकी प्रार्थनाका साफ उल्लेख किया गया है। जिनके सम्बन्धमे किसी विशेष विषयको लेकर उनके देशवासियोंके मनमें सन्देह होता है उस विषयमे अपनी निर्दोषिता प्रकट करते हुए वह महापुरुष दृढ़ और निर्भीक हो कहते हैं—"आओ, जलते हुए लोहेका फल लेकर मेरे सामने आओ, मैं उस अग्निदग्ध लोहेके फलको हाथमें लेकर अपनी छातीपर रख लूंगा या कहो तो मैं आगमें कूद

पड़ूं।"* यद्यपि ऐसी परीक्षा जानकीकी अग्निपरीक्षाकी श्रेणीमें गिनी नहीं जा सकती है तथापि यह भी एक प्रकारकी अग्निपरीक्षा ही है और नाट्य साहित्यमें उल्लिखित होते हुए भी ग्रहणीय प्रमाण है। जिस देशके लोगोंने अग्निपरीक्षाके किसी अनुष्ठानको आंखोंसे देखा नहीं और न कानोंसे इसके विषयमें कोई कहानी सुनी है उस देशके काव्य-नाटकमें इसका इस प्रकार उल्लेख रहना बिल्कुल असम्भव है।

हमलोगोंके लिये जैसे वेद या रामायण-महाभारत हैं उसी प्रकार यहूदी जातिके लिये पुराना टेस्टामेंट (Old Testament) पवित्र धर्म-ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ एक ओर जैसे महाकाव्य है। दूसरी ओर वैसे ही उनका गौरवमय जातीय इतिहास है। यहूदियोंके इसी जातीय इतिहासके डेनियलकी पुस्तक (Book of Daniel) नामक तृतीय परिच्छेदमें एक साथ ही तीन ईश्वरभक्त नवजवानोंकी अत्यन्त भीषण अग्नि-परीक्षाकी घटनाका उल्लेख ऐतिहासिक पद्धतिके अनुसार स्पष्ट शब्दोंमें किया गया है। जिनकी परीक्षा ली गयी थी उनके सिरका एक बाल अथवा उनके परिधेय वस्त्रका एक धागा भी अग्नि छूतक नहीं गयी। राजा और राजकर्मचारी इसे देखकर कितने विस्मित हुए थे, विस्मयकी भाषामें इसका वर्णन किया गया है।

राजाका नाम है द्वितीय नेवुकनेजर। यह पहले वाविलन और जेनेवाका सम्राट् था; जिस समयकी यह घटना है उस समय वह यहूदी राज्यका भी नया अधिपति हुआ था। इसने सन् ६०६ ई० पू० में सिंहासनारोहण किया था और सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्तिमे पचहतर वर्षतक साम्राज्यपर आधिपत्य जमाये रखकर सन् ५८१ ई० पू०में स्वर्गको प्रस्थान किया। हम इस समय जिस अग्निपरीक्षाके वृत्तान्तका उल्लेख कर रहे हैं उस अनुष्ठानकी व्यवस्था करनेवाला यही नेवुकनेजर (Nebuchadnezzor)है।

नेवुकनेजरने जब अनेकों लड़ाइयोंके वाद यहूदी राज्यको अपने अधिकारमे कर लिया उस समय धर्म्माभिमानी यहूदियोंके जातीय धर्मको जड़से उखाड़ डालना ही, कुछ दिनोंके लिये उसके जीवनका प्रधान व्रत हो गया। यहूदी राज्यकी राजधानी जारुसलेममें एक पुराना विख्यात देवमन्दिर था। यहूदीलोग उस मन्दिरको स्वर्गसे भी अधिक पवित्र समझते थे और प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। नये सम्राट्ने उस मन्दिरको लूटकर उसकी सारी सम्पत्तिको अपनी पुरानी राजधानी वाविलनको भेज दिया। इसके कुछ दिन वाद उसने उस मन्दिरके निकटवर्ती दुरा (Dura) नामक रमणीय मैदानमे अपनी एक स्वर्ण-प्रतिमा *प्रतिष्ठित की और आदेश प्रचार कर दिया कि सभी

---

*यह निश्चय करके नहीं कहा जा सकता कि वह मूर्त्ति सम्राट्की अपनी प्रतिकृति थी या उन्होंने अपनी कल्पना द्वारा किसी विशेष देवताकी मूर्त्ति गढ़वायी थी।

यहूदी उस प्रतिमाके निकट सबेरे और शामको एकत्र होवें और जब जब जैसे जैसे राजप्रासादके प्रकोष्ठसे वेणु, वीणा और वंशीकी ध्वनि सुन पड़े उस मूर्त्तिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करें।

इस अजीब और अपूर्व आज्ञाको लेकर यहूदी राज्यमें बहुत आतङ्क फैल गया। कितने आदमी घरबार छोड़कर इधर उधर भाग गये, कितनोंने लुक-छिपकर अपनी जान बचायी। भागे हुए लोगोंमेंसे अनेकों निर्दयी सैनिकों द्वारा पकड़े गये और हथकड़ी बेड़ीमें जकड़कर बाबिलन भेजे गये। जिनकी आत्मा कमजोर थी, जो दिखावटी धर्मका ढोंग रचनेवाले थे उन्होंने दलके दल आकर उस स्वर्ण-प्रतिमाके सम्मुख घुटने टेककर प्रणाम किया; किन्तु तीन ईश्वरभक्त निडर नवजवानोंने, विजयी सम्राट्के सम्मुख लाये जानेपर उसकी प्रतिष्ठित मूर्त्तिके निकट सिर झुकानेसे एकदम अस्वीकार कर दिया।

तीनों नवजवानोंके नाम थे—साद्राक, मेसाक और आबेद्नीगो। ये तीनों नवजवान विजयी राज्येश्वरके विशेष कृपापात्र थे और उनकी कृपासे उसके सेना-विभागमें ये तीनों सेनानायकके पदपर नियुक्त थे। राजाने कभी इस बातको अपने मनमें ध्यान भी न दिया कि जो उसके द्वारा इस प्रकार अनुगृहीत हैं—उसीके अन्नसे जिनका जीवन-निर्वाह होता है, वह उसीकी इच्छाके विरुद्ध खड़े हो जायेंगे और उसके द्वारा प्रतिष्ठा की हुई मूर्त्तिके प्रति घृणा दिखलायेंगे। अनन्तर जब उसने सुना कि साद्राक आदिने

बड़ी घृणाके साथ उसकी आज्ञा मानना अस्वीकार किया है तब वह क्रोधसे जल उठा और उन्हें तुरत हथकड़ी बेड़ीसे जकड़कर जलते हुए अग्निकुण्डमें झोंक देनेके लिये आदेश दिया।*

तुरत आदेश कार्य्यरूपमें परिणत हुआ। राजा कितना ही निष्ठुर और पापी क्यों न हो भृत्योंको उसकी आज्ञा माननी ही पड़ेगी। सेवक सैनिकोंने साद्राक, मेसाक और आवेद्निगो तीनोंके हाथ पैर जल्दी जल्दी बांधकर उन्हें अग्निकुण्डमे झोंक दिया।† कुण्डकी अग्नि इतनी अधिक जल उठी थी कि जो लोग इन निर्दोषी नवजवानोंको उसमें झोंकनेके लिये कुण्डके निकट गये वे अग्निकी लौसे झुलसकर तुरत मृत्युके ग्रास बन गये। उनकी ऐसी अवस्था देखकर राज्येश्वर और उसके पार्श्वचरोंको कितना भय और आश्चर्य्य हुआ इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। थोड़ी देरके बाद, स्वयं राजा नेबुकनेजरने, कुण्डकी ओर देखकर साद्राक आदिकी उस समयकी अवस्था जाननेके लिये उत्सुकता प्रकट की। किन्तु उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि साद्राक, मेसाक और आवेद्निगो तीनों ही उस जलती हुई अग्निमें निरापद रहकर इधर उधर टहल रहे हैं। उनके शरीरके सभी बन्धन टूट या जल गये

---

* "And he commanded the most mighty men that were in his army to bind Shadrach, Meshach, and Abednego aud to cast them into the burning fiery furnace."

† "Then these men were bound in their coats, their hosen and their hats, and their gramen‌ts, and were cas into the midst of the burning fiery furnace."

हैं और एक देवताकी मूर्त्ति मानों उन्हें सान्त्वना और अभय देनेके लिये उनके सामने खड़ी है।

यह कहना व्यर्थ है कि इस अलौकिक दृश्यको देखकर नेबुक-नेजरके मनमें उसी क्षण एक आश्चर्य्यजनक परिवर्त्तन हुआ। जिन तीनों नवयुवकोंकी परीक्षा ली गयी थी वे राजाकी आज्ञासे अग्नि-कुण्डसे बाहर निकाले गये और आशातीत सम्मानके साथ उनका अभिनन्दन हुआ। राजा, राजकुमार, राज्यके प्रधान शासक, और सेनापति तथा राजाके अमात्यगण ये सभी लोग वहां उपस्थित थे। इन सभी लोगोंने उन तीनों नवयुवकोंके पास जाकर तन्न तन्न करके उनके अंग-प्रत्यंग और कपड़े-लत्तेकी जांच की और देखा कि अग्निने उन अभागे नवजवानोंपर तनिक भी असर नहीं किया है, उनके सिरका एक बाल भी आगकी आंचसे झुलसा नहीं है, पहने हुए कपड़ोंमें अग्निके छूनेका चिह्न भी नहीं है और शरीरमें आगका नामोनिशान भी नहीं पाया जाता।

यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है इसका उत्तर पीछे देंगे, किन्तु इस समय हम पाठकोंको यह ध्यानमें रखनेके लिये कहेंगे कि साड्राक इत्यादिकी अग्निपरीक्षा सम्बन्धी आश्चर्य-जनक कहानी जैसे यहूदियोके धर्म-ग्रन्थोंमे पायी जाती है उसी प्रकार वाविलनके इतिहासमें भी इस प्रकारकी घटनाका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इन घटनाओंको पीछेके इतिहास-कारोंने भी सच्ची घटना कहकर स्वीकार किया है।

इंगलैण्डका इतिहास और व्यवस्था-विज्ञान ये दोनोही अग्नि-परीक्षाकी सत्यताका साक्ष्य देते हैं। ग्यारहवीं शताब्दीमें इंग्लैण्ड की रानी* सुन्दरी एमा, नोर्मन-ड्यू रिचार्ड की कन्याक और इंग्लैण्डके राजा एडवर्ड-दी-कनफेसरकी माताने किस प्रकार अग्नि-परीक्षाके द्वारा अपने निर्मल चरित्रका प्रतिपालन करके जानसे रक्षा पायी थी, इतिहासमे इसका वर्णन मिलता है। अग्निपरीक्षाकी प्रणाली, प्रक्रिया और इस भयंकर पद्धतिकी विचित्रता आदिके विषयमे अनेकों बातें ब्लैकस्टानके † व्यवस्था

---

* "Queen Emma, daughter of Richard II, Duke of Normandy and mother of Edward the Confesser, the king of England She lived in the 11th Century."

† "Fire ordeal was performed, either by taking up in the hand, unhurt, a piece of red-hot iron of one, two, or three pounds' weight, or else by walking, barefoot and blindfold, over nine red-hot ploughshares, laid lengthwise, at unequal distances, and if the party escaped being hurt, he was adjudged innocent, but if it happened otherwise, he was then condemned as guilty."

विज्ञानमें विस्तारपूर्वक लिखी हुई हैं। जिन्होंने अविश्वासी वाल्टर स्काटके ऐतिहासिक उपन्यासों, विशेषकर उनके फेयर-मेडआव्-पार्थ (Fair Maid of Perth) नामक उपन्यासमें लिखी हुई टीकाओंको पढ़ा है वे अवश्य ही इंग्लैण्डकी अग्निपरीक्षा सम्बन्धी रिवाज और विधिके विषयमें बहुत कुछ जानते हैं।

अग्नि-परीक्षा जब इस तरह आधुनिक इतिहास और यूरोपीय व्यवस्था-शास्त्रसे भलीभांति परिचित है तब यह कहना क्या न्यायपूर्ण होगा कि जानकीकी अग्नि-परीक्षाकी कथा जिसे भारतीय कविने वर्णन की है, अप्राकृतिक और असम्भव है?

वाल्मीकिकी जगत्-प्रसिद्ध रामायणमें ऐतिहासिक अन्य कृतियोंके मूलभूत ऐतिहासिक सत्यकी तरह अनेकों स्थानमें कल्पनाके कुसुम-जालमें ढंक गया है। उस कल्पनाने कभी बाणके अग्रभागपर वज्रावस्फोटकी भांति संस्कारको भस्म कर देनेवाली अग्नि जलायी है और कभी जलपूर्ण काले बादलोंकी मूसलधार वर्षासे अग्निको बुझा दिया है। वास्तवमें वाल्मीकि-की कल्पनाने अपने देशकी चिन्ताकी धारा और चिरप्रचलित मार्गका अनुसरण करके अनेकों आश्चर्यजनक घटनाओंकी सृष्टि की है—सम्भवके साथ असम्भव और लौकिकके साथ अलौकिक तथा अद्भुतको मिला जुलाकर उन्होंने जिस प्रकार आलोकमय सौन्दर्यकी रचना की है वह किसीसे छिपा नहीं है। परन्तु कवि-कल्पनाके इस प्रकारके उद्दाम-विलास और अनन्त-लीलाके होते हुए भी रामायणका कथांश जिन

मौलिक घटनाओंका वर्णन किया गया है उनमेंसे एक भी झूठ नहीं है।

लोकाभिराम रामचन्द्रजीकी उदार कीर्ति, रामके द्वारा विश्वामित्रके आश्रममें ताड़का-वध और मिथिलामें धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञाको पूरी करके जानकीका पाणिग्रहण, मन्थराकी कुमन्त्रणासे राम-जानकीका वनवास, रामके शोकमे दशरथकी मृत्यु, वनमे जानकीका हरण, जानकीके उद्धारके लिये वन्य सेनाका संग्रह, राम-रावणका दीर्घकालव्यापी समर और समरमें रावणका समूल नाश होना इत्यादि सभी घटनायें प्रकृत और सत्य हैं। वाल्मीकिके परवर्त्ती ऋषियों और कवियोंने—ऋषियोंमे कृष्णद्वैपायन व्यास और कवियोंमें कालिदास, भवभूति, मुरारी और तुलसीदास इत्यादि सभी लोगोने ही—उल्लिखित अग्निपरीक्षाके वृत्तान्तको मौलिक घटना कहकर स्वीकार किया है। और भारतवर्षके बड़े बड़े ज्ञानी-विज्ञानी भी आदि कालसे इस प्रसिद्ध कहानीकी सत्यताको स्वीकार करके जनकनन्दिनीकी पवित्र स्मृतिको अपने अश्रुजलसे तर्पण करते हैं। जिसे अनादि कालसे सभी लोगोने सत्य माना है आज हम किस प्रकार असार तर्कोंपर निर्भर करके उस जगद्विख्यात विचित्र घटनाको अमूलक समझ उसकी उपेक्षा कर सकते हैं और जिनके चरित्रके यशोगौरवकी सदैव सहस्रों कण्ठोंसे प्रशंसा की जाती है—जिनका इतिहास बिजलीकी शक्तिसे भी अधिक आकर्षण शक्तिका प्रयोग करके संसारकी

असंख्यों नारियोंको अहोरात्र पवित्रताकी ऊंचीसे ऊंची चोटीपर खींच रहा है, उनके जीवनकी मुख्य घटनाको झूठ समझकर हम कैसे उड़ा दे सकते हैं ?

किन्तु जो लोग जड़ विज्ञानको ही संसारका एकमात्र वेद समझकर पूजते हैं उन लोगोंका यहां दूसरा और सबसे कठिन प्रश्न है। वे लोग इस जगह अवश्य प्रश्न करेंगे कि मनुष्य आगमें हाथ रखता है और आग उसे जलाती नहीं यह कैसे हो सकता है ? दाहिका शक्ति तो अग्निका स्वाभाविक धर्म है। अग्नि क्या कभी मनुष्यके अनुरोध और उपरोध या अन्य किसी कारणसे उस दाहिका-शक्तिसे रहित होकर शीतल समीरकी नाईं स्निग्ध और सुखदायक हो सकती है ?

इस प्रश्नके उत्तरमें हमें अनेकों बातें कहनी हैं। हम उन बातोंको धीरे धीरे कहते हैं और यह भी समझानेकी चेष्टा करते हैं कि क्योंकर हम जानकीकी अग्नि-परीक्षाके वृत्तान्तको सतीके चरित्रके यशोगौरवका द्योतक और जगन्मांगल्य सत्य मानते हैं।

है उसका संघटित होना बिलकुल असम्भव है, जो अस्वाभाविक है वह स्वभाव-जगतमें संघटित नहीं हो सकती। किन्तु अप्राकृतिक और अस्वाभाविक तत्वसे असाधारण अलौकिक या अतीन्द्रिय तत्त्व सर्वथा विभिन्न है। इस पृथ्वीपर अनेक देशोंमें जल सर्वदा जमकर बरफ हो जाता है और उस बरफका लोग व्यापार करते हैं। किसी किसी देशमे बरफ इतनी कड़ी होती है कि लोग उसपर एक प्रकारकी छोटी छोटी गाड़ियां हांककर चले जाते हैं। जो लोग बिना बरफके जल नहीं पी सकते उनके सामने जल और बरफका इस प्रकारका रूपान्तर कहकर समझाना निरर्थक है। तथापि एक ऐसी ही घटना इतिहासमें लिखी है कि अमेरिकाका एक विद्वान् परिव्राजक—बहुत दिन हुए—अपने राजासे यह बात कहकर विपदग्रस्त हुआ था कि भिन्न भिन्न देशोंकी प्रकृतिकी विभिन्नताके कारण जलका रूपान्तर हो जाता है। जल जैसे अवस्था-विशेषसे ठण्ढा और गाढ़ा होता है, अवस्था विशेषसे उत्तप्त और सूक्ष्म वाष्पके रूपमें परिणत होकर उड़ जाता है, अग्नि भी उसी प्रकार अवस्था-विशेषसे—अर्थात् अतीन्द्रिय और अधिकतर ऊंची शक्तिके प्रभावसे—अज्ञात और उच्चतर प्राकृत नियमकी विशेष व्यवस्थासे—जलानेवाली न रहकर जलकी नाईं सुख-स्पर्श हो सकती है। इसमें आश्चर्य ही क्या है?

अग्निका इस प्रकारका अवस्था-परिवर्तन अथवा शक्तिलोप अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे सिद्ध किया जा चुका है। जो लोग रसायनिक प्रक्रियामें धुरन्धर विद्वान् हैं, उन्होंने अनेक

प्रकारसे सावधानीपूर्वक, रसायनकी अपरिज्ञेय अध्यात्म प्रक्रियाके साथ अग्निका कोई सम्बन्ध है या नहीं। इसकी परीक्षा की है और उन्होंने देखा है कि एक ही अग्नि एक आदमीको जलाती और दूसरेके शरीरमें शीतसे भीगे हुए फूलकी तरह मालूम होती है। दिन-दोपहर अनेकों मनुष्योंने मिलकर यह भी देखा है कि एक ही मनुष्यको एक समय छूनेपर अग्नि वायुकी तरह ठण्डी और आनन्ददायक प्रतीत होती है तो दूसरे ही क्षण अपनी दाहिका शक्तिकी ज्वालामय क्रियासे जला देती है। अतएव मनुष्य आगमें हाथ रखता है और उसका हाथ उस आगमें जलता नहीं और मनुष्य जलती हुई अग्निमें कूद पड़ता है तोभी दैव-शक्तिके प्रभावसे उसके शरीरको तनिक भी आँच नहीं लगती, यह बात अब इतिहासवेत्ताओंके निकट असम्भव नहीं समझी जा सकती।

पाठकोंके निकट कई एक आधुनिक अग्निवृत्तान्तोंको उपस्थित करते हैं जिनको विज्ञानके द्वारा अच्छी तरहसे सिद्ध कर दिया गया है।

जो शिक्षित समाज अपने पुराने संस्कारोंके वशवर्त्ती होकर दैवी करतबपर एकबारगी विश्वास नहीं रखता वह भी इन घटनाओंपर आद्योपान्त मनन करके पूरे हृदयसे इसे स्वीकार करनेको बाध्य होगा। जो अग्नि लकड़ी और पत्थरको जलाकर बड़े बड़े नगरोंको उजाड़ कर देती है और वनमें दावानल उत्पन्न करके अपनी जिह्वाको फैलाए हुए संसारका संहार करनेपर उतारू हो जाती है, वही अग्नि अन्तरिक्षचारी देवताओंकी इच्छा होनेपर संसारकी ज्ञानवृद्धि अथवा और किसी मंगलमय उद्देश्यके कारण जानकीके समान देवचरित्रा रमणीके शरीरको छूते समय अमृतके समान शीतल हो सकती है।

भारतके शिक्षित-समाजमें जिन लोगोंने आधुनिक इतिहास और विज्ञानका अध्ययन किया है—अमेरिका और इङ्गलैण्डके गत पचास वर्षोंके तात्विक इतिहासको लेकर जिन्होंने कुछ भी दिमाग लड़ाया है,वे अवश्य ही डेनियल डी० होम (Daniel D. Home) नामक असाधारण और आश्चर्यकर्म्मा पुरुषको अच्छी तरहसे जानते होंगे। जिन लोगोंने होमको अपनी आंखोंसे नहीं देखा था वे लोग समझते थे कि वह किसी अद्भुत विद्याको जाननेवाला बाजीगर है और उसके विषयमें बहुत कुछ अनुमान और कल्पना किया करते थे और जो लोग सत्यकी खोज करनेके

सदुद्देश्यसे निष्कपट भावसे होमके सम्मुख जाते थे और उनसे वार्तालाप करके उनकी कार्रवाईको अपनी आंखो देखते थे वे उनपर मुग्ध हो जाते थे। रूसके प्रथम सम्राट अलेक्जेंडर, जर्मनके सम्राट प्रथम विलियम और फ्रांसके सम्राट तृतीय नेपोलियन इत्यादि अनेकों दिक्पालोंने अनेकों प्रकारसे उनकी बहुत देरतक परीक्षा की और यह कहकर उनका आदर किया कि होम असाधारण शक्तिसम्पन्न साथ ही नम्र स्वभाववाले आध्यात्मिक पुरुष हैं। यूरोप और अमेरिकाके प्रायः सभी वैज्ञानिकों और धुरंधर विद्वानोंने उनकी सत्यनिष्ठा, सौजन्य और शुद्ध आचरण आदि गुणोंकी महत्ता पर मुग्ध होकर उनके प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति दिखलायी।

होमकी जन्मभूमि स्काटलैण्ड है। बचपनमें उन्होंने अमेरिका में शिक्षा प्राप्त की थी। पर पीछे यूरोप ही उनका प्रधान कर्म-स्थान बन गया। यहां 'कर्म' से यह न समझना चाहिये कि उन्होंने कोई नौकरी या व्यापार कर लिया था, क्योंकि जिन कामोंके करनेके कारण उनका नाम इतना प्रसिद्ध हुआ है उन कामोंके लिये उन्होंने एक कौड़ी भी किसीसे नहीं ली। तथापि उनका काम था। वह एकमात्र काम था—उदार और अनन्त उत्साहपूर्ण अध्यात्म-धर्मकी जड़ मजबूत करना, लोगोंको [illegible] अध्यात्म-शक्ति अथवा [illegible] शक्तियोंके प्रभावको दिखला देना और [illegible] परलोकमें प्रेम और [illegible] [illegible]

विधान और परलोकके अस्तित्वके विषयमे सबका विश्वास उत्पन्न कर देना।

होमका विश्वास था कि परलोकका अस्तित्व यथार्थ है और इसको माननेके लिये वह सबको उपदेश करते थे। वह पारलौकिक जगतके जल-स्थल-गिरि-कानन इत्यादि नाना प्रकारके दृश्योंको ध्यानावस्थामें अपनी आंखोंके सामने साफ देखते थे और सभीको सरल चित्तसे कहते थे कि "मेरे शरीरमें एक प्रकारका चौम्बक (Magnetic) पदार्थ है जिसे मैं नहीं जानता, किन्तु उसी पदार्थके आकर्षणसे दूसरे लोकमें रहनेवाले परिचित आत्मीय स्वजन और उज्ज्वल मूर्त्तिवाले देवतागण समय समयपर मुझे दर्शन देते हैं और कभी कभी मेरे शरीरमें प्रवेश करके पृथ्वीके जल, अग्नि, सोना, रूपा और काठ-पत्थर इत्यादि सभी प्रकारके जड़ पदार्थोपर अपने चैतन्य प्रभावका विस्तार करते हैं।"

होमके शरीरमें कौन ऐसा विचित्र पदार्थ था और उस पदार्थमें कौन ऐसी शक्ति थी, इसे वैज्ञानिक विद्वान् अभीतक निश्चय नही कर सके हैं। * परन्तु उनके भीतरके उस पदार्थ औ[र]

* इस पदार्थ अथवा शक्तिका विशेष परिचय दुरधिगम्य होनेपर भी वैज्ञानिकोंने इसे Mediumistic Element अर्थात् माध्यमिक शक्तिके नामसे निर्देश किया है। मीडियम शब्द जिस प्रकार अङ्गरेजीमें नवीन अर्थमें व्यवहृत हुआ है, उसी प्रकार माध्यमिक शब्द भी हिन्दीमें नये अर्थमें व्यवहृत हुआ है। वह अर्थ यह है कि जो सत् असत् अथवा दृश्य अदृश्य जगत्के मध्यस्थलमें सेतुस्वरूप,--अर्थात् जिनके शरीरनिहित हैं विशेष

उसकी शक्तिकी अनेकों प्रकारकी क्रियायें उन्होंने अपनी आंखों देखी हैं और उन क्रियाओंके विषयमें अनेकों प्रकारकी परीक्षायें करके अपने संदेहको दूर किया है। उस पदार्थके अलौकिक आकर्षणसे सूक्ष्मशरीरी स्त्री-पुरुष होमके निकट जानेपर जड़ पदार्थके ऊपर कितनी प्रकारकी आश्चर्य्यजनक क्रियायें कर सकते हैं, इस बातको उन लोगोंने रात और दिनके समय, बिजली-बत्ती-की रोशनीमें और सूर्य्यके प्रकाशमें बार बार देखा है।

डि० डि० होमने अध्यात्मशक्तिकी जिन विभिन्न क्रियाओंको दिखलाया है उनका विवरण एक वृहत् ग्रन्थमें लिखा है। यह

शक्तिका आश्रय लेकर सूक्ष्मशरीरी आत्मा जड़ जगतमें प्रवेश और जड़ वस्तुके ऊपर कार्य्य कर सकनेवाली मीडियम अथवा माध्यम है। वैज्ञानिकोंने कई प्रकारके अनुभवों द्वारा यह भी निरूपण किया है कि यह मानसिक शक्ति समस्त नर-नारीके शरीरमें किसी न किसी परिमाणमें अवश्य विद्यमान है। यह चलानेसे बढ़ती है और उपेक्षा करनेसे नष्ट हो जाती है—एक आदमीके शरीरसे होकर दूसरे आदमीके शरीरमें संचालित हो सकती है और यदि इस शक्तिको एकत्रित होकर निर्दिष्ट नियमसे चेष्टा करें तो इसका [illegible] विकास होता है। यह शक्ति होम प्रभृति प्रसिद्ध मानसिक व्यक्तियोंमें जिस परिमाणमें संचित हुई है, उस परिमाणमें साधारण व्यक्तियोंकी देहमें प्रस्फुटित नहीं होती। जिस प्रकार विद्युत् सनातन पदार्थ है, मानसिक शक्ति भी उसी प्रकार सनातन पदार्थ है। विद्युत्‌शक्ति, जल दो द्रव्योंमें [illegible] होकर [illegible] वायु बन जाती है, उसी प्रकार [illegible] दो द्रव्योंमें [illegible] होकर [illegible] रही है।

ग्रन्थ अठारह पर्ववाले महाभारतकी तरह भिन्न भिन्न भागोंमें बंटा हुआ है। वह विस्तृत विवरण यहां सैकड़ों पृष्ठोंमें समाप्त होनेका नहीं, तथापि, इस स्थानपर उससे सम्बन्ध रखने-वाली कई एक क्रियाओंका संक्षेपसे उल्लेख किया जाता है। ऐसा न करनेसे जानकीके अग्नि-परीक्षा सम्बन्धी दुर्ज्ञेय वृत्तान्तको वैज्ञानिक पाठकगण कभी देवताओंका करतब सम-झकर विश्वास न करेंगे।

होमकी उम्र जब सात वर्षकी थी तभीसे उनके रहनेके गृहमें समय समयपर देवताओंके नाना प्रकारके क्रिया-कलाप लोगोंको देखनेमें आते थे। गृहमें होमको छोड़ और कोई नहीं है, होम बाल्यकालकी चिन्तारहित निद्रामें अज्ञान होकर पड़े हुए हैं। इतनेमें ही कमरेमें कुछ दूरपर रखे हुए टेबुल, चेयर और अन्यान्य काष्ठनिर्मित सामानोंके ऊपर मनुष्यके तालीके शब्द सुन पड़ने लगे। घरकी सभी चीजें किसी आदमीके बिना छूये ही, न जाने किस अज्ञात शक्तिके प्रभावसे, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर उठ उठकर जाने लगीं।

होम जब उन्नीस वर्षके अर्धशिक्षित जवान थे उस समय उनकी उपर्युक्त अध्यात्मशक्तिका इतना आश्चर्यजनक विकास हुआ कि उनका नाम यूरोप और अमेरिकामें झोपड़ीसे राजभवन-तक पहुंच गया और आबाल-वृद्ध नर-नारी सब जान गये। वह अपनी स्वाभाविक शक्तिको दिखलाकर किसीसे कुछ मांगते नहीं थे तथापि लोग हजार जिह्वासे उनकी निन्दा करने लगे।

वह किसीको हानि नहीं पहुंचाते थे तथापि असंख्यों मनुष्य उनके शत्रु बन गये। उनका यश और सम्मान शत्रुओंको शूलकी तरह बेधने लगा। प्रचलित धर्मके प्रचारक अर्थात् वे प्राचीन धर्मयाजक जो भीषण नरकका डर दिखलाकर लोगोंको रात-दिन सशङ्कित रखना पसन्द करते हैं, कहने लगे कि इसे भूत लगा है। दूसरी ओर देशमें जो लोग धीर, स्थिर, सत्यप्रिय, सज्जन और विद्वान थे वे होमकी कृपासे परलोकके अस्तित्वका प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर मानों कृतार्थ हो गये, वे उनकी ओर झुक गये। उनके साक्ष्योंपर निर्भर करके अनेकों समाचारपत्रोंने राजनीतिक आलोचनाको छोड़ पारलौकिक जीवनके अस्तित्वके विषयमें लेख लिखने आरम्भ कर दिये।

और नयी नयी क्रियाओंको देखकर विस्मय और हर्षसे रोमाञ्चित और स्तम्भित हो गये हैं।

उनकी करामातोंमेंसे एक आगे दी जाती है:—काठका एक बड़ा टेबुल है; टेबुलका वजन बीस मन है। टेबुलके ऊपर सात आठ बलवान् और सुशिक्षित मनुष्य बैठे हुए हैं। होमने किसी किसी दिन तो उस टेबुलको अपने बायें हाथकी कानी अंगुलीसे सिर्फ छू दिया है, किसी किसी दिन ऐसा भी नहीं किया, टेबुलसे आठ दस हाथ दूर रहकर उधर दृष्टि लगाये सिर्फ अपनी अंगुली-को हिलाता रहा है पर ऐसी दशामे वह टेबुल बैठे हुए लोगोका भारी बोझ उठाकर कभी बेलूनकी तरह आकाशमें उड़ जाता है, कभी थोड़ा ऊपर उठकर लहरसे हिलती हुई नौकाकी तरह धीरे धीरे बायें और दाहिने डोलता रहा है। कभी कभी उसने आका-शहीमें एक ओर उलटे रहकर आत्मशक्तिकी महिमा दिखलायी है।* टेबुलके ऊपर जल,दूध और शराब इत्यादि द्रवपदार्थोंसे भरे

* The instances in which heavy bodies, such as tables, chairs, sofas etc., have been moved when the medium has not been touching them, are very numerous I will briefly mention a few of the most striking My own chair has been twisted partly round, whilst my feet were off the floor A chair was seen by all present to move slowly, up to the table from a far corner, when all were watching it, on another occasion an arm chair moved to where we were sitting and then moved slowly back again (a distance of about three feet) at my request

Sir William Crookes F. R. S.

अंगुलियोंसे छूआतक नहीं, ऐसा एक हारमोनियम दूसरे गृहपर रखा गया तथापि होमके वहां रहनेहीके कारण वह हारमोनियम घरमें चारों ओर हवामें उड़ उड़कर गाने लगा और अपने मधुर संगीतसे सभीको मुग्ध करने लगा।

एक दिनकी घटना है। टेबुलके ऊपर फूलके गमलेमें या वहां खड़े हुए किसी आदमीको छातीपरके बटनके छेदमें सहसा एक सुन्दर गुलाबका फूल किसी रमणीके बिम्बाधरकी नाई खिल उठा। वहां इकट्ठे हुए लोगोंकी नजरोंके सामने कभी बांहसे अलग हुआ एक सुगठित हाथ और कभी बच्चेके हाथकी तरह कोमल हाथ† या कभी कभी तो दो अंगुलियां कमरेके बीचसे या

* "Presently the accordion was seen by those on either side of Mr. Home to move about, oscillating and going round and round the cage, and playing at the same time. * * * * The instrument then continued to play, no person touching it and no hand being near it" Etc Etc.

Crookes.

† "A beautifully-formed small hand rose up from an opening in a dining table and gave me a flower, it appeared and then disappeared three times at intervals, affording me ample opportunity of satisfying myself that it was as real in appearance as my own. This occured in the light in my own room, whilst I was holding the medium's hands and feet. On another occasion a small hand and arm like a baby's, appeared playing about a lady who was sitting next to

किसी एक कोनेसे धीरे धीरे निकल पड़ीं और गुलाबको उठाकर उन्होंने किसीके हाथमें दे दिया। इस प्रकारके अपार्थिव हाथने कभी दर्शकोंके हाथोंको छूकर, कभी एकर्डियन (Accordion) बजाकरके सभीको आनन्दमें मग्न कर दिया। फिर वह किसीके हाथसे पेन्सिल छिनकर एक कागजपर किसी विषयपर दो एक सतर लिखकर देखते न देखते आकाशमें मिल गया।

होमके निकट लोकान्तरवासी सूक्ष्मशरीरी देवताओंके अलौकिक प्रभावसे इस प्रकारकी कितनी आश्चर्यजनक और दुर्बोध्य घटनायें संघटित हुई हैं, इसकी संख्या नहीं की जा सकती। पर

me It then passed to me and patted my arm and pulled my coat several times At another time, a finger and thumb were seen to pick the petals from a flower in Mr. Home's button hole and lay them in front of several persons who were sitting near him. A hand has repeatedly been seen by myself and others playing the keys of an accordion, both of the medium's hands being visible at the same time and some times being held by those near him"

* * * *

एक विशेष घटनाका यहां उल्लेख करना इस प्रसंगके लिये बहुत आवश्यक है, इसलिये संक्षेपसे उस घटनाका विवरण यहां दिया जाता है। मनुष्य पशु पक्षियोंकी तरह जलमें स्नान करता है—शरीरपर पानी डालकर ठण्डा होता है—यही सब लोग जानते हैं; किन्तु होम कभी कभी दूसरोंके घर दूसरोंके अनुरोधसे जलती हुई अग्निमे स्नान किया करते थे। उन्हे पहले इसका पता भी नहीं रहता था कि वे लोग ऐसा करनेका अनुरोध करेंगे। अकस्मात् प्रस्ताव कर देनेके कारण उन्हें अवसर भी नहीं मिलता था कि वह रासायनिक प्रक्रियाकी किसी प्रकारकी सहायता लेनेके बारेमें कुछ सोचें विचारें। उन्होंने अग्निके उद्दीप्त शिखाके भीतर सिया-शरीरके किसी एक भागको रखकर दिखला दिया कि अग्निके ऊपर अध्यात्मशक्तिका कितना प्रभाव हो सकता है!

इस प्रकार अग्निमें स्नान करते समय होमके शरीरमें एक अपूर्व दैवी आभा उद्भासित हो उठती थी। वह क्षणभर ध्यानमें मग्न रहकर मनही मन प्रार्थना करते थे। प्रार्थनाके बाद जब वह शान्त और गम्भीरभावसे खड़े होकर चारों ओर दृष्टि फेरते और धीरे धीरे श्वेत-शिखामय भयङ्कर अग्निकुण्डकी ओर अग्रसर होते उस समय सभीके मनमे एक प्रकारका आतङ्क और भक्ति उत्पन्न हो जाती थी। पूरे अविश्वासीका मन भी स्वभावतः विश्वासकी ओर झुक जाता था। उस समय सभी साफ समझ जाते थे कि होमके शरीरमें किसी अलौकिक शक्तिका आविर्भाव

हुआ है और पार्थिव होम किसी अज्ञात अपार्थिव शक्तिके आकर्षणसे शक्तिशाली होकर मनुष्योंको देवताओंकी महिमा दिखला रहे हैं।

ऊपर लिखी हुई मुद्रामें जिस समय होम तन्मय होकर ईश्वरके प्रेम, परलोकके अस्तित्व, लोकान्तरवासी पुण्यात्माओंकी सुख-सम्पद्, पापियोंके अनन्त नरक और दुःख भोग चुकनेपर धीरे धीरे उनकी उन्नति और शान्तिलाभ तथा मानवजीवनमें एक दूसरेके साथ निरहङ्कारभावसे प्रीतिका व्यवहार रखना इत्यादि विषयोंका उपदेश करते थे तब सभीके मनमें ऐसा होता था कि मानों कोई देवता उनमें बैठकर बोल रहा है। जो कोई उनकी बातोंको सुनता काँप जाता था।

ऐसे समयपर वह बार बार कहा करते थे कि पृथ्वीके मनुष्य जिस प्रकार वैज्ञानिक शिक्षाके प्रभावसे उन्नत और शक्तिशाली होकर अग्नि, विजली इत्यादि पदार्थोंपर अपना असाधारण प्रभुत्व फैलाते हैं उसी प्रकार लोकान्तरवासी देवतागण भी अध्यात्म शिक्षामें उन्नति करके जड़ और अजड़ दोनों ही जगतपर अपना अलौकिक प्रभुत्व विस्तार करते हैं। किन्तु उन लोगोंकी शक्ति अपार है। वे लोग यदि चाहें तो अपनी आकर्षणी और विकर्षणी इत्यादि नाना प्रकारकी शक्तियोंके प्रभावसे जलमें आग लगा सकते हैं और आगको शीतल तथा सुख स्पर्श कर सकते हैं। होमने अग्निमें स्नान करके इस बातको सम्पूर्णरूपसे सिद्ध कर दिया है।

जिन लोगोंके शरीरमे वह अपनी शक्तिका संचार कर देते थे वे लोग भी अग्निके शीतल स्पर्शसे क्षणभरके लिये एक अनिर्वचनीय सुखमें गोते लेने लगते थे।

अग्नि-स्नानके इस अद्भुत वृत्तान्तके सम्बन्धमें लण्डन जैसे कूट तर्क और कूरपरीक्षाके स्थानपर कितना आन्दोलन हुआ होगा और इंग्लैंड तथा अमेरिकाके रासायनिक विद्वानोने इसपर कितने प्रकारसे आलोचना की होगी, पाठक इसका सहज ही अनुमान कर सकते हैं। वैज्ञानिक पण्डितोंमे जिन लोगोंने इस प्रसङ्गपर अपनी अपनी पुस्तकोंमें अपने अपने विचार, विश्वास प्रकट किये है उनमेसे स्थानाभावके कारण सिर्फ तीन विद्वानोंका नाम दिया जाता है। इनके नाम हैं (१) डाक्टर आलफ्रेड रासेल वालेस (Dr. Alfred R Wallace) (२) यूजिनी क्रोवेल (Eugene Crowell, M D.) और (३) एस० सी० हाल (S. C. Hall)।

डाक्टर वालेस आधुनिक वैज्ञानिक जगतमें आज भी एक ज्योतिर्मय स्तम्भकी तरह खड़े हैं और उनकी लिखी हुई अध्यात्म-तत्त्व सम्बन्धी प्रसिद्ध पुस्तकें सभीके लिये सुलभ हैं। यूजिनी क्रोवेल अमेरिकाके विद्वान् हैं। इनकी गिनती साधारण चिकित्सकोंमे होते हुए भी वैज्ञानिक समाजमें ये वड़े प्रसिद्ध हैं। लोकहितैषी, धार्मिक और सुलेखक समझकर सभी इनका आदर करते हैं। इन्होने भी अपने अध्यात्म-तत्त्व सम्बन्धी वृहत्ग्रन्थोमे अग्निस्पर्श और अग्नि-स्नान सम्बन्धी अनेकों तथ्योंको, उन

लोगोंसे संग्रह करके जिन्होंने प्रत्यक्ष इसकी जांच करके अनुभव प्राप्त किया है, अपना विस्मयजनक साक्ष्य दिया है। हम यहां पण्डित हालकी ही कुछ थोड़ीसी बातोंका उल्लेख करेंगे; क्योंकि हालने डि. डि. होमकी कृपासे स्वयं भी अग्निमें स्नान किया था और अपने शरीरमें यह भी अनुभव किया था कि मनुष्य अपने सिरपर आगका बोझ रखकर भी ईश्वरके उच्चतर और अलौकिक नियम-विधानके कारण किस प्रकार निश्चिन्त और निरापद रह सकता है।

हाल विषयी लोगोंके निकट बारिस्टरके नातेसे परिचित होने हुए भी पण्डित समाजमें अपनी असामान्य विद्वत्ताके लिये ही विशेष प्रसिद्ध हैं—पांडित्यके कारण विद्वन्मण्डलीमें उनका स्थान बहुत ऊंचा है। बयालीस वर्षतक शिल्प-सन्दर्भ (Art Journal) नामक पत्रिकाका सम्पादनकर और अनेकों पुस्तकें लिखकर स्वदेशी समाजमें उन्होंने विशेष ख्याति लाभ की थी। गुणग्राहिणी विक्टोरिया उनके ज्ञानगौरवके कारण उनका बहुत सम्मान करती थीं। लण्डनके सभी प्रकारके शिक्षित समाजमें उनका बहुत आदर और सम्मान था। हाल अध्यात्म तत्वके एक बड़े साक्षी हैं--एक जीते जागते प्रमाण हैं। उन्होंने अपने साक्ष्यके सम्बन्धमें जिन ग्रन्थोंको लिखा है उनमेंसे एक ग्रन्थके एक विशेष प्रबन्धका नाम है:—"मेरी आंखोंदेखी आश्चर्यजनक घटनाएं" अर्थात् ("Wonders I have seen")। इस स्थानपर उन सब घटनाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन करना

निष्प्रयोजन है। परन्तु हालने अपनी वृद्धावस्थामे जलते हुए आगका अंगारा लेकर किस प्रकार सहन कर लिया था और उनकी मूर्ति उस समय कितनी शोभा देती थी, यह पाठकोंको बतला देना जरूरी है।

हालके अग्नि-स्नान और अग्नि-धारणके समय लण्डनके प्रसिद्ध बारिस्टर एच० डी० जेंकेन, (H. D. Jemken) लार्ड लिन्ड्से (Lord Lindsay), लार्ड एडेयार (Lord Adare) इत्यादि अनेकों विचारशील विद्वान पुरुष चारो ओर बैठे थे। घरमे अग्निकुण्डकी अग्नि धधक रही थी और होम उस समय देवशक्तिसे प्रभावित होकर बार बार उस अग्निके निकट जाते थे और अपनी देहको कमरतक अग्निमे डुबा देते थे। इसी समय एक आदमीने सन्देहके साथ पूछा—"क्या यह अग्नि किसी दूसरेको स्पर्श कर सकती है ?" होमने कहा—"जो लोग ईश्वर और देव-शक्तिमें पूरा विश्वास रखते है, उनके छूनेपर यह आग उन्हे नहीं जला सकती है।"

होमके भाव-गद्गद वाक्योंको सुनकर विश्वास और भक्तिके अवतारस्वरूप वृद्ध पण्डित हाल निडर भावसे उठ खड़े हुए। होमने तुरत सम्मुखवर्त्ती अग्निका एक जलता हुआ अंगारा उठाकर हालके सिरपर रख दिया। दर्शकोंने साश्चर्य्य हालसे पूछा—"कहिये, आपको कैसा मालूम होता है।" हालने उत्तरमें कहा—"आगकी तरह नहीं मालूम होता किन्तु स्पर्शसे कुछ गर्मी मालूम पड़ती है।"तदनन्तर होमने हालके निकट जाकर उनके लंबे

सफेद बालोंको जलते हुए लाल अंगारेके ऊपर पिरामिड (Pyramid)के आकारमें रखा और धीरे २ उसकी चोटी बांध दी। सभीने देखा कि हालके सिरपर लाल रङ्गकी आग जल रही है और बाल आगके बीचमें अत्यन्त सूक्ष्म रजत-रेखाकी तरह शोभ रहे हैं।*

अग्नि-कुण्डकी इस प्रकारकी लाल अग्नि माता जानकीके नीले और घुंघराले बालों तथा शरीरके समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गोंमें किस प्रकार शोभा पाती थी, इस बातको वाल्मीकिने थोड़ेसे शब्दोंमें गूंथकर अच्छी तरह व्यक्त किया है। उनके परवर्ती किसी कविने † उसीको विस्तारके साथ अत्यन्त ललित भाषामें

---

* "Mr. Hall was seated nearly opposite to where I sat, and I saw Mr. Home, after standing about half a minute at the back of Mr. Hall's chair deliberately place the lump of burning coal on his head! I have often wondered that I was not frightened, but I was not. I had perfect faith that he would not be injured. Some one said, 'Is it not hot?' Mr. Hall answered, 'warm but not hot'. Mr Home had moved a little way, but returned, still in a trance, he smiled and seemed quite pleased and then proceeded to draw up Mr Hall's white hair over the red coal. The white hair had the appearance of silver thread over the red coal. Mr Home drew the hair into a sort of pyramid, the coal, still red, showing beneath the hair." Mr Hall's letter printed in the Spiritual Magazine—1870.

† यह कोई साधारण नाटक नहीं है, यह बहुत पुराना महानाटक है। यह [illegible] संस्कृत साहित्यके भाण्डारमें एक [illegible] वस्तु है। इसका [illegible]

वर्णन किया है। यह वर्णन महानाटकके नवम अङ्कमे मिलता है। यथा—

'वह्नौ प्रविष्टयां सीतायाम्।'
"पदे पाणौ लाक्षा वसनमिव कौसुम्भरजनं।
कटिदेशे, केशेष्वरुणरुचि कह्लारकुसुमम्॥
हरिद्रामुद्रास्ये घनकुचतटे कण्ठनिकटे।
कृशानुर्वैदेह्याः शपथसमये भूषणमभूत्॥"

अर्थात्–जब माता जानकीने अग्निमें प्रवेश किया तब अग्निने उनके लिये अपूर्व आभूषणका रूप धारण किया। अग्निकी जलती हुई लौ उनके चरणकमल और हस्तपद्मोंमें अलक्तरागकी भांति, कमरमें कुसुम-राग-रंजित रङ्गीले वस्त्रकी तरह, केशोंमें रक्तोत्पलकी नाईं और मुख,वक्षःस्थल तथा गलेमें हरिद्रावलेपनकी नाईं शोभा देती थी।

श्वेत मस्तकवाले हालके रजतसूत्र सदृश केशोमें वैसी शोभा होनी असम्भव है;पर अग्निशिखाके लोहित आवरणमें वह केश भी थोड़ी देरके लिये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देने लगे। आगका गोला जब हालके सिरसे उतार लिया गया तब सभीने देखा

भाग नाटक और कुछ कहानीके रूपमें है। उस पुस्तकको ध्यानसे अवलोकन करनेसे मालूम हो जायगा कि वह अभिज्ञान-शकुन्तला इत्यादि नये नाटकोंसे बहुत पहलेकी लिखी हुई है। किन्तु लेखक कौन है इसका उल्लेख नहीं मिलता है। उसके प्रतिभाशाली और भक्तराज लेखकने अपनेको हनुमन्त कवि कहकर परिचय दिया है।

कि उनके एक भी बालको आंच नहीं लगी है और न उनके शरीर-को किसी प्रकारकी क्षति पहुंची है।* इसपर अनेकोंको साहस हुआ। सम्भवतः किसी किसीके मनमें अग्निकी स्वाभाविकताके विषयमें भी संदेह उत्पन्न हो गया। किन्तु वह साहस और संदेह बहुत देरतक स्थायी न रहा, क्योंकि जिस किसीने अपना हाथ बढ़ाकर आगमें रखा उसका हाथ तुरत जल गया।

हालका अनुकरण करके लार्ड लिन्ड्से और मिस डग-लसने भी जलते हुए आगके अंगारेको हाथमें उठा लिया था। अग्नि उनके हाथमें कुछ भी असर न कर सकी, उनके हाथमें किसी प्रकारका उत्ताप नहीं प्रतीत हुआ, बल्कि वह शीतल जान पड़ती थी।† किसी दूसरे आदमीने एक समाचार-पत्रकी आठ दस तह करके उसपर आगको उठाया पर-संवादपत्र तुरत तहपर तह जलकर खाक हो गया। इस विषय-पर डाक्टर वालेसने बहुत सोच विचार करके लिखा है—

"ये सब घटनायें इतने लोगोंके सामने इतनी बार संघटित हुई हैं कि इनकी सत्यताके विषयमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं

किया जा सकता। हां, यह वृत्तान्त और ये सब घटनायें जड़ विज्ञान और तापतत्त्वोंके परिज्ञात नियमोंके अनुसार समझमें नहीं आ सकतीं। *

अग्निके सम्बन्धमें इस प्रकारकी परीक्षा सिर्फ होम और हाल इत्यादि पण्डितोंने ही नहीं की है। सन् १८८० ई० में शिकागो नगरमें मिस सुइदाम नामकी एक अध्यात्म-माध्यमिकाने देव-शक्तिके आवेशमें अग्नि हाथमें लेकर बहुत देरतक नाना प्रकारके अद्भुत दृश्य दिखलाये थे, जिन्हें देखकर अनेकों मनुष्य भय और विस्मयसे दंग रह गये और अनेकोंके हृदयमें उच्च भावोंका संचार हुआ। वह अग्निमें स्नान नहीं करती थीं, पर आगमें जलते हुए काठ अथवा गर्म लोहेको हाथमे उठा लेती थीं। गैसके दीपक या और किसी तरहके दीपककी शिखपर हाथ रखनेसे उन्हें आनन्द मिलता था। वह कहा करती थीं कि एक लोकान्तर-वासिनी देवशक्तिमयी रमणी उनके भीतर प्रवेश करके उनमें शक्तिका संचार कर देती हैं। इसी शक्तिके प्रभावसे प्रभावित होकर वह अग्निकी दाहिका-शक्तिको व्यर्थ कर देती थीं और आगका गोला अनायास हाथमें लेकर नाना प्रकारके कौतुक दिखलाती थीं। सुइदामने जिस सूक्ष्म-शरीरिणीका वर्णन किया

* "These phenomena have now happened scores of times in the presence of scores of witnesses. They are facts of the reality of which there can be no doubt, and they are altogether inexplicable by the known laws of Physiology and heat." Dr. Wallace

है उसे दर्शक लोग अग्निराज्ञी (Fire Queen) कहकर पुकारते थे और जब वे लोग यह देखते थे कि अग्निके ऊपर अथवा अग्नि-के भीतर बहुत देरतक हाथ रखनेपर भी सुइदामका वह हाथ बरफके समान एकदम शीतल है, तब उनके आश्चर्य्यकी सीमा न रहती थी।*

इस स्थानपर नम्रता पूर्वक मैं यह पूछना चाहता हूं कि होम, हाल और सुइदाम ऐसे साधारण स्त्री-पुरुष जब अध्यात्मशक्तिकी अजेय महिमाके प्रतापसे अथवा देवात्माओंकी कृपाके प्रभावसे शरीरमें आग लपेट लेनेपर, अग्निको सिर और छातीपर रखने-पर और आगकी लपलपाती जिह्वाके समान उसकी लौमें डुबकी मारनेपर अक्षत शरीर बच निकलते हैं, आग उन्हें छूतक नहीं जाती; तब जिस देवीने—जिस जगज्जननीने—स्त्री-जातिको सतीत्व धर्मका स्वर्गीय सौन्दर्य दिखलानेके लिये पृथ्वीपर अव-तार लिया था—सैकड़ों प्रकारके दुःख-कष्टमें जिन्होंने परीक्षा दी थी और जो एक साथही तेजस्वितामें अग्निके समान दीप्तिमयी और स्नेह-ममतामें अमृतके समान शीतल थीं, जो ऋषि-तापस-सुलभ-पवित्रता और रमणी-हृदयकी अखण्ड सुकुमारता और कोमलता इत्यादि गुणोंका भाण्डार लेकर उस समयकी पृथ्वीके सर्वश्रेष्ठ देश और सर्वश्रेष्ठ समाजमें रामचन्द्र सरीखे

जगदादर्श परम पुरुषकी जीवनसंगिनी होकर विराजती थीं उस जगन्माताको यदि देवताओंने अशोक वन और अग्नि-कुण्डमें सब तरहसे निरापद रखा, उन्हें आंचतक न लगने दी, तो इसमें आश्चर्य्य और शंकाकी कौनसी बात है। मनुष्य यदि अतीन्द्रिय शक्ति विशेषका प्रयोग करके उन्नीसवी शताब्दीके अन्त-भागमे वैज्ञानिक सभ्यताके शीर्षस्थान लण्डन, बोस्टन या सिकागो नगरमें हजारों वैज्ञानिक विद्वानोंकी दृष्टिके सामने अग्नि-परीक्षामे उत्तीर्ण हो सकता है तो भारतके वाल्मीकि, व्यास इत्यादि महात्मा महर्षियोंसे लेकर करोड़ों मनुष्य आज सात हजार* वर्षसे जिस पुण्यमयी देवीको जगन्माताका अवतार समझकर पूजते हैं—रामायणकी वह गङ्गास्वरूपिणी आशैशव-शुद्धाचारिणी जनकनन्दिनी यदि विशुद्ध स्वर्णप्रतिमाकी नाईं अग्निपरीक्षामें अनायास उत्तीर्ण हुई हैं, तो इसमे तनिक भी सन्देह करना क्या अनुचित नहीं होगा ?

बुद्धि जबतक विज्ञानकी सबसे ऊँची चोटीपर पहुंचकर संसारके रहस्यका अध्ययन करनेमें समर्थ नहीं होती, तबतक वह नित्यप्रतिकी देखी हुई आहार-निद्रा और आमोद प्रमोदकी बातोंको छोड़ अन्य किसी बातको माननेके लिये राजी ही नहीं

---

* रामायणका इतिहास ठीक सात हजार वर्षका पुराना है, या नहीं इस बातको सिद्ध करना कठिन होते हुए भी, ह्वीलर और उनके हिन्दू-संस्कार-शून्य चेले चामुण्डोंको छोड़ कोई भी दूसरा इतिहास-लेखक नहीं कह सकता है कि महाभारतके बाद रामायणकी घटना हुई है।

होती—वह सभीमें शंका करती है। पृथ्वीसे चौदह लाख गुना बड़ा सूर्य्यका गोला आकाशमें बिना आधारके लटक रहा है और उस सूर्य्यसे एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योतिकी रेखा सैकड़ो हजारो करोड़ योजन रास्ता तय करके पृथ्वीपर आती है और गुलाब. कमल तथा कुमुदिनी इत्यादि फूलोंके रंग तैयार करती है और सरसोंके समान छोटेसे दानेसे दूर दूरतक फैले हुए शाखा-प्रशाखाओं सहित विशाल वृक्षको उत्पन्न करती है। इन सब बातोंको समझनेमें अपरिपक्व बुद्धि बिल्कुल असमर्थ रहती है। कुछ थोड़ेसे साधारण परमाणुओंके घात प्रतिघातसे एक भयङ्कर तूफ़ान उत्पन्न होकर असंख्यों गाँवोंको ध्वंस कर देता है, मनुष्यकी विचारशक्ति ग्राम-नगर, पर्वत-समुद्रको पार करके बिना तारके देश देशान्तरकी खबर ले आती है, ये सब बातें भी अपरिपक्व बुद्धिवाले मनुष्यके लिये कम आश्चर्य्यकी नहीं है। अयोध्याके अनेकों विचारहीन, कार्य-कारणके तत्त्वज्ञानसे रहित साधारण लोगोंने राम-लक्ष्मण सरीखे महापुरुषोंके साक्ष्यकी उपेक्षा करके जानकीके अग्नि-परीक्षा-सम्बन्धी वृत्तान्तको सन्देह-की दृष्टिसे देखा था। यथा, रामचन्द्रजीके शब्दोंमें—

"यदद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले,
प्रत्येतु कस्तद्यतिदूरवृत्तम् ।"

"भद्र ! उस अग्नि-परीक्षाके समय जो अद्भुत कार्य सम्पादित हुआ था, वह अद्भुत दूर देशकी बात है, उसे कौन विश्वास करेगा ?"

जानकीकी अग्नि-परीक्षाके सम्बन्धमें अब सिर्फ एक प्रश्नका उत्तर देना बाकी रह गया है। वाल्मीकि लिखते हैं और उनकी पवित्र कथा तथा पौराणिक ग्रंथलेखकोंके विश्वासपर निर्भर करके प्रत्येक स्वाभिमानी हिन्दू-सन्तान जो अपने पैत्रिक गौरवका गर्व करती है, कहा करती है कि जानकीकी चरित्र-शुद्धिके विषयमें साक्षी देनेके लिये जिस समय सभी देवता श्रीरामचन्द्रजीके निकट आविर्भूत हुए थे, उस समय दशरथजीकी भी शुभ मूर्त्ति स्वेताम्बरसे विभूषित होकर उज्ज्वल वेशमे वहां उपस्थित हुई थी और जानकीजीका अभिनन्दन करके क्षणभरके बाद अन्तर्हित हो गयी थी। राजा दशरथने आकर दर्शन दिया था, यह बात क्यां सच है? जिस दशरथने रामके शोकसे व्याकुल होकर 'हा राम!' 'हा राम!' कहते हुए प्राण त्याग दिया था, उसी दशरथने चौदह वर्षके बाद अयोध्यासे हजारों कोस दूर समुद्रसे घिरी हुई लकामें आकर राम-लक्ष्मणके साथ वार्त्तालाप किया था और जानकीजीको आशीर्वाद दिया था, क्या इसे भी आजकलके वैज्ञानिक युगमें मानना पड़ेगा?

इस अन्तिम प्रश्नके उत्तरमे भी मैं निस्सङ्कोच भावसे यही कहूंगा कि जो लोग भिन्न लोकमे गयी आत्माके अस्तित्वको—आत्माके शरीर-परिवर्त्तनको—तथा चर्मचक्षुके परे अध्यात्म-जगतके अस्तितत्वको माननेके लिये तैयार नहीं, व्यास वाल्मीकिका उदार धर्म और श्राद्धतर्पणकी विधि-व्यवस्थासे उन्नत हिन्दू-जीवन उनके लिये नहीं है। पृथ्वी जिस समय शिक्षा और

सभ्यताके साधारण प्रकाशसे भी वंचित थी, उस समय वाल्मीकि, व्यास और भारतवर्षके दूसरे दूसरे अनेकों तत्त्वदर्शी ऋषि परलोक, पारलौकिक जीवन,—परलोकमें दो आत्माओंका मिलन और दूसरे लोकमें गये हुए आत्मीय स्वजनोंकी आत्माओंके साथ पार्थिव मनुष्यका जाकर भेंट करना इत्यादि विषयोंपर अनेकों प्रकारकी आलोचना किया करते थे और इसको माननेके लिये सभीको उपदेश करते थे। आजकलके वैज्ञानिक युगमें—विद्युत प्रकाशसे दीप्त विज्ञान-शिक्षाके विविध निकेतनोंमें—क्रूकस्, कोवेल, कमिल फ्लामारियन, वालेस, एप्स सार्जेण्ट, वेविट और डेन्टन इत्यादि विश्रुतकीर्ति वैज्ञानिकोंने नाना प्रकारकी कठोर प्रणालियोंसे परीक्षा करके इन्हीं बातोंका समर्थन किया है।

सर विलियम क्रूकसने अध्यात्म मूर्त्तिके शरीरसे अलग हुए हाथको अनेकों बार अपनी आंखों देखा है, इसे हमने पहले ही कहा है। उन्होंने साफ देखा है कि रक्त-मांस और चामोंवाली दो अँगुलियां या उसी प्रकारकी पांच अंगुलियां अथवा अंगुलियां और भुजाओंसे जुड़ा हुआ पूरा हाथ घरमें इधर उधर उड़ रहा है और एक फूल या पेंसिल लेकर खेल रहा है। परन्तु इसके अतिरिक्त एक दिन जबकि वह अपने घरपर अपने बन्धु बान्धवोंके साथ बैठे हुए थे, उन्होंने एक छायामूर्तिको प्रत्यक्ष देखा और विस्मयसे अवाक् रह गये। सर विलियमने इस बातको स्वीकार किया है। जो आत्मा स्वर्गवासी हैं उनके लिये

स्थूल परमाणुओंको एकत्रित करके स्थूल शरीर धारण करना और स्थूल जगतमें अपनी मूर्त्तिको प्रकट करना बहुत ही कठिन है। तथापि उन्होंने जिस प्रकार और जैसे समय उस मूर्त्तिको देखा उसे अपनी भाषामें स्पष्ट शब्दोंमें वर्णन किया है। *

एक दिनकी बात है, सन्ध्या हो गयी है। सर विलियम कूकस् अपने कमरेमें बैठे हुए हैं। उनके कई एक वैज्ञानिक मित्र डि० डि० होमको घेरकर चारों ओर बैठे हुए हैं। घरके सभी दरवाजे अच्छी तरह बन्द हैं, जंगले भी पर्देसे ढक दिये गये है। उस घरमें इतना भी खुला छिद्र नहीं है जिससे एक मक्षिका घुस आवे और उनमेंसे कोई भी न देख सके।

ऐसी अवस्थामें सब देखते क्या है कि मनुष्यके आकारकी एक मूर्ति जंगलेके सामने अकस्मात् आविर्भूत होकर खड़ी हो गयी है और जंगलेके पर्देको हाथसे पकड़कर धीरे धीरे हिला रही है। मूर्तिका रंग अन्धकारकी छायाके सदृश है तथापि वह कुछ साफ है। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों उसे आरपार देख सकते हैं। जब सभी दर्शकोंने उसकी ओर देखा, तब वह मूर्ति आकाशमें मिल गयी ; पर्दा हिला भी नहीं।

---

* "Phantom Forms and Faces,—These are the rarest of the phenomena I have witnessed. The conditions requisite for their appearance appear to be so delicate, and such trifles interfere with their production, that only on very few occassions have I witnessed them under satisfactory test conditions." Researches in the Phenomena of Spiritualism by William Crooks, F. R. S.

सर विलियमके विचारसे इसके बादकी घटना अधिक आश्चर्य जनक है। इस दिन भी वह पहलेकी तरह अपने घरहीमें बैठ हुए थे और उनकी परीक्षा करनेके लिये सहयोगी मित्र और डि० डि० होम भी पहलेकी नाईं एक साथ बैठे थे। किन्तु आज जो घटना घटी, उसे देखकर सभीके शरीरके रोयें खड़े हो गये। छाया-मूर्त्ति इस दिन घरके भीतर आकर आविर्भूत हुई और सभीके सामने आकर खड़ी हो गयी। वहां एक एकर्डियन रखा हुआ था। एक-र्डियन एक प्रकारका वाद्य यन्त्र है। सभी उसे उठाकर सहज ही बजा सकते हैं। वह छाया-मूर्ति उस एकर्डियनको हाथमें लेकर बजाने लग गयी और घरमें चारों ओर घूम घूमकर बहुत देरतक उसने इसी तरह एकर्डियनको बजाया। यह दृश्य केवल भास न था, बल्कि बहुत देरतक स्थायी रहा। इसलिये सबने अच्छी तरह उस मूर्त्तिको देखा और यन्त्रके उस मधुर वाद्यको सुना। इसी घरमें एक किनारे एक भद्र-महिला अकेली बैठी हुई थी। मूर्ति जब उसके निकट जा पहुंची तब वह डरकर जोरसे चिल्ला उठी। मूर्त्ति उसकी चीखको सुनकर उसी क्षण तिरो-हित हो गयी।

ऊपर जिस छायामूर्त्तिका उल्लेख किया गया है वैसी मूर्त्ति पृथ्वीके स्थूल परमाणुओंसे किसी अंशमे मिली रहती हुई भी वह प्रतिबिम्बके समान है। किन्तु दशरथने जिस मूर्त्तिमे दर्शन दिया था वह छाया मूर्ति भिन्न प्रकारकी है। अध्यात्मविज्ञानकी भाषामे वैसी मूर्त्तिका नाम कायिक-प्रतिकृति अर्थात् Materialised Form है। वैसी मनुष्य-आकृतिको भली भांति स्पर्श कर सकते हैं। लोकान्तरवासी सूक्ष्मशरीरी आत्मायें अपनी शक्तिके प्रभावसे या शक्ति-सम्पन्न देवताओंको सहायतासे जब छूने योग्य मूर्ति धारण करके पृथ्वीपर प्रकट होती हैं, तब वे मनुष्यकी तरह बात कर सकती हैं और मनुष्यको प्रेमसे आलिङ्गन करके अथवा मनुष्यके शरीरको आशीर्वाद देनेके ढङ्गसे सुहराकर अपने हृदयके प्रेम और स्नेहको प्रकट कर सकती हैं। सर विलियमने अपने गृहपर (और दूसरेके गृहपर भी) इस प्रकारकी जड़ देह धारण किये हुई लोकान्तरित रमणोका कितनी

The following is a still more striking instance As in the former case, Mr. Home was the medium. A phantom form came from a corner of the room, took an accordion in its hand, and then glided about the room playing the instrument. The form was visible to all present for many minutes, Mr. Home also being seen at the same time Coming rather close to a lady who was siting apart from the rest of the company, she gave a slight cry, upon which it vanished."

Researches in the Phenomena of Spiritualism by William Crookes, F. R. S.

ही वार दर्शन किया है। अपने हाथमें फोटोग्राफिक यंत्र लेकर अपने विश्वासी वैज्ञानिक सहयोगियोंकी सहायतासे उस स्वर्गीय रमणीका फोटो उतारा है, उस रमणीको अपने हाथोंसे छूकर सत्य समझा है और अनेकों प्रकारके वार्त्तालाप करके उन्हें पूरा विश्वास हो गया है कि इंगलैण्ड ही उसका पुराना वास-स्थान रहा होगा। इस बातकी उन्होंने निडर होकर सारी-मानव जातिके सामने गवाही दी है।*

सर विलियमने फोटो लिया है सही, पर उनके मनको सन्तोष नहीं हुआ है। इस विषयमें उन्होंने बड़ी गम्भीरतासे अपना दुःख प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है, "शब्दों द्वारा जैसे उस स्वर्गीय मूर्त्तिकी चाल-ढाल और हाव-भावकी मधुरताका वर्णन करना असम्भव है, उसी प्रकार फोटोग्राफी द्वारा उसके मुख-मंडलके पूर्ण विकसित छलकते हुए लावण्यको प्रतिफलित

* हम लोगोंके पास उस फोटोकी छपी कापी है। परन्तु लाखों आदमियों तत्त्वजिज्ञासु पण्डितोंने असली फोटोको देखा था और बहुतोंने सर विलियमके घरपर अथवा किसी दूसरी जगह कायिक मूर्ति धारिणी स्वर्गगामिनी स्त्रीको अपनी आंखों देखकर उससे बातें की थीं। उस रमणीका पुराना वासस्थान इंगलैण्ड था। वह चार सौ वर्ष पहले इंगलैण्डमें जन्मी थी। वह पृथ्वीके अनेकों स्थानोंमें भ्रमण करते एक बार भारतमें भी आई थी। उस समय उसका नाम था रानी [illegible]। उस [illegible] की बातें पूछनेपर उसका प्रसन्न-मुख [illegible] हो जाता था। कभी पुराना दुःख स्मरण होनेसे उसकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगती थी। [illegible] और [illegible] भी [illegible] उसकी बातोंसे [illegible] मालूम नहीं होता था।

करना बिल्कुल असम्भव है। फोटोग्राफी अर्थात् प्रभा-चित्रकी प्रतिक्रियाकी सहायतासे उसकी मुखच्छविकी एक साधारण प्रति कृति (Map) ली जा सकती है, किन्तु उसमे उसके रंगकी अपूर्व उज्ज्वलता, हाव-भावकी चंचलता और अंग-प्रत्यंगकी क्षण क्षणकी परिवर्त्तनशीलता इत्यादिका चित्र खींचना कदापि सम्भव नहीं। वह रमणी अपने पार्थिव जीवनकी दुःखमय अतीत कहानी कहते कहते जब किसी मार्मिक घटनापर आ पहुंचती थी तो सहसा उसके मुखपर विषादकी कालिमा पड़ जाती थी। फिर बचपनकी याद आ जानेपर जब कभी वह किसी पवित्र सुखकी कहानी कहना आरम्भ करती थी तब उसका मुख बच्चेके सहज-सरल चेहरेकी तरह खिल उठता था। जो लोग उसके निकट बैठे होते थे उन सभीके मनमें ऐसा भास होता था मानों चारो ओरकी हवा उसके दृष्टिपातसे ही अधिक मन्द और शीतल हो जाती थी और नीलाम्बर आकाश जैसे क्षण क्षणमें अपने वर्ण-वैचित्र्यकी छटा दिखलाता है वैसे ही उसके स्निग्ध मधुर नेत्रद्वय क्षण क्षणमें अपने भाव-वैचित्र्यकी छटा दिखला रहे थे। उसके सत्संगमे रहनेसे ही स्वतः आप अपने मनमें यह भाव उठता था कि ऐसे स्थानपर घुटने टेककर प्रणाम करना मूर्तिपूजा नहीं है।*

---

* जिस मूलका अनुवाद किया गया है उसके पहले भागका तो अक्षरशः वाद कर दिया गया है परन्तु बादवाले अंशका भाव ही उद्धृत किया गया है। मूलका अक्षरशः अनुकरण करनेमें असमर्थ होनेके कारण ही

पाठकोंको यहां यह समझ रखना चाहिये कि लोकान्तर-वासिनीके असामान्य रूप और मधुर वार्त्तालापका जो वर्णन ऊपर दिया गया है वह किसी भावुक-पण्डित या युवक-कविकी रचना नहीं है। जिन्होंने इसे लिखा है वे एक वृद्ध वैज्ञानिक हैं—आधुनिक वैज्ञानिक जगतके वह सर्वसम्मत गुरु माने जाते हैं, जड़-तत्त्वके सर्वप्रधान आचार्य्य और अत्यन्त कठोर, नीरस तथा निष्ठुर तत्त्वपरीक्षककी पदवीके लिये वह प्रसिद्ध हैं। वास्तवमें सर विलियम क्रूकस्‌की परीक्षा-प्रणालीके ऊपर किसी

यहां भावार्थ लिखनेको बाध्य हुए हैं। पाठकोंकी तृप्तिके लिये सर विलियमके मूल ग्रन्थकी कई एक सतरोंको उद्धृत कर दिया जाता है।

But Photography is as inadequate to depict the perfect beauty of Katie's face, as words are powerless to describe her charms of manner Photography may, indeed, give a map of her countenance, but how can it reproduce the brilliant purity of her complexion, or the ever-varying expression of her most mobile features

प्रकारके दोष या सन्देहका विचार रख सके ऐसा कोई मनुष्य आजतक नही जन्मा है । सर्वसाधारणको दृष्टिके वहिर्भूत किसी निर्जन स्थानमें वैठकर उन्होंने सिर्फ अपने ग्रन्थके पत्रोंमे लिखकर ही इस वातकी साक्षी दी है सो वात नही । आज कई एक वर्ष हुए उन्होने व्रिटेनकी वैज्ञानिक सभा (British Association of Science) के वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर जहां देशके सभी वैज्ञानिक समवेत हुए थे अपने भाषणमे (Presidential Address) वड़े जोरसे कहा था—"इस प्रत्यक्ष जगतमें जिस स्थानपर जड़-शक्तिकी अन्तिम सीमा है वही अनन्त शृंखलाओंसे वंधी हुई अध्यात्म-शक्तिका आरम्भ होता है और मैंने देशीय वैज्ञानिको तथा विद्वत्समाजके विशेष अनुरोधसे पन्द्रह वर्षतक, अध्यात्म-तत्त्वकी पूरी खोज करके जिन आश्चर्य्यजनक वृत्तान्तोंको संग्रह करके ग्रन्थके रूपमे प्रकाशित किया है, उनमेंसे एक अनुस्वार विसर्ग भी झूठ नहीं है ।*

अमेरिकाके प्रसिद्ध विद्वान और स्वनामधन्य प्रसिद्ध धनकुवेर लिवरमोरने अपनी लोकान्तरित सहधर्म्मिणी और अपने गुरु वेंजामिन फ्रैंकलिनको लगातार वर्षोंतक अपनी अट्टालिकाके कमरोंमे प्रत्यक्ष देखा था । कानोंसे उनकी मधुर और गम्भीर वातोंको सुनकर, आखोंसे उनकी चमकती हुई ज्योति-

* Vide Sir William Crookes' Address to the British Association of Science, held at Bristol.

मयी मूर्त्तिको देखकर और हाथोंसे उनके कुसुम सदृश-स्निग्ध, कोमल और शीतल शरीरको छूकर कृतार्थ हो गये—हृदयके अनिर्वचनीय हर्षोच्छ्वासके कारण उनकी आंखोंसे आसुओंकी धारा बहने लगी।

पाठक वर्षोंकी बात सुनकर आश्चर्य न करेंगे, क्योंकि लिवरमोरने, किस महीनेमें, किस दिन, किस समय, किस अवस्थामें अपनी स्वर्गीया पत्नी एस्टेला (Estella) और डा० फ्रेंकलिनके दर्शन पाये थे, इसे अपनी दैनिक-विवृति (Diary) में क्रमानुसार लिख रखा है और वह दैनिक-दर्शन कहानी १८६१ ई० फरवरी महीनेसे आरम्भ होकर १८६६ ई० की २ री अप्रैलको समाप्त हुई है। उस समय अध्यात्मतत्त्व-सन्दर्भ (Spiritual Magazine) नामकी एक मासिक-पत्रिका कई एक उच्च शिक्षा-प्राप्त धर्म्मानुरागी पण्डितों द्वारा सम्पादित होती थी, जिसे उस समयके बड़े बड़े विद्वान पढ़ा करते थे। लिवरमोरका उल्लिखित मूर्त्ति-दर्शन-वृत्तान्त इस मासिक सन्दर्भमें आद्योपान्त प्रकाशित हुआ है।

इस दैनिक-लिखित वृत्तान्तको लेकर इङ्गलैण्ड और अमेरिकामें किस प्रकार तन्न तन्न करके आलोचना प्रत्यालोचना हुई थी, इसे पाठक अवश्य अनुमान कर सकते हैं। लिवरमोरको जो लोग जानते थे, उनमेंसे किसीको लिवरमोरकी सत्य वादिता पर सन्देह करनेका साहस नहीं होता था। इतना बड़ा धार्मिक और [illegible] मनुष्य, इतना पढ़ा [illegible] हितैषी, स-

प्रिय, सहस्रोंका रक्षक-पालक, किस उद्देश्यसे, किस क्षुद्र स्वार्थके अनुरोधसे लगातार पाँच वर्षों तक झूठ बोलकर मानव-समाजको प्रतारित करेगा? बल्कि उनका स्वार्थ तो इसमें था कि वह सत्यको छिपा लेते, क्योंकि लिवरमोरको बुद्धि-भ्रम हुआ था और वह प्रचलित धर्ममें* विश्वास नही रखते थे। इस प्रकारका लोकापवाद फैल जानेसे उनके व्यवसायिक कारबारमें बहुत घाटा पड़नेकी सम्भावना थी। तथापि किसो किसीने ऐसा अनुमान किया कि लिवरमोर शोकसे अभिभूत हैं; इसलिये उनकी स्त्री-मूर्त्तिका दर्शनलाभ शोकाच्छन्न बुद्धिका सामयिक भ्रम हो तो असम्भव नहीं।

इसी प्रकारके संशयकारियोंकी प्रेरणासे पहले डाकृर जान एफ, ग्रे (Doctor John. F. Gray) नामक एक बड़े प्रसिद्ध

* अमेरिका प्रधानतया ईसाईधर्मका माननेवाला है। उस धर्मसे हिन्दू-धर्म-मूल सिद्धान्तोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। हिन्दूधर्मके अनुसार मनुष्य पार्थिव शरीरको छोड़कर अध्यात्म-जगतमें अर्थात् पितृलोकमें जाकर वास करता है, इसोलिये उसकी श्राद्धादि क्रियायें की जाती हैं। प्रचलित ईसाईधर्मके अनुसार मनुष्य शरीरको छोड़कर हजारों करोड़ों वर्ष समाधिके भीतर मोहनिद्रामें आविर्भूत हुआ रहता है। जब ससारके महाप्रलयके समय विचारकी भेरी बज उठती है तब वह समाधिसे निकलकर अपने किये कर्मका दण्ड या पुरस्कार पाता है। ईसामसीहने स्वयं ऐसे उपदेशका प्रचार नहीं किया था। उन्होंने जो कहा है उससे हिन्दूधर्मका बहुत मिलान है, क्योंकि उनके मतके अनुसार मनुष्य मृत्युके बाद तुरत सूक्ष्म शरीर धारण करके कर्मानुसार फल भोगता है।

चिकित्सकने, फिर पीछे मिस्टर ग्राउट (Mr. Groute) नामक लिवरमोरके एक संभ्रान्त आत्मीयने कभी जुदा जुदा और कभी मिलकर उनके गृहपर आतिथ्य ग्रहण किया था और उन दोनोंने डाकृर फ्रैंकलिन और पतिप्रणयाकुला स्वर्गवासिनी एस्टेलाको सजीव मनुष्यकी मूर्त्तिमें प्रत्यक्ष देखा था। उन्होंने इस बातकी जांच करके निस्संदिग्ध भावसे मान लिया कि पारलौकिक जगतके अस्तित्वको झुठाया नहीं जा सकता।

डाकृर ग्रेको न्यूयार्क नगरमें सभी जानते हैं और वहांके शिक्षित समाजमें उनका बहुत आदर और सम्मान है। उन्होंने अपने प्रिय मित्र एप्स सरजेंटके निकट इस प्रसंगपर जो पत्र लिखा था अध्यात्मतत्त्वके इतिहासमें उस पत्रका बहुत सम्मान हुआ है। ग्रे लिखते हैं—"मैं लिवरमोरके साथ कितने ही दिन परीक्षा करनेके उद्देश्यसे बैठा रहा हूं। वहां मैंने लोकान्तरित दार्शनिक फ्रैंकलिनको सजीव और स्पर्शयोग्य जड़-मूर्त्तिमें अनेकों बार देखा है। हम बैठे हैं, इतनेमें देखते क्या हैं कि घरमें अपूर्व प्रकाश फैल गया है और नाना प्रकारके गन्ध और शब्दोंके कारण हमारे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा है। किसी किसी दिन हम लोगोंकी आंखोंके सामने नाना प्रकारके फूल और विचित्र वस्त्र अपने आप प्रकट हो जाते थे और फिर क्षणहीमें हवामें मिल जाते थे। मैंने लिवरमोरके साथ बैठकर अपनी आंखोंसे इन सब आश्चर्यजनक दृश्योंको देखा है। इससे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि उनकी स्त्री दैनिक-निद्रामें जिन दृश्योंक

वर्णन किया गया है और जो दृश्य मेरी अनुपस्थितिमें किसी दूसरेको दृष्टिगोचर हुए हैं वे भी सम्पूर्ण रूपसे और सर्वांशमें सत्य हैं।*

लिवरमोर और डाक्टर ग्रे दोनों ही इस समय स्वर्गवासी हो गये हैं इसीलिये हम यहां ऐसे तीन विद्वानोंका साक्ष्य प्रमाण देते हैं जो अब भी जीते हैं। इन्हीं तीन लेखोंको देकर हम इस पुस्तकका उपसंहार करेंगे। कहे हुए तीनों पण्डितोंमें पहले दोनों परिचित हैं क्योंकि जिन्होंने वालेस और स्टेड प्रणीत ग्रन्थोंका अध्ययन नहीं कि या है वे अध्यात्म-विषयमें बिल्कुल अंधकारमें हैं। हमने "बान्धव" नामक मासिक साहित्य-समालोचन पत्रके अनेकों लेखोंमें वालेस और स्टेडकी बातोंका उल्लेख किया है और देशीय पाठकोंके निकट उनका परिचय

* "Another friend, one I have known and honored for thirty years, Dr. John. F. Gray of New York, writes (June: 1869) 'Mr. Livermore's recitals of the sciences in which I participated are faithfully and most accurately stated, leaving not a shade of doubt in my mind as to the truth and accuracy of his accounts of those at which I was not a witness. I saw with him the philosopher Franklin in a living, tangible, physical form, several times, and, on as many different occasions, I also witnessed the production of lights, odour, and sounds; and also the formation of flowers, cloth-textures, &c, and their disintegration and dispersion, &c. &c." Gray's letter quoted by Eppes Sargent.

दिया है। इस पुस्तकमें भी विषयान्तर प्रसंगसे वालेसका उल्लेख किया गया है। वालेस उच्चपदवी धारी वैज्ञानिक हैं, स्टेड उदार-तन्त्री राजनीतिक हैं और स्वाधीनताके लिये उन्होंने सर्वस्व त्याग कर दिया है। इन दोनोंने ही लोकान्तरित आत्माका फोटो लेकर उसकी सत्यताकी मनुष्य समाजके सामने बार बार घोषणा की है और उन्होंने इस महासत्यका प्रचार करके अपनेको कृतार्थ किया है कि मनुष्य यहां जैसे स्थूल शरीरमे वास करता है वैसे ही लोकान्तरमें सूक्ष्मशरीरी अधिकतर सूक्ष्म पदार्थ निर्मित जलस्थलमय प्राकृत जगतमें वास करता है। समय समयपर ये सूक्ष्म शरीरी आत्माएं विशेष नियमका आश्रय लेकर पार्थिव जगतमें दर्शन दिया करती हैं। *

* वालेसने अपनी स्वर्गवासिनी माताका एक ऐसा फोटो पाया है जिससे उनकी माताका परिचय मिल जाता है। स्टेडने जिन मृत मनुष्योंका फोटो लिया है उनका छपा चित्र हमारे पास है। हम यहां डाक्टर वालेसके सातके सम्बन्धमें उन्हींके लेखका कुछ अंश उद्धृत कर देते हैं—

उल्लिखित तीनों विद्वानोंमें तीसरे पुरुषका नाम भारतवर्षमें विशेष परिचित नहीं है किन्तु लंडनमें उनका बहुत प्रभाव है। उनका नाम एन्ड्रू ग्लेंडनिंग(Andrew Glendening)है। ईश्वर-परायण ग्लैंडनिंगकी उम्र इस समय अठत्तर वर्षकी है। हमने वालेस और स्टेडको बड़े वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ कहा है। हमने उन्हें ऋषिप्रतिम नहीं कहा है। ग्लेडनिंगको हम ऋषिप्रतिम, तात्विक कहनेके लिये तैयार हैं, क्योंकि वह चरित्रको उदारता, हृदयकी महत्ता और जीवनको प्रशान्त पवित्रताके कारण यथार्थ ऋषि हैं। वह जातिसे अंगरेज होते हुए भी सदाही निरामिषभोजी हैं और इंग्लैण्ड जैसे जनाकीर्ण देशमें रहते हुए भी निर्लिप्त सन्यासी हैं। ग्लैडनिगके शरीरमें सम्भवतः किञ्चित आध्यात्मिक शक्तिका समावेश है। उन्होंने अपने इस दीर्घ जीवनमें कितनी ही बार

---

know He sent it to his uncle in Scotland, simply asking if he recognised a resemblance to any of the family deceased. The reply was that it was the likeness of Dr. Thomson's own mother, who died at his birth; and there being no picture of her in existence, he had no idea what she was like. The uncle very naturally remarked that he "could not understand how it was done" (Spiritual Magazine, oct 1873). Many other instances of recognition have since occurred, but I will only add my personal testimony. A few weeks back (in 1874) I myself went to the same photographer's for the first time and obtained a most unmistakable likeness of my mother."

अपने गृह अथवा किसी दूसरेके गृहपर छाया-मूर्त्तिका दर्शन पाया है। किसी किसी छाया-मूर्त्तिका फोटो लेकर उन्होंने बड़े यत्नसे संग्रह कर रखा है। आज एक वर्ष हुआ उन्होंने अपने एक सम्बन्धीकी छाया-मूर्त्तिको अपने घरमें प्रत्यक्ष देखकर उसके संबन्धकी सभी बातें इस ग्रंथके लेखकके पास एक पत्रमें लिखी थीं।

पूज्य-स्वभाव ग्लेंडनिंगने सन् १९०८ ई० की १८ वीं अप्रैलको जो पत्र लिखा था उसमेंसे कुछ थोड़ेसे अंशका अनुवाद कर देना हम इस प्रसंगके लिये बहुत आवश्यक और संगत समझते हैं।

"बारह फरवरीकी घटना है। रातके दो बजकर तीन मिनट हुए हैं। मैं इतनी देरतक एकाग्रचित्त होकर अकेले बैठा हुआ लिख रहा था। लिखते लिखते जब थकावट मालूम हुई तो मैं सोनेके अभिप्रायसे शय्यापर लेट रहा और थोड़ी ही देरमें गाढ़ी नींदमें ज्ञानशून्य हो गया। पर वह नींद बहुत देरतक स्थायी न रही। अभी रातके ५ भी न बजे थे इतनेहीमें मेरी नींद अपने आप टूट गयी। मुझे मालूम हुआ कि घरमें कोई और मनुष्य वर्त्तमान है। घरमें गैसके दीपककी रोशनी थी, मुझे मालूम हुआ कि मेरी छोटी लड़की [illegible] ([illegible]) उस दीपककी ओर ताक रही है।

मैंने पूछा, "[illegible]! तुम इस समय यहां क्यों आयी हो? [illegible] अभी विवाह नहीं हुआ है। [illegible] और [illegible] मेरी सेवा किया करती है। [illegible]

समझा था कि शायद सवेरा हो गया है, एफो मेरे लिये गरम चाय लायी है। परन्तु जो मूर्त्ति वहां खड़ी थी उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने जरा विस्मयके साथ सिर उठाकर उसे अच्छी तरह देखा। खड़ी मूर्त्ति भी दीपकके निकटसे धीरे धीरे आगे बढ़कर मुझसे थोड़ी दूरपर आंखोंके सामने आकर खड़ी हुई और मेरी ओर अत्यन्त स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे निरखने लगी।

बहुत दिन हुए मेरी एक लड़की स्वर्गको सिधार गयी थी। उसे स्नेहके शब्दोंमें टिना कहके पुकारा करता था। टिनाकी एक मौसी भी, बहुत दिन हुए, स्वर्गवासिनी हुई थीं। उनका नाम था फेमी। दोनोंकी आकृति बहुत कुछ मिलती जुलती थी। मैंने जो मूर्त्ति देखी है वह टिनाकी है या फेमीकी इसे मैं ठीक ठीक अनुमान नहीं कर सकता हूं। पर सम्भवतः यह इन्हीं दोमेंसे एककी मूर्त्ति थी। उस समय में हर्ष, विस्मय और स्नेहके एक प्रकारके विचित्र संमिश्रणसे विभोर होकर स्नेहसे बोल उठा—"बेटी,तुम टिना या फेमी जो भी हो,तुम वास्तवमें अत्यन्त पुण्यवती हो। इसीलिये लोकान्तरमें जाकर भी तुमने ऐसी पवित्र, उज्ज्वल और चाँदनीकी तरह शीतल मूर्त्ति प्राप्त की है। तुम यदि अपनी इस कायिक प्रतिकृतिमें बातें करनेकी शक्ति रखती हो तो दो एक बातें करके मेरे इस संतप्त प्राणको शीतल करो।

मूर्त्तिके होठोंसे शब्द न निकले। किन्तु उसकी अद्भुत-स्निग्ध, शान्त दृष्टिसे मेरा मन सचमुच ही शीतल हो गया। मूर्त्ति इसी तरह बहुत देरतक मेरी ओर ताकती रही फिर उसी जगह,

मेरी आंखोंके सामने ही, धीरे धीरे आकाशमें मिल गयी। इस प्रकार अन्तर्धान होनेके समय मैंने देखा कि पहले उसके दोनों पैर लुप्त हो गये हैं, फिर कमर तक उसकी देह लुप्त हो गयी। मैं टकटकी लगाये ताक रहा था। इतनेमें देखा कि अंतमें उस मूर्त्तिका मुख भी हवामें मिल गया। वह आनन्दमय मूर्त्ति कैसे उज्ज्वल वस्त्रसे विभूषित थी, इसे लौकिक भाषामें व्यक्त करना असम्भव है। स्वर्गवासी माता, पिता, मित्र और स्वजन सम्बन्धियोंके दर्शनलाभ सम्बन्धी सैकड़ों मनुष्योंके अभ्रान्त साक्ष्य हमलोगोंके पास लिखकर रखे हुए हैं। हमलोग उन वृत्तान्तोंको देशीय पाठकोंके सामने भिन्न पुस्तकोंके रूपमें रखेंगे और सत्यका प्रचार करके अपना जीवन सफल समझेंगे।

पुस्तकका उपसंहार करते समय हम सिर्फ यही पूछना चाहते हैं कि जब इस युगमें सूक्ष्मशरीरी स्वर्गवासी आत्माओंका दर्शन-लाभ करके मनुष्य अपनेको कृतार्थ समझते हैं, कहीं कोई उज्ज्वल मूर्त्ति अकस्मात् प्रकट होकर और कहीं प्रार्थनान्त क्षणिक प्रतिकृतिके दर्शन पाकर लोक परलोक और दैव-नियमकी सत्यतापर विश्वास करने लगे हैं और सब श्रेष्ठ वैज्ञानिक लोग भी अब ऐसी घटनाओंको प्राकृत नियमके अन्तर्गत करार देकर इन्हें पवित्र और सत्य मानने लगे हैं तब हम किस युक्तिपर निर्भर करके हिन्दू जातिके इस ऐतिहासिक सत्य-को अस्वाभाविक कहकर तुच्छ-कल्पनामें फेंक दें? जैसे सच है कि रामायणका यह वृत्तान्त कि पुष्पक [illegible] आकाशसे [illegible]

र्लभ इतिहासमें अपने हृदयके प्रेमको मिश्रित कर दिया था और जानकीसे स्नेहपूर्ण दो चार बातें करके जगत्पावन सती धर्मके गौरवको बढ़ा दिया था, बिल्कुल झूठ और काल्पनिक है? इसी विश्वासका दृढ़ अवलम्बन करके वाल्मीकिकी भुवनमोहिनी वीणाने अपने अमिय-मधुर विलम्पत-झंकारसे प्रेममय राम और पुण्यमयी जानकीका यशोगान करके भारतवासियोंको भक्तिके उच्छ्वाससे मुग्ध कर दिया है। और इसी विश्वासके वशवर्त्ती होकर भारतके असंख्यों कवियोंकी कोमल प्रतिभा और भक्तोंके मधुर कण्ठ रामके अमृततुल्य कीर्ति और चरित्र तथा जानकीकी अमल कीर्त्तिको कविताओं और गीतोंमें युगों युगों और शताब्दियो शताब्दियों गाते रहे हैं। और इसी असीम विश्वासपर निर्भर करके भारतके कोटियों नरनारियोकी जिह्वायें अहर्निश राम-जानकीका नामोच्चारण करके आंसुओंकी धारायें बहा रही हैं। आकाशका सूर्य यदि सदाके लिये डूब जाय तो उससे संसारकी उतनी बड़ी हानि न होगी जितनी राम-जानकीकी चरित-कथाका लोप होनेसे होगी। क्योंकि पृथ्वीके इतिहास और साहित्यमें इसकी जोड़की दूसरी कहानी नहीं है—पृथ्वीके इतिहासमे ऐसी कहानीका लिखा जाना भी सम्भव नहीं। यह आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण मंगलमय है और प्रीति तथा पवित्रताके अपूर्व संमिश्रणसे अमृतमय हो गयी है।

मालव-मयूर

राजस्थान (मध्यभारत और राजपूताना) का सचित्र मासिक पत्र, अजमेर
डा; पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य ३॥ वार्षिक।

सम्पादक

पं० हरिभाऊ उपाध्याय, महात्मा गांधीके "हिन्दी-नवजीवन" के सम्पादक।

मयूरका जीवन-कार्य

असत्य, अन्याय और अत्याचारका निर्भयता, शान्ति और विनय-पूर्वक विरोध करना तथा राजस्थानकी आन्तरिक शक्तिको जागृत और विकसित करना।

मयूरकी विशेषतायें

१. सत्य, शान्ति और प्रेम इसके जीवनका धर्म है।

२. यह विश्व-बधुत्वका प्रेमी, राष्ट्रीय धर्मका उपासक और भारतीयताका अभिमानी है।

३. यह विवेक-पूर्वक प्राचीनताकी रक्षा करता है और नवीनताका स्वागत।

४. देशी-राज्योंको यह ममत्वकी दृष्टिसे देखता है।

५. विज्ञापनवालोंके अनर्थसे समाजको बचानेके लिये इसमें विज्ञापन नहीं लिये जाते। सिर्फ लोकोपयोगी विज्ञापन मुफ्त छाप दिये जाते हैं।

६. ललित कलाओंके नामपर विषय-विलास-प्रेरक सामग्रीका प्रचार करनेकी प्रवृत्तिका यह विरोधी है।

७. छपाई, कागज तथा पोस्टेजके अलावा किसी किस्मका खर्चा इसपर नहीं लगाया जाता है।

नोट—सस्ता-साहित्य-मंडलकी उन्नतिके सम्बन्धमें तथा कौन कौनसी पुस्तकें निकलीं और निकल रही हैं आदि सब बातोंका उल्लेख इस पत्रमें विशेष रूपसे रहता है।

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित ...

एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर

द्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डलका जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर स्वतंत्र और लिखित अनुवाद, जो र बालक सबके लिए उपयोगी और उत्तम पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य, महत्त्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके ए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दर्शन (६) प० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकोंका मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ३) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अर्थात् उन्हें १) में लगभग साढे चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएं

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाएं निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।

कुछ सम्मतियोंका सार

पू० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"मालव-मयूर" बहुत अच्छा निकला। छपाई और कागज उत्तम है। भाषा और विषय-योजना भी ठीक है।

सरदार माधवराव विनायक किबे—मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह एक उच्च कोटिका मासिक-पत्र है।

सर्वेन्ट आव् इंडिया—......ने एक महत्वपूर्ण पत्रकी वृद्धि की है। मासिक-पत्रका सम्पादन वे विशेष योग्यता और पूरी जिम्मेवारीके साथ करते हैं कि हमें महात्मा गांधीकी पूत्यक्ष देख-भालमें तालीम पाये सज्जनोंमें दिखाई देती है।

प्रताप—"मालव-मयूर" में मौलिकता और सात्विकता है। अधिक विचार और विवेकके साथ चुनी हुई बहुतसी टिप्पणियां इसमें रहती हैं। हमें विश्वास है कि "मयूर" का मीठा और सात्विक ढंग अपना रंग अवश्य लावेगा और उससे म० भा० और रा० पू० के लोगोंकी अत्यन्त निर्बल और निर्जीव आत्माको बल मिलेगा।

मतवाला—सभी संख्यायें एकसे एक बढ़कर हैं। कवितायें और लेख बड़े ही सुन्दर, सरल और निर्दोष होते हैं। संपादकीय अंग अत्यन्त प्रशंसनीय होता है। अधिक पृष्ठ-संख्या वाले पत्र 'मयूर' से शिक्षा ग्रहण करें।

जयाजी प्रताप—लेख उच्च कोटिके हैं। उनपर दृष्टि रखते हुए अगला नंबर पिछलेसे बढ़ा चढ़ा मालूम होता है।...की टिप्पणियोंमें sense of proportion और sense of responsibility होता है, जिसकी इस सम्बंधमें बहुतसे संपादकोंमें कमी नजर आती है।

कविकौमुदी—इसके सम्पादक हिन्दीके अच्छे और विचारशील लेखकोंमें हैं। संपादकीय नोटोंमें, उनकी स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता और उत्तम विचारशीलता देखकर चित्त पूसन्न होता है।

पता—मालव-मयूर, अजमेर,
(राजपूताना)

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डलका जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य, महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके लिए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते है—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिडला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बाबू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) प० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकोंका मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ३) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अथार्त् उन्हें १) में लगभग साढे चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएं

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाएं निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी

(१) **वार्षिक ग्राहक**—चूँकि प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें पोस्टेज के अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० खर्च ग्राहकोंको अधिक लग जाता है अतएव यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अर्थात् तीन रुपया १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च । वार्षिक ग्राहक जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशित पुस्तकें उन्हें लेनी होंगी ।

(२) **जो सज्जन** ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें सदाके लिये लिख लिया जायगा और ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे पुस्तकका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोड़कर वी० पी० से भेज दी जावेंगी।

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई ढाई रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा ।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें ।

क्योंकि इससे आप बार बार वी० पी० छुड़ानेके झंझटसे बच जावेंगे और पोस्टेजमें भी आपको बहुत ही किफायत रहेगी । और स्थाई ग्राहक फीसके आठ आने भी आपसे नहीं लिये जावेंगे ।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक

(१) **जो सज्जन** मालासे निकलनेवाली सब पुस्तकें न लेना चाहें, अपने मनकी पुस्तकें लेना चाहें वे ऊपर लिखे नं० २ के प्रवेश फीस वाले ग्राहक हो सकते हैं। पर उन्हें वर्षभरमें कमसे कम २) मूल्यकी पुस्तकें जिस मालाके वे ग्राहक बनें उस मालाकी लेनी होंगी ।

नोट—आप जिस मालाके जिस श्रेणीके वार्षिक या प्रवेश फीस वाले ग्राहक बनना चाहें खूब स्पष्ट लिखें । दोनों मालाओंके बनना चाहें तो वैसा लिखें ।

सस्ती साहित्य मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिकाका सत्याग्रह (म०गांधी) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥) (२) शिवाजीकी योग्यता-पृष्ठ १३२ मूल्य ।=) (३) दिव्य जीवन पृष्ठ १३६ मूल्य ।=) (४) भारतके स्त्री रत्न-पृष्ठ ४०२ मूल्य १=) (५) व्यावहारिक सभ्यता-पृष्ठ १०८ मूल्य ।)॥ (६) आत्मोपदेश पृष्ठ ११२ मूल्य ।-)

सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग-पृष्ठ १५२ मूल्य ।=) (२) सीताजीकी अग्नि-परीक्षा-पृष्ठ १२४ मूल्य ।-) (३) कन्या शिक्षा-पृष्ठ ९६ मूल्य ।) (४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मूल्य ॥-) (५) स्वाधीनताके सिद्धान्त (टेरेन्स मेक्सविनी) पृष्ठ २०८ मूल्य ॥)

☞ स्थाई ग्राहकोंसे पिछले पृष्ठपर दिये हुए "पुस्तकोंका मूल्य" इसके अनुसार ही मूल्य लिया जायगा ।

पता—सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर

वर्ष १]　　सस्ती विविध पुस्तकमाला　　[पुस्तक १
(सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला)

कर्मयोग

लेखक—

श्री अश्विनीकुमार दत्त

मूल्य ।≈)　　१९२६　　[वार्षिक मूल्य

प्रकाशक—

जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,
अजमेर

लागत का ब्योरा

कागज	१४८)
छपाई	१६७)
बाइंडिंग	१७)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	१८६)
कुल जोड़	५१८)

प्रतियां २०००

लागत एक प्रति ।)

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका
"हनुमान प्रेस"
२, माधो सेठ लेन, कलकत्ता।

योग" ग्रन्थकी हमने बड़ी प्रशंसा सुनी है और उनका यह "कर्म-योग" तो हमारे सामने है। जो पुरुष ऐसा मनोहर और दिव्य ग्रन्थ लिख सकता है, वह पूजनीय है इसमें सन्देह नहीं।

ऐसे सर्वमान्य पुरुषके ऐसे उत्तम ग्रन्थके सम्बन्धमें यही कहना पर्याप्त है कि इस ग्रन्थद्वारा एक कर्मयोगीने संसारको एक बहुत उपकारी वस्तु प्रदान की है। जो लोग इसे पढ़ेंगे, उनका अवश्य उपकार होगा। कर्मयोग वेदान्तका विषय है। इस विषयका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता है। पर भगवद्-गीतामें कर्मयोगका जो विवेचन है वह सिद्धान्त-प्रतिपादक श्लोकोंके रूपमें है। ये श्लोक कण्ठ करने और सदा मनन करने योग्य हैं। इन श्लोकोंमें अद्भुत मन्त्रशक्ति है। पर गीताके कर्मयोगको समझकर समझाना बडा ही कठिन काम है। इसके लिये लोकमान्य गीतारहस्यकारको लगभग १००० पृष्ठका बृहत् ग्रन्थ लिखना पड़ा है और इसके पूर्व कितने ही आचार्यों और असंख्य टीकाकारोंने अनेक प्रकारकी रचनाएं की हैं। पर इन सब ग्रन्थोंको पढ़ने और मनन करनेका अवसर किसको है? इतना अधिकार और पाण्डित्य भी सबको नहीं है। इसलिये भग-वानने गीतामें अथवा वशिष्ठजीने योगवाशिष्ठमें जिस कर्मयोगका उपदेश दिया है उसे हम आप साधारण बुद्धिके लोग जानना चाहें तो कैसे जान सकते हैं? बाबू अश्विनीकुमार दत्तने कर्म-योगपर जो यह ग्रन्थ लिखा है वह हमारे जैसे प्राकृत जनोंके लिये लिखा है और दृष्टान्त आदि देकर ऐसे अच्छे ढंगसे लिखा है

कि मनोरञ्जनके साथ ही साथ कर्मयोग क्या है, यह समझमें आ जाता है। यह ग्रन्थ पढ़कर पाठकका "कर्मयोग" के संसार-में प्रवेश हो जाता है और उसको पारमार्थिक सुखका प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। ऐसे ग्रन्थके विषयमे अब यह कह-नेकी आवश्यकता नहीं रहती कि इसे सब लोग श्रद्धाके साथ पढ़ें।

लक्ष्मणनारायण गर्दे।

इस प्रकार जिस जीव समाजमें हमारे पालन, पोषण और परिवर्धनके लिये इतने साधन उपस्थित किये गये हैं, तथा जिनकी सहायतासे हम इतने आनन्दोंका उपभोग करते हैं यदि हम उनकी रक्षा और उन्नतिके लिये सचेष्ट होकर प्रवृत्त नहीं होते तो फिर हमारे समान कृतघ्न कौन होगा।

विना कर्म किये आत्मोन्नति भी सम्भव नहीं है। यदि हम परम स्वार्थपरतासे काम लें और केवलमात्र अपना ही कल्याण साधन करनेकी चिन्ता करें, तोभी विना कर्मके सम्भव नहीं। इस संसारके कर्मक्षेत्र रूपी चक्कीमे विना हाथ लगाये और उसको चलाये कोई भी पुरुष परम श्रेष्ठ ज्ञानकी उपलब्धि नहीं कर सकता। भगवान श्रीकृष्णने अपने मुखसे ही गीतामें कहा हैः—

न कर्मणामनारम्भा नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते
न च सन्यसनादेव सिद्धि समधिगच्छति।

अर्थात् विना कर्म किये कोई ज्ञानकी प्राप्ति नहीं कर सकता। और कर्मसे उदासीन होकर सन्यास ग्रहण कर लेनेसे भी मुक्ति नही मिल सकती।

महर्षि वाल्मीकिजीने भगवान रामचन्द्रको उपदेश दिया थाः—

राम राम महावाहो महापुरुष चिन्मय
नायं विश्रान्तिकालो हि लोकानन्दकरो भव।
यावल्लोकपरामर्शो निरूढो नास्ति योगिनः
तावद् रूढ समाधित्व न भवत्येप निर्मलम्।

तस्माद्राज्यादि विषयान् पर्यालोक्य विनश्वरान्

देवकार्यादि भारांश्च भज पुत्र सुखी भव ।

हे महावाहो, चिन्मय पुरुष राम ! यह आपके आनन्द और आरामका समय नहीं है । इस समय आपको उचित है, कि आप अपनी चेष्टाओसे संसारको सुखी करनेका यत्न कीजिये । जब तक योगी कर्मक्षेत्रमे रहकर लोक यात्राके लिये कर्म नहीं कर लेता तव तक शान्ति पूर्वक वह समाधिमे भी नहीं लग सकता । इस लिये राज्यादिक विषय वासनाओंको तृप्त करनेवाले साधनोंको नाशवान मानकर हे पुत्र, उनको तथा देवाताओके काय्र्यभारको निवाह कर सुखी हो ।

इसी प्रकार शिवाजी महाराजके गुरु उदासी रामदासजीने भी शिवाजीको यही उपदेश दिया था कि बेटा ! कर्मक्षेत्रमे प्रवृत्त हो ।

आधीं प्रपञ्च करावा नेटका

मग घ्यावा परमार्थविवेका

अर्थात् मनुष्यको पहले संसारके प्रपञ्चोंका बोझ सिर पर उठाकर उन्हे सुचारु रूपसे ढोना चाहिये और उसका सम्यग् रूपसे निवहन करके तव परमार्थकी चिन्तामे प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् प्रथम आत्मा, पीछे परमात्मा । आगे चलकर उसी त्यागीने यह भी वतालाया है कि संसारके प्रपञ्चोंको किस भावसे निस्पादित करना होगा ।

प्रपञ्च करावा नेमक, वाहावा परमार्थ विवेक,
जेने कहितां उभये लोके सन्तुष्ट होतीं।

एक तरफ तो स्थिरतापूर्वक अर्थात् विना किसी तरहकी चिन्ता और घबराहटके संसारके प्रपञ्चोंको करता जाय और दूसरी ओर परमार्थका ज्ञान भी प्राप्त करता जाय। इस प्रकार इहलोक और परलोक दोनों बन जायगा।

विना संसारकी प्रपञ्च रूपी इस यात्रामें प्रवृत्त हुए कोई मनुष्य मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि भावोंको अपने वशमें नहीं कर सकता। यदि संसारमें किसीके साथ सम्बन्ध नहीं है, तो फिर मैत्री किससे? किसको आनन्दसे प्रसन्न देख कर प्रसन्न होंगे, और किसकी बढ़ती देखकर मनमें ईर्ष्या, द्वेषादिके भाव जागृत होंगे और किसकी उपेक्षा करेंगे। इस संसारमें रह कर कर्त्तव्य कर्म किये विना न तो मनुष्यको आत्माका ज्ञान प्राप्त करनेका कोई सहायक मार्ग है, न तो नित्य तथा अनित्य वस्तुओंके विवेकका ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है, और न शम दमादि छहों प्रकारकी सम्पत्तियोंकी प्राप्ति हो सकती और न मुक्तिको प्राप्त करनेका कोई साधन है। जबतक अनित्य पदार्थोंके साथ सम्पर्क नहीं होगा, जबतक उनका अनुभव नहीं हो जायगा, तबतक मनुष्यको इस बातका किस प्रकार ज्ञान हो सकता है कि नित्य और अनित्यमें क्या भेद है। किसी वस्तुसे तभी वैराग्य हो सकता है, उसके प्राप्तिकी अनिच्छा हृदयमें उत्पन्न हो सकती है जब पहले हमें यह मालूम हो जाता है कि यह वस्तु अनित्य और

नाशवान है तथा इसके संसर्गसे अथवा सेवनसे इहलोक तथा परलोकमे अमुक फलकी प्राप्ति होगी। जबतक बाह्य इन्द्रियां (कर्म इन्द्रियां) और अन्तःइन्द्रियां (ज्ञानेन्द्रियां) पूर्ण रूपसे अनेक तरहकी संकटापन्न विपत्तियोंमें नहीं फस जातीं, तब तक शम दमादि साधनोंके प्राप्तिकी चेष्टा नहीं की जा सकती। जब तक मनुष्य कष्टमे नहीं पड़ता तबतक उसमे सहनशीलता और धैर्य्य नहीं आसकता। जिस विषयवासनाके फेरमें हम पड़े हैं पहले उसमे दोष देख लेंगे तभी उसके प्रति हमारे हृदयमें आशंका उत्पन्न होगी। फिर उसके समाधानके लिये गुरु और वेदान्त वाक्योंकी आवश्यकता पड़ेगी। इन उपायोंसे शंकाका निवारण हो जानेसे हृदय श्रद्धासे भर जायगा। जब जीव बन्धन बोध करने लगेगा तभी तो उस बन्धनसे मुक्त होनेकी उसमे प्रबल उत्कण्ठा प्रतीत होगी! इस संसारमे हम जितना अधिक जीवन यात्रा करेंगे उतना ही अधिक यह पथ सुपरिष्कृत होगा। इस यात्रामें पग पग पर भ्रम उत्पन्न होगा, पतन होगा पर इसी तरह हम सफलभी हो सकेंगे। उसी उत्थान और पतनके द्वारा ही सारे भ्रमोंका दूरीकरण होगा, सच्चा मार्ग दृष्टिगोचर होने लगेगा और हमारा अनुष्ठान सार्थक होगा। इसी प्रकारकी भावनासे प्रेरित होकर श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरने श्रीभगवानको लक्ष्य करके कहा थाः—

भगवान् हमारी चेष्टायें हजारों तरह की हैं, ऐसा यत्न किजिये जिससे आपकी कृपा हमें हर तरहसे प्राप्त होती रहे।

इस संसारसे मुक्त होनेके लिये तथा मोक्ष प्राप्त करनेके लिये

कर्मक्षेत्रमे प्रवृत्त होनेके साथ ही हम जिस भ्रममें पड़ जाते हैं, वह भ्रम सदिच्छाके प्रतापसे दूर हो जाता है, और आनन्द और सत्यके रूपमे खुल जाता है और इसका सञ्चालक विविध मार्गों द्वारा अपनी वंशीके ध्वनिको हम तक पहुंचाया करता है।

इस प्रकारके कर्म द्वाराही इस विश्वकी उन्नति हुई है। और इसी प्रकारका सतत कर्म करनेके लियेही हमे ईश्वरने उत्पन्न किया है। जो मनुष्य इस प्रकारके कर्म करनेका व्रत ग्रहण कर लेते हैं वे ही वास्तवमें मनुष्य कहलानेके योग्य हैं, और जो जाति इस प्रकारका कर्म करनेके लिये सदा यत्नवान और चेष्टावान रहती है वही जाति इस संसारमें उन्नति कर सकती है। जो धर्म सम्प्रदाय सर्वकर्मों से इस कर्मको उत्कृष्ट समझकर इसीको ग्रहण करते और सम्पादन करते हैं, वही सम्प्रदाय इस विश्वमें सर्व श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करनेके योग्य हैं। प्राचीन समयके इतिहासकी प्रत्येक पंक्तिसे यही ध्वनि निकलती है। आज संसारमे जिनकी ख्याति व्याप्त है, जो महापुरुष पदवीको प्राप्त हुए हैं, उन्होने इसी प्रकार कर्म किया था।

इस तरह अर्थात् कर्तव्य कर्मका पालन करनेमे जो देश और जाति जितना आगे बढ़ गई है अर्थात् कर्म करनेमे जितनाही दक्ष और दत्तचित्त है, वह जाति और वह देश उन्नतिके शिखरपर उतना ही ऊपर चढ़ चुके हैं। प्राचीन रोमके निवासियोंके हृदयमें जब तक यह भाव जाग्रत रहा, तब तक रोम संसारमें श्रेष्ठतम माना जाता था। पर जिस दिनसे रोमवालोंके हृदयमें

से यह भाव उठ गया, उसी दिनसे रोम इतना नीचे गिर गया कि अब उसकी दशा ऐसी भी नहीं रही कि वह उन लोगोंके साथभी बराबरीका स्थान प्राप्त कर सके, जो किसी समय उसके पैरोंपर अपना मस्तक नवाते थे। यही हालत भारतकी थी। जब तक इसकी संतान कर्मक्षेत्रमें सबसे अग्रसर रही भारत संसारका मुकुट उज्वल करता रहा, सारा विश्व इसकी जय जयकार मनाता रहा। पर जिस दिनसे इसने भी कर्मक्षेत्रसे मुंह मोड़ा इसकी क्या दशा हो गई, यह कितना गिर गया, कहते भी नहीं बनता।

इस भारतवर्षमें जिस समय आर्यलोगोने कर्मद्वारा गौरवके उच्चतम शिखर पर पहुंचकर चारो तरफ दृष्टि पात की, तो उन्हें विदित हुआ कि इस भूमिमें इतना पर्याप्त अन्न उत्पन्न हो सकता है, कि साधारण जीवन यात्राके लिये हमें किसी तरहके भीषण प्रयासकी आवश्यकता नहीं। इस भावके उदय होते ही कर्मोंके प्रति उदासीनताके भाव उनके हृदयमें उठने लगे। उन लोगोंने देखा कि शरीरके भरण पोषणकी सामग्री तो इस देशमें सहज साध्य है, इसलिये इसके प्रति वे लोग उदासीन हो गये। साथ ही यह भाव भी उनकी दृष्टि पथसे हट गया कि नैतिक और आध्यात्मिक उन्नतिका जो कर्म इस शरीर यात्राके लिये किया जाता है उससे घनिष्ट संबंध है। परिणाम यह हुआ कि जीविका उपार्जनके लिये कर्मेन्द्रियोका सञ्चालन निर्थक प्रतीत होने लगा। पर उस समय उन लोगोकी बुद्धिमें यह बात न समाई कि बाह्येन्द्रियोंका संचालन केवल शरीरके भरण पोषणके ही लिये नहीं बल्कि अन्तरात्माकी

उन्नति और उद्बोधनके लिये भी नितान्त आवश्यक है। परिणाम यह हुआ कि गण्यमान्य लोगोंने कर्मकी तो अवहेलना की और भक्ति और अध्यात्मको ही प्रधान स्थान दिया और उसीका ज्ञान प्राप्त करना ही जीवनका परम उद्देश्य बताया। परिणाम यह हुआ कि जो नीच जातियां उस समय तक कर्मके बन्धनमें बंधी थीं, उच्छृङ्खल होगईं। यहींसे भारतवर्षका पतन प्रारंभ हुआ। जो लोग संसारके झंझटोंसे पिण्ड छुड़ाकर जङ्गलोंमे जाकर तपस्या करने लगे, उन्होने साधु, महापुरुष और तपस्वीकी संज्ञा प्राप्त की और जो लोग संसारमे रहकर भी इस बातको भूल गये कि संसारके मङ्गलकेसाथ उनका कल्याण किस तरह दृढ़ बंधनमें बंधा है उसे भूलकर वे लोग घोर विषयी और स्वार्थमें रत होगये। इस दोनों दलने मानव समाजसे भिन्न होकर उसे छिन्न भिन्न कर डाला। जिन लोगोंने तपस्या करना स्वीकार किया था वे भी अपनी मुक्तिकी कामनामे इतने प्रवृत्त हुए कि वे भी परार्थकी चिन्ता भूल गये। इन्द्रियोंके वशमे पड़े जीवके लिये किसी बातकी चिन्ता ही नहीं रह गई। इस दशाको देखकर भक्त प्रह्लादने अति व्यथित होकर भगवानको पुकार कर कहा था :—

हे भगवन्! तुम्हारे गुणरूपी अमृतके अगाध स्रोतमें जिस समय मैं मग्न हो जाता हूं उस समय वैतरणी नदीको न पारकर सकनेवाली मेरी चिन्ता मुझसे सैकड़ों कोस दूर भाग जाती है। उस समय यदि मुझे किसी तरहकी चिन्ता आ घेरती है तो वह चिन्ता उन मूढ़ पुरुषोंके लिये होती है, जो मायारूपी सुखके फेरमें

पड़कर तेरी भक्तिके विमुख होकर इन्द्रियोंका दास बन जाते है, और दुःखोंका भार अपने सिरपर लाद लेते है। प्रायः देखनेमे आता है कि देवता और ऋषिगण एकान्त जंगलमें जाकर वास करते हैं और तपश्चरण करते है पर उनकी सारी चेष्टायें मुक्तिके हेतु होती है। दूसरोंका उन्हें ध्यान नहीं रहता। हे भगवन्! इसलिये मोह जालमें फसे इन सभोंको छोड़कर अकेला मैं मुक्तिकी इच्छा नहीं कर सकता। क्योंकि मैं देखता हूं तो मुझे यही प्रतीत होता है कि इस मोहचक्रमे भ्रमण करते हुए प्राणीके उद्धारका एकमात्र उपाय आप ही हैं।'

भक्त प्रह्लादके उपरोक्त भावोंको तपस्वी और संसारी दोनों ही भूल गये, दोनोने ही संसारके कल्याणको लेकर ताखपर रख दिया और अपने स्वार्थ साधनमे लग गये।

इसका परिणाम जो होना था वही हुआ। भारतवासियोंका धीरे धीरे पतन होने लगा और वे निर्जीव, शक्तिहीन और मलिन चित्त हो गये। जो लोग मानव समाजका त्याग करके साधनामें लग गये, उनके हृदयसे कर्मयोगी होनेकी सारी चेष्टायें निकल गईं और बलका अभाव हो गया और वे भिक्षुक सम्प्रदायमे परिणत हुए। जो लोग संसारी बने रह गये उनका हृदय उच्छृंखल होगया. और वह द्वेष, ईर्ष्या, हिंसा, क्रोध, लोभादि नीच और कुत्सित प्रवृत्तियोंका दास बन गये। इस मार्गका अनुसरण करके जब भारतकी आर्य सतान इतने नीचे गिर गई कि उससे अधिक पतन हो ही नहीं सकता था, जब उन्हे दूसरेके पैरोंकी धूल चाटनी पड़ी

तब भगवानने उन्हें प्रत्यक्ष दिखा दिया कि कर्ममार्गसे विमुख मनुष्य या जातिकी क्या दुर्दशा होती है। जो लोग कर्मयोगी नहीं होना चाहते, कर्मसे विमुख हो जाते हैं उन्हें कर्मयोगियोंका अनुगत दास होकर रहना पड़ेगा। उनके ही सहारे चलना, फिरना और उठना पड़ेगा, यही भगवानकी इच्छा है। संसारके स्वामी भगवान प्रतिदिन इसी सत्यताको प्रमाणित करते रहते हैं। और जबतक भारतवासी इसी तरह पड़े रहेंगे और पुनः कर्म करनेके लिये सचेष्ट न होंगे, तबतक किसी भी श्रेष्ठ और उन्नत जातिके सामने खड़े होनेका उन्हें साहस नहीं हो सकता।

यह बात सबके लिये एकही तरहसे सच है चाहे वह व्यक्ति-विशेष हो, जाति-विशेष हो, या सारा विश्व हो। सर्वार्थ सिद्धिका एकमात्र उपाय यही है कि कर्मक्षेत्रमें प्रवृत्त होकर प्राकृतिक कर्मकी योजना की जाय और सर्वस्व नाशका एकमात्र कारण कर्ममार्गसे विमुख होना है। प्राकृत कर्ममार्गका अनुसरण करने पर ही हमारे जीवनके अभीष्ट लक्ष्यकी सिद्धि होगी और इस मार्गसे विमुख होनेपर ही हमारा नाश अवश्यम्भावी है।

मोक्षसेतु

इस जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—विश्वव्यापी साक्षात सच्चिदानंद प्रभुकी उपलब्धि, उनका अवलम्बन और उनकी प्रतिष्ठा। यही मुक्तिमार्गका पुल है। इस संसारमें निवास करने वाले जीवका यही आलोच्य और करणीय विषय है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म क्या है, इसको कौन जानता है। महाकवि टेनिसनने इसी सच्चिदानन्दकी प्रतिष्ठाको "That far off divine event. वही सुदूरस्थ देवानुष्ठान" कहकर सम्बोधित किया था।

भगवान सत्, चित्, और आनन्द तीनों हैं। अपनी सत्‌शक्तिका प्रयोग करके वे इस संसारकी तथा इसमे निवास करनेवाले जीवोंकी रचना करते है और उनकी वह सत् शक्ति इस संसारमें चारों ओर व्याप्त है। अपनी चित् शक्तिद्वारा वे इस ससारको प्रकाशित करते है तथा इसमें ज्ञानका प्रसार करते है और आनन्द शक्तिद्वारा संसारमे आह्लादका प्रसार करके संसारको आनन्दित करते है। परमेश्वरकी सन्धिनी शक्ति हमारे कार्योंका सञ्चालन व सम्पादन करती है संवित्‌शक्ति हमलोगोंमें ज्ञानका प्रसार करती है और आह्लादिनी शक्ति हमलोगोके चित्तका मनोरञ्जन करती है। वेदान्तियोके भिन्न भिन्न मतके अनुसार प्रत्येक मनुष्य स्वयं सच्चिदानन्दका स्वरूप है, सच्चिदानन्दका अंश या कण है अथवा सच्चिदानन्दकी छाया है। जो कुछ हो, हमलोगोंके जीवन-

को आधार बनाकर सच्चिदानन्द परमेश्वर अनवरत रूपसे अपनी असीम लीला किया करते है, इसमे किसी तरहका सन्देह नहीं। चाहे किसीका व्यक्तिगत जीवन हो, मानव समाज हो, अथवा भूत समाज हो, सब ही उस सच्चिदानन्द लीलामयकी विहार भूमि है। इसका पता तो साधारण चिन्तनसे भी लग जाता है। व्यक्तिगत जीवन जितना प्रकाशमय होगा उतनाही सन्धिनी, सम्वित तथा आह्लादिनी शक्तिकी क्रिया वृद्धिको प्राप्त होती रहेगी। मनुष्य वृद्धजनोंके सहवाससे तथा शिक्षा जनित उन्नतिके प्रभावसे कितनी ही बातोंका ज्ञान प्राप्त करता है, कितनी ही क्रियायें करता है और कितनी ही क्रियाओंका उपभोग करता है और अखण्ड मण्डलाकार समस्त मानव समाजके भीतर सच्चिदानन्द प्रभुकी यह अनन्त शक्ति धीरे धीरे प्रस्फुटित होकर व्याप्त होती है, इसमें कोई किसी तरहकी आशंका नहीं कर सकता और न इसे अस्वीकार ही कर सकता है। प्राचीन इतिहासकी आलोचना करने पर हमें यही विदित होता है कि इसकी पूर्णताकी प्राप्तिके लिये हम सदा आगे बढ़ते रहते हैं। भिन्न भिन्न देशोंमें और विविध अवस्थाओंमें उन्नति तथा अवनतिके प्रत्येक तरङ्गोंमे ऊंचे उठते तथा नीचेकी ओर गिरते प्राचीन ज्ञान, प्रेम तथा क्रियातत्वको हृदयंगम करनेके उद्योगमे तथा जगत्‌में सर्वतो रूपसे व्याप्त उस परमानन्द परम पुरुषके विस्तारका साधन ठीक करनेके उद्योगमें ही हमलोग अर्वाचीन ज्ञान, प्रेम व क्रियाशक्तिके सहारे सच्चिदानन्दकी प्रतिष्ठाकी ओर अनवरत रूपसे चल रहे हैं।

हमारी इसी गतिका प्रमाण शिकागोका धर्मसम्मेलन है, हेगका सुविख्यात अन्तर्जातीय कलहको रोकनेकी चेष्टाजनक सन्धि परिषद् तथा अमरीकाके राष्ट्रपति विलसनका राष्ट्रसंघका स्वप्न है। प्राचीन कालमें जो लोग ईर्ष्या करके एक दूसरेको सताते रहे वे ही शिकागोमें धर्म बन्धनमें एकीभूत होकर एक आसनपर परस्पर प्रेमके साथ बैठे थे। भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी लोग भी परस्पर किस प्रेमसे मिले और एक दूसरेकी इज्जत की। पर इसके सौ वर्ष पहले किसीने स्वप्नमे भी इस बातका अनुमान नहीं किया था कि इस तरहका सम्मेलन कभी भी संभव है।

यद्यपि हेग सम्मेलन तथा राष्ट्रसघने अभीतक कोई भी लाभदायक कार्य नहीं किया है, यद्यपि आज भी रणचण्डी अपना विकराल मुंह खोलकर पूर्ववत् खड़ी है और संसारको अपने अति विस्तृत उदरमें भरती जारही है तथापि यह निश्चय है कि एक दिन ऐसा आवेगा जब यह धर्माधिकरण संसार भरमें शान्तिका सुखदायक जल वर्षावेगा और इस अतिभीषण दावानलका प्रशमन करेगा। इस धर्माधिकरणकी स्थापना ही यह देखकर हुई है कि इस अवनीतलके मनुष्योंकी गति उसकी अनुगामिनी होनेकी सदिच्छा रखती है, जिस राष्ट्रसम्मेलनमें इस भावका उदय हुआ था उसमें रूसके अधिपतिने कहा था:—"जो राष्ट्र-समूह वाद-विवादसे मुक्ति लाभ करनेके निमित्त विश्वव्यापी शान्तिके स्थापनाका प्रयास कर रहे हैं, उन लोगोंका प्रयास इस शक्तिमत् केन्द्रके केन्द्रीभूत होगा।" उनकी यह कल्पना व्यर्थ नहीं थी। यह अवश्य

घटित होगी। कविगणोंने जिस अन्तर्राष्ट्रीय संघका स्वप्न देखा है और कल्पना की है वह एक न एक दिन अवश्य चरितार्थ होगा। हेग सम्मेलन उसीका पूर्वाभास था।

राष्ट्रसंघकी स्थापना भी उसी बातकी सूचना दे रही है। यद्यपि यह सच है कि गोरे और कालेका भेदभाव आज भी भीषण रूप धारण करके अनेक तरहका उत्पात मचा रहा है, अनेक तरहके अनर्थोंका कारण हो रहा है और उसी जातिगत विद्वेषाग्निमें चिरकालसे अर्जित अनेक तरहके गुणों और सुख्यातियोंकी आहुति करके उसे और भी प्रज्वलित कर रहा है तथापि इतने उपद्रवों और बाधाओंके रहते भी इस (हेग) सम्मेलनका अधिवेशन हुआ. यही भविष्यके एकीकरणकी सम्भावनाका पर्याप्त प्रमाण है। उसका यहीं सूत्रपात हुआ है!

आज वर्तमान संसारकी क्या गति है। तार, बिजली, स्टीमर तथा हवाई जहाजोंके द्वारा संसारके सभी खण्डोंका परस्पर आध्यात्मिक. वैज्ञानिक, नैतिक, व्यवहारिक तथा व्यवसायिक आदि नाना प्रकारका सम्बन्ध स्थापित हो गया है। केवल भोजन और जीविकाके लिये ही नाना प्रकारकी जातियोंका परस्पर सम्बन्ध हुआ है। आज यदि ब्रिटन अन्य देशोंसे भोजनकी सामग्री न मंगावे तो उसकी अन्नकी समस्या किसी भी प्रकारसे हल नहीं हो सकती। फ्रांस, अमरीका तथा जर्मनी आदि सभी बड़े बड़े राष्ट्र करोड़ोंकी खाद्य सामग्री विदेशोंसे मंगाते हैं। इसी बातकी आलोचना करते हुए महात्मा कार्नेगीने अपने एक भाषणमें कहा थाः—

"Nations feed each other A noble ideal presents itself for the future of man—no nation labouring solely for itself, but all for each other, thus becoming a brotherhood under the reign of peace."

अर्थात्—"संसारकी भिन्न भिन्न जातियां एक दूसरेके लिये आहार संग्रह करती है। इस सम्बन्धने मानव समाजके भविष्यके लिये एक सुन्दर आदर्श खड़ा कर दिया है अर्थात् भविष्यमें किसी भी जातिको अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओंको आप ही पूरी करनेकी चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, वलिक समग्र जातियां एक दूसरेकी आवश्यकताको पूर्ण करने की चेष्टा करेंगी। इस प्रकार शान्तिके अटल साम्राज्यमे वे पूर्ण भ्रातृभावसे रह सकेंगी।" ऊपर कहे हुए अनेक प्रकारके विरोधी भावोंके रहते भी विश्वव्यापी ज्ञान, प्रेम तथा सामर्थ्यकी जो वृद्धि हुई है उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि इसे सभी स्वीकार करेंगे।

जिस तरह काल व्यतीत होता जारहा है उसी तरह पृथ्वी नई नई लीलायें देख रही है। यह लीलाये हमारे व्यक्तिगत तथा जातिगत जीवनके सहायक है।

आत्माकी बैठक

इस विश्वमें जितने प्राणी हैं सबके अन्तर्गत एक ही शक्ति स्थित है और वही अनन्त कार्यका सञ्चालन कर रही है। इसी भावसे प्रेरित होकर हम परस्पर एक दूसरेकी क्रिया, ज्ञान तथा आनन्दका अनुभव करते हैं और उसकी उपलब्धिमे सहायता करते हैं। इसी तत्वका ज्ञान प्राप्त करके ही किसी महद् वेदान्तीने कहा था :—

I am owner of the sphere
Of the seven stars and the solar year.
Of the Caesar's Land and Plato's brain.
Of Lord Christ's heart and Shakespeare's strain.

अर्थात् मैं इस विश्वका अधिपति हूं. सप्तर्षिमण्डल तथा सौर लोक मेरे अधीन हैं। जगत श्रेष्ठ शासक सीजरका हाथ, सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक और तत्ववेत्ता प्लेटोका मस्तिष्क, शान्तमूर्ति महात्मा ईसाका हृदय तथा सर्वश्रेष्ठ कवि शेक्सपियरकी संगीत-ध्वनि सभी मेरी प्रेरणाके फल हैं।

इस अखिल ब्रह्माण्डके अन्तरिक्षमे छिपा जो सूक्ष्म तत्व है और हमारे शरीरके अन्तर्हित जो तत्व है, इन दोनों तत्वोंमें यदि समता न होती तो हम इस ब्रह्माण्डके रहस्यका उद्घाटन करनेके लिये कभी भी अग्रसर होनेमें समर्थ न होते। यदि हमारे

अन्तरात्मामे दक्षताका आभास न होता तो हम सीजरकी दक्षताकी कल्पना करके इतना उत्फुल्ल कभी भी न होते। आज हम नेपोलियन आदि वीरोंकी वीर कहानी और साहसिक कार्य्यंको पढ़ते पढ़ते उत्फुल्ल हो जाते हैं--रोमाञ्च पूर्ण हो जाते हैं, धमनियोंका रक्त गरम हो जाता है, इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारे हृदयके भीतर भी नेपोलियनकी सम्बन्धिनी शक्ति छिपी पड़ी है। प्लेटोके दार्शनिक परिभाषाओं और गूढ़ विचारोंको देखकर हम मुग्ध हो जाते है, कारण कि उसकी सम्वित् शक्ति हमारे हृदयमे भी बैठकर उसी प्रकार काम कर रही हैं। ईसाके त्याग और उत्सर्गको देखकर हम मुग्ध हो जाते हैं, क्योंकि हमारे हृदयमें भी वह त्यागका भाव वर्तमान है। शेक्सपियरके वाक्याडम्बरो और कार्य्य कर्मोंको हम पढ़कर मुग्ध होते हैं, क्योकि रसमर्मज्ञता हममे कुछ विद्यमान है, हम भी रसके भावको समझते है। नक्षत्रलोक, सौर-जगत् तथा वर्षके हम किस तरह अधिकारी है इसका ज्ञान—यदि थोड़ी देरके लिये भी हम एकान्तमे बैठकर आत्माके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं—तो हमें सहजमें ही मिल जाता है। हम 'नक्षत्र और सौर - केवल इस दो लोककी चर्चा क्यो करते हैं ? वास्तविक वात तो यह है कि 'अहम्' देश और कालसे परे है। इसी प्रसंगको लेकर एमर्सनने कहा था :—

"Before the great revelations of the Soul, Time, Space and Nature shrink away."

अर्थात् जहां आत्माका प्रकाश है वहां काल, समय और प्रकृतिका कोई रूप नहीं है। यदि यह बात नहीं है, तो उपनिषद्के कर्ता ऋषिगण, प्लेटो, शेक्सपियर, कृष्ण तथा अर्जुन आदि महान आत्माओंसे किस प्रकार संपूर्ण संसर्ग हो सकता है। जिस समय हमारा मन इन लोगोंकी चिन्तनामें लिप्त हो जाता है, उस समय देश व कालके सब भेदभाव भूल जाते है।

ब्रजमोहन विद्यालयमे हेरम्वचन्द्र चक्रवर्ती नामका एक छात्र था, वह बड़ा सुशील और सच्चरित्र था। मैं एक दिन उसकी डायरी उठाकर पढ़ रहा था। एक प्रसंगपर वारीसालके तटिनी-तटकी शोभाका वर्णन करते करते उसने लिखा था:—"मैं अपने स्थानसे उठा और चलकर जलराशिके ऊपर पहुंचा और उसीपर आसन लगाकर वैठ गया। वहां वैठा वैठा मैं इस संसारके चित्रकारकी चित्रण चातुरीकी अपूर्व लीलाका आनन्द लेने लगा। एक के वाद दूसरे और तीसरे भाव उठने लगे। इस प्रकार अनेक तरहके भाव उत्पन्न हुए, पर सबसे ऊपर और सर्व प्रधान भाव इस संसारके विस्तारका मात्र था। इन विविध भावोपर विचार करते करते मुझे मालूम होने लगा कि मै इस पृथ्वीको छोड़कर आकाशमे उड़ता चला जा रहा हूं। आकाशमे जाकर मेरा आकार इतना वढ़ गया कि मै एकही वार अनेक नक्षत्रोंके पास पहुंच सकता था। जिस समय मैं इस विशालताके साथ अपनी तुलना करने वैठा तो मै लाख वार खोजकर भी अपने अस्तित्वका पता नहीं लगा सका।" इन पंक्तियोंके

पढ़नेसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि इस युवकने 'अहम्' का आंशिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसी तत्वका अनुभव करके महाकवि कीट्सने कहा था :— "I feel more and more every day, as my imagination strengthens that I do not live in this world alone but in a thousand worlds"—जिस प्रकार मेरी कल्पना शक्ति प्रतिदिन बढ़ती जाती है उसी प्रकार दिन प्रतिदिन मेरे हृदयमे यह भाव और भी विशेष प्रकारसे जागृत होता जा रहा है कि मैं केवलमात्र एक इसी संसारका जीव नहीं हूं वल्कि और भी अनेक सहस्रों संसारका जीव हूं। एक मसल प्रचलित है कि 'जो ब्रह्माण्डमे है वही पिण्डमे है' इस कहावतका तात्पर्य यही है कि 'अहम्' सर्वव्यापक है।

हम सामान्य जीव नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम लोगोंके ज्ञान, प्रेम और सामर्थ्यका बोध है। जो कुछ हम जानते हैं, उतनेसे हम किसी भी प्रकार सन्तुष्ट नहीं हैं। हम उससे भी अधिक जाननेके लिये सदा उत्कंठित रहते है। नूतन ज्ञानकी प्राप्तिके लिये हम जितनी ही अधिक चिन्ता करते है उतनी ही अधिक हमारी चिन्ता और बढ़ती जाती है। एक बातको हम सोचने लगते हैं तो अनेक भाव हृदयमे जागृत हो उठते है। एक बात कहने लगते हैं तो अनेक ऐसे भाव उदित हो जाते हैं जिनकी कभी हमने कल्पना तक नहीं की थी। इसी रहस्यका उद्घाटन करके राबर्ट ब्राउनिंगने लिखा था:—

Truth is within ourselves, it takes no rise

From outward things, whateer you may believe;
There is an inmost centre in us all,
When Truth abides in fulness; and around
Wall upon wall, the gross flesh hems it in,
This perfect, clear conception—which is Truth,
A baffling and perverting carnal mesh
Blinds it and makes all error and 'to know'
Rather consists in opening out a way
Whence the imprisoned splendour may escape,
Than in effecting entry for a light
Supposed to be Without. Watch narrowly
The demonstration of a truth, its birth,
And you trace back the effluence to its spring
And source within us, where broods radiance vast
To be elicited ray by ray as chance shall favour.

अर्थात् सत्य हमारे अन्तस्तलमें वर्तमान है। चाहे हमारी कुछ भी धारणा क्यों न हो, पर इसकी उत्पत्ति किसी बहिरंग पदार्थसे नहीं होती। हम लोगोंके अन्तस्तलमें सत्यकी अनवरत धारा बहती रहती है। इस रक्त-मज्जामय शरीरने एक सुदृढ़ और सुकाय दुर्गकी भांति उसे चारों ओरसे घेर रखा है। इस प्रकार शरीर रूपी यह मायाजाल अपने अन्तर्गत सत्य ज्ञानको बांधकर अनेक प्रकारका भ्रमोत्पादन करता है। सत्ज्ञान

प्राप्तिके माने यह नहीं है कि बाहरके किसी तरहके प्रकाशसे अन्तरात्मामें स्थित जो गाढ़ अन्धकार है उसका नाश करना। अन्तरात्मामें तो अन्धकार है ही नहीं। वह तो सदासे प्रकाशित है। ज्ञानरूपी ज्योतिका उसमें निवास है। सत्ज्ञानोपार्जनका अभिप्राय यह है कि जो स्थूल दीवाल अन्तर्ज्ञानको बांधकर उसे बाहर नहीं आने देती उसीको तोड़कर सत्ज्ञानके दिव्य प्रकाशको भीतरसे बाहर लाना और वाह्येन्द्रियोंको आलोकित करना। जहां जहां सत्य प्रगटित हो, उसको उत्पत्ति जब-जब हो उन अवसरोंको एकान्त पर्यालोचनासे विदित हो जायगा कि हमारे अन्तस्तलमें प्रभूत ज्योतिका खजाना है और उसी खजानेसे इसकी प्रत्येक किरणें धीरे धीरे इस तरफ बढ़ती हैं।"

पंचकोषने आत्माको घेरकर बांध रखा है और उसीसे अनेक अनर्थोंकी उत्पत्ति है। उस पञ्चकोषका नाश कर देनेपर ही आत्माको पूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है। महाकवि एमर्सनने लिखा है :—

"With each divine impulse the mind rends the thin rinds of the visible and finite and comes out into infinity" अर्थात् दिव्य भावके प्रत्येक उच्छ्वासमें मन दृष्टिके विषयीभूत ससीमका नाश करता है और असीम बनता जाता है।

ज्ञानके श्रोतकी भांति हमारे अन्तस्तलमें प्रेमका भी एक असीम श्रोत वहता रहता है। जितनाही हम प्रेम करते हैं, प्रेम करनेकी चाह उतनीही बढ़ती जाती है। आज तक कोई न कह सका कि

हम प्रेमकी अन्तिम सीमा तक पहुंच सके। हम लोगोंके अन्तस्तलमें प्रेमका जो अगाध सागर वह रहा है, बहुत खोजनेपर भी हमे उसका किनारा नहीं मिलता। प्रेमी जितनाही खिंचता जाता है, प्रेमकी उतनी ही वृद्धि होती है। प्रेमको अनन्तताका यही लक्षण है। इसी प्रसंगको लेकर महाकवि शेलीने लिखा है:—

"If you divide suffering or dross, you may
Diminish till it is consumed away,
If you divide pleasure and love and thought,
Each part exceeds the whole'

"यदि तुम किसी प्रकार शोक और दुःखको खण्डशः कर सको तो कम होते होते उसका किसी न किसी दिन नाश अवश्य हो जायगा, पर आनन्द, प्रेम और चिन्ताका यदि टुकड़ा कर डालो तो उलटा ही परिणाम होगा, अर्थात् प्रत्येक भाग सम्पूर्ण से भी वढ़ जायगा।"

पहले पहल साधारण दृष्टिसे प्रेम करना आरम्भ करो। तुम देखोगे कि प्रेमकी माला बढ़ती जा रही है, और प्रेमी तुम्हारे दृष्टिपथपर अधिकाधिक आरूढ़ होता चला जा रहा है। इस प्रकार तुम्हारे मूल प्रेमकी वृद्धि होगी। अब प्रेमी तुमसे जितना ही दूर रहना चाहेगा तुम्हारा अनुराग उसके प्रति उतनाही वढ़ता जायगा। यही बात ज्ञानके संबन्धमे भी है। इसके द्वाराही ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेनके जीवन वेदके विचित्रगणितकी सत्यता प्रगट होती है। उनका कथन था:—तीनमेसे सात गया वाकी बचा दस।"

सामर्थ्य संबन्धके विषयमें भी यही बात सत्य देखनेमें आती है। जितनाही आचरण किया जाता है उतना ही अधिक उत्कण्ठा उत्पन्न होती है कि और भी नई क्रिया कर सकता। पृथ्वी इतनी वृद्धा हो गई है तोभी प्रत्येक क्रियाके आरम्भमें वह सदा नई नवेली प्रतीत होती है। इसे देखकर कवि टेनिसनने कहा था :—

"We are ancients of the earth
And in the morning of the times"

अर्थात हमलोग इस पृथ्वीसे कहीं अधिक प्राचीन हैं पर युग युगान्तररूपी जो समय है उसका अभी प्रभात हुआ है।

वैज्ञानिक खोज द्वारा नई नई वस्तुओंका जितना ही अधिक पता लगता जाता है, मनमें उतनाही अधिक दृढ विश्वास जमता जारहा है कि और भी अनेक नई वस्तुओंका भण्डार भूगर्भमें संचित है और जितना ही खोज किया जायगा उतनाही पता लगता जायगा। सातो, डूमो, मारकनी, एडिसन, बरबक, सर जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय आदि महापुरुष क्रिया सागरमें जितना अधिक डुबकी लगा सके है, जितनी गहराईमें प्रविष्ट हो सके है उतना ही बहुमूल्य रत्न निकालकर प्रगट कर सके है। इस तरहसे प्राप्त अनेकों रत्न देखे फिर भी सन्तोष नहीं होता और मनमें यही भाव उठता है कि अभीतक तो आरम्भ भी नहीं हो सका है और दृष्टिकी भी यही हालत है। जिस किसी पदार्थपर दृष्टिपात करते हैं मन उसीमें मुग्ध हो जाता है। आंखें उसीमें गड़ जाती हैं, तृप्ति नहीं होती। आकाशमें स्थित तारकागणको

देखकर तथा इस अवनीतलकी शोभाकी नाना विध वस्तुओंकी रमणीयता देखकर मनमें यही भाव उठता है कि यदि हमारे हजार और लाख आंखें होतीं तभी शायद मैं इस अवर्णनीय सौन्दर्य-को देख कर तृप्त हो सकता था। क्षितिज (जहां आकाश और पृथ्वी मिलते दिखाई देते हैं) पर आकाश अटल आसन जमा कर डट जाता है और दृष्टिपथको अवरुन्धन कर देता है। इस समय मनमें यही इच्छा होती है कि इस व्यविधानको लेकर फेंक दूं और इसके आगे क्या है उसको भी इन आंखोंसे देख-लूं। जिस समय ज्ञानकी चर्चा होने लगती है और मन उसमें लीन हो जाता है उस समय हृदयमें यही भाव उत्पन्न होते हैं कि ईश्वरने हमें एक ही मस्तिष्क क्यों दिया। हमें शत और सहस्र मस्तिष्क क्यों नहीं दिया। हम उसी अनन्त महा पुरुषके सन्तान हैं जिसके हजार सिर हैं, हजार आखें हैं और हजार ही पाद हैं। हम लोगोंकी मानसिक वृत्ति और शारी-रिक वृत्ति इस अवनीतल पर एक प्रकारका वन्धन प्रतीत करती है। इस पृथ्वीतल पर हम लोगोंकी वृत्तियां अवाधित रूपसे विस्तार नहीं पातीं। मनमें उठता है कि हम सागरके जीव किसी देहाती कुएंमे लाकर रख दिये गये हैं। देश और काल-के सम्बन्धमें हमारा मन दूरातिदूरतक सम्बन्ध रखना चाहता है, उसीमें वह अपनी तुष्टि मानता है। अतीतमें तुम अपने मनको जितनी दूर चाहो ले जाव, हजारों शताब्दियोंकी बीती घटना-पर दृष्टिपात करो, पर तुम देखोगे कि इतनेसे ही तुम्हें सन्तोष

नहीं होगा, तुम्हारी दृष्टि और भी आगे बढ़ना चाहेगी। यही बात भविष्यके लिये भी सच है। भविष्यके सहस्रों वर्षको कल्पना कर डालो पर तुम्हें सन्तोष नहीं होगा। चाहे किधर ही देखो सन्तोष नहीं है। इसीलिये दिशाविदिशाओमें व्याप्त महासागरका अगाध विस्तार देखकर हमारा प्राण उलट पड़ता है। इसी अतृप्तिका अनुभव कर महाकवि देशबन्धु चित्तरंजन दासने समुद्रको सम्बोधन करके अपनी सागर कथामे कहा है :—

ए पार ऊ पार करि, परि ना त आर।
आज मोरे लये जाऊ अपारे तोमार।
पराण भासिया गेछे कूल नाहि पाई,
तोमार अकूल विना, कोथा तार ठॉई।

हम न तो इस पार ही रहना चाहते है ओर न उस पार ही पहुंचना चाहते है। हमारा ध्यान सदा अपार और अकूलपर रहता है। हमारी एक तरफ तो भविष्यका अगाध सागर तरङ्गे मार रहा है और दूसरी तरफ अतीतका अगाध सागर हिलोरें ले रहा है। इसीमे हम सन्तुष्ट है, इससे कममे हमारी तृप्ति नहीं। इसी भावको हृदयङ्गम करके महाकवि कार्लाइलने लिखा था:—

"Man is a visible mystery walking between two eternities and two infinitudes." मनुष्य-जीवन एक दृश्यमान एमनशील रहस्यमय पदार्थ है जो दो अनन्त देश और काल के बीच भ्रमण करता है। एमनशील अर्थात् जन्मसे लेकर

मृत्यु पर्यन्त चलता रहता है। सब कोई देखते हैं पर कोई भी इसके मर्मको नहीं बूझ सका हैं। इसीको दृश्यमान रहस्य कहते हैं। इसीको लेकर भगवान श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है:—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत

अव्यक्तनिधनान्येव ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! न तो इसका आदि दृष्टिगोचर होता है और न इसका अन्त। इस जगतके इस अनन्त प्रसारके बीच किसीने न जाने कौन वाधा उपस्थित कर दी है। जिस समय हम इस वाधासे मुक्ति लाभ कर लेंगे उसी समय हमे अपने असली रूपका ज्ञान मिलेगा। यह वाधा उसी समय दूर हो जायगी जिस समय हमारे शरीरसे आत्मबुद्धि अपना प्रतिष्ठान कर लेगी। इसी प्रसङ्गको लेकर अष्टावक्र संहितामे लिखा है:—

यदि देहं पृथक् कृत्वा चिंदि विश्राम्य तिष्ठसि ।

अधुनैव सुखी शान्तो वन्धमुक्तो भविष्यसि ॥

अर्थात् यदि देहको पृथक् करके 'चित्' में विश्राम कर सकोगे उसी समय सुखी, शान्त तथा वन्धनसे मुक्त हो जाओगे।"

'चित्' का प्राकृतिक धर्म असीमत्व है अर्थात् वह सीमा रहित है। इसी असीमत्वको देखकर तत्वज्ञानी हेगलने कहा था:—It is speeking rightly the very essence of thought to be infinite. The nominal explanation of calling a thing finite is that it has an end, that

it exists up to a certain point only, where it comes into contact with and is limited by its other. The finite therefore subsists in reference to its other, which is its negation and presents itself as its limit. Now thought is always at its own sphere, its relations are with itself and it is its own object. In having a thought for object I am at home with myself. The thinking power, the "I" is therefore infinite, because when it thinks, it is in relation to an object which is itself. Generally speaking, an object means a something else, a negative confronting me. But in the case where thought thinks itself, it has an object which is at the same time no object, in other words its objectivity is suppressed and transformed into an idea Thought, as thought, therefore in its unmixed nature involves no limits, it is finite only when it keeps to limited categories which it believes to be ultimate."

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो प्रतीत होगा कि 'चित्' का मूल धर्म ही असीमत्व है, अर्थात् वह सीमा रहित है। यदि किसी पदार्थके विषयमे यह कहा जाय कि यह सीमित है तो

इसके माने यह हुआ कि इसका अन्त है अर्थात् किसी निर्दि
सीमा तक तो इसकी गति है, फिर इसके बाद दूसरी वस्तुक
आरम्भ हो जाता है। इससे यह अभिप्राय निकला कि सीमित
वस्तुका किसी अन्य वस्तुसे संबन्ध है, जो इसको सीमाबद्ध कर
ती है और इसके अस्तित्वको और आगे नहीं बढ़ने देती। पर
'चित्' सदा अपने ही लोकमें निवास करता है। उसका किस
अन्य पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है। 'चित्' की चिन्ताका विषय
भी 'चित्त' ही है। ऐसी दशामें हम अपनेहीमें स्थित हैं। इस
लिये चित् शक्ति अर्थात् 'अहम्' अनन्त और असीम है, क्योंकि
किसी अन्य पदार्थ द्वारा उसकी सीमा बद्ध नहीं है। साधारणत:
चिन्ताके विषयकी चर्चा करनेसे हृदयमें किसी भिन्न वस्तुका
बोध होता है जो 'अहम्' से भिन्न है। इसलिये 'चित्' ससीम
अन्तात्मकी चिन्तामें व्यस्त रहनेपर ससीम प्रतिभासित होता है.
पर जो 'चित्' अनात्मके सम्बन्धसे मुक्त हो गया है यह असीम है।

महर्षि याज्ञवल्कने अपनी धर्मपत्नी ब्रह्मवादिनी मैत्रेयीको
इसी आत्मतत्वका उपदेश दिया था :—

"यत्र हि द्वैतमिति भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्राति, तदितर इतरं रसयते तदितर इतरमभिवदाति तादितर इतरं शृणोति। तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं स्पृशाति तादितर इतरं विजानाति यत्र तस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत् केन कम् पश्येत्, केन कं जिघ्रेत्तत् केन कं रसयेत्तत् केन कमभिवदेत्तत् केन कं शृणुयात्तत्

केन कं मन्वीत तत् केन क स्पृशेत्तत् केन कं विजानीयाद् येनेद सर्व विजानाति तम् केन विजानीयात् ?”

“जहांपर द्वैत भाव रहता है वहां एक दूसरेको देखता है, एक दूसरेको सूंघता है, एक दूसरेका रस लेता है, एक दूसरेसे बातें करता है, एक दूसरेकी सुनता है, एक दूसरेका मनन करता है, एक दूसरेका स्पर्श करता है और एक दूसरेका ज्ञान लाभ करता है। पर जिस स्थलपर सभी आत्मभूत हो गया है आत्मासे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं रह गई है, वहांपर कौन किसका दर्शन करेगा, कौन किसको सूंघेगा, कौन किसका आस्वादन करेगा, कौन किसके साथ वार्तालाप करेगा, कौन किसकी बात सुनेगा और कौन किसको जानेगा ? जिसके द्वारा इन सबकी ज्ञानप्राप्ति हो सकती है, उसको हम किस उपायसे जान सकते हैं ?”

जिसने निर्जन वनमें एकान्त निवास करके कुछ ज्ञान लाभ किया है, वही जान सकता है कि समय समयपर हम अपने निज शरीरको एव अपने चारों ओर व्याप्त इस विश्वमण्डलको भूल सकते हैं। कुछ समय तक स्थिर समाधि लगानेके बाद पहले तो बाह्य संसारका फिर उसके बाद अपने अङ्ग प्रत्यग—हाथ पैर आदि—का ज्ञान मनुष्य भूल जाता है। इसके बाद धीरे धीरे चिन्ताका प्रवाह रुक जाता है—द्वैतका भाव मिट जाता है और आत्मासे परे कोई वस्तु नहीं रह जाती। इसी अवस्थाका स्मरण करके देवर्षि नारदने व्यासदेवसे कहा था :—

नापश्यदुभयं मुने ! हे ऋषिदेव ! उस समय दोनों मेरी स्मृतिपथमें न आये।" जब समस्त वस्तुओंका ज्ञान मिट जाता हैं तब एक अनिर्वचनीय भावका उदय होता है। यह भाव ठीक उसी तरहका होता है जैसा ससीमके त्यागके बाद असीमका भाव उदय होनेपर होता है। जिस समय मनुष्य इस तरहके भावसे आविष्ट होता हैं उस समय वह यदि विदेह न होकर (अर्थात् शरीरकी स्मृति न भूलकर) अपना भाव व्यक्त कर सकता तो आनन्दमें उत्फुल्ल होकर वह भी विवेक चूड़ामणिके शब्दोको सानन्द दोहराता कि :—

क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लीनमिदं जगत्
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदुत्तमम्

यह संसार कहां गया, इसे कौन उठा ले गया, इसे कहां गायब कर दिया। मैंने इसे अभी यहीं देखा था पर एक क्षणमें ही वह कहां चला गया। बड़े ही आश्चर्यकी बात है।

बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्तिः
ब्रह्मात्मनो एकतयाधिगत्या
इदम् न जानेऽप्यमिदं न जाने
किम्वा कियद्वा सुखमस्य पारम् ।

ब्रह्म और आत्माका एकत्व ज्ञान प्राप्त करके हमारी बुद्धि नष्ट भ्रष्ट हो गई और मेरे चित्तकी प्रवृत्तियां जीर्ण तथा शीर्ण हो गई। न तो अब मुझे इस विश्वका ज्ञान रह गया है और न इसके

परे क्या है इसका ही ज्ञान रह गया है। और न तो इसका मुझे कोई ज्ञान है, कि इसमे क्या दुःख है तथा उसमे क्या सुख है।

वाचा वक्तुमशक्यमेव मनमा गन्तुं न वास्वा द्यते

स्वानन्दामृत पूर पूरित परब्रह्माम्बुधेवैंभवम्

अम्भोराशि विशीर्ण वार्षिक शिलाभाव भजन्मे मनो

यस्यांशाशलवे विलीनमधुनानन्दात्मना निर्वृतम्

अर्थात् जिस प्रकार जल राशिमें वर्षाकालीन शिला गिरकर उसी जलराशिमें गायव हो जाती है, उसी प्रकार मेरा मन भी उसीके अनुरूप सागरके अंशांश कणके वीचमें विलीन होकर परमानन्दको प्राप्त हो गया है। उस ब्रह्मसागरमें विलीन हो जानेसे जो आनन्दकी अनुभूति प्राप्त होती है, उसका न तो हम वर्णन कर सकते हैं न उसके वारेमें सोच ही सकते है और न उस आनन्दका आभास ही प्राप्त कर सकते है।

आनन्दमें समस्त एकाकार हो गई है। वास्तवमे जिस समय चित्तकी तन्त्रियां इस प्रकारके भावकी तरंगोंमे वोल उठती है और शरीर, मन वुद्धि तथा चराचर विश्व ये सम्पूर्ण जिस आनन्द तरंगमे डूव जाते है उसकी तुलना इस संसारमे कही नहीं प्राप्त है। पर जव तक शरीर और मनके भिन्न अस्तित्वका ज्ञान मनुष्यके चित्तमें वर्तमान रहता है उस समय शरीरके प्रत्येक अंगको कष्टका अनुभव होता है। वह अनुभव ठीक उसी प्रकारका होता है जिस प्रकारका दुःख उस पक्षीको होता है जो

एक बार मुक्त हो जानेके बाद फिर पकड़कर उसी पिंजरेमें ठूस दिया जाता है। महाकवि वर्डस्वर्थने प्रकृतिकी अनन्त रचनाकी शोभा देखते देखते तथा सम्राट् टेनिसनने 'अहम्' का नाम जपते जपते इसी ज्ञानकी उपलब्धि की थी। महाकवि वर्डस्वर्थने नदी तीरकी शोभामें निमग्न होकर जिस भावका ज्ञान प्राप्त किया था उसका वर्णन उन्होंने यों किया है :--

That blessed mood
In which the burthen of the mystery
In which the heavy and the weary weight
Of all this unintelligible world
Is lightened:—that serene and blessed mood,
In which the affections gently lead us on—
Until the breath of this corporeal frame
And even the motion of your human blood
Almost suspended, we are laid asleep
In body and become a living soul.

वह सुखमय भाव— जिसकी अभिव्यक्तिसे विश्वके रहस्यके उद्धार करनेका भाव और इस दुर्बोध्य पृथ्वीके अगोचर सार तत्वके समझनेका बोझ हल्का हो जाता है, वह मधुर और दिव्य भाव जिसमे हृदयकी मधुर स्नेहमयी वृत्तियां धीरे धीरे उस अवस्थाको पहुंचती है कि हमलोगोंके शरीरकी गति, यहां तक कि रुधिरका प्रस्रवण भी रुक जाता है, हमलोगोंको अपने शरी-

रकी सुध बुध नहीं रह जाती और आत्मा जागृत हो उठती है।'
इसी प्रसंगको लेकर कवि सम्राट् टेनिसनने कहा था:—

More than once when I
Sat all alone, revolving in myself,
The word that is the symbol of myself,
The mortal limit of them Self was loosed,
And passed into the Nameless, as a cloud.
Melts into Heaven I touched my limbs, the limbs
Were strange, not mine — and yet no shade of doubt
But utter clearness, and this loss of Self,
The gain of such large life as match'd with ours
were Sun to spark—unshadowable in words,
Themselves but shadows of a shadow-world.

ऐसा अनेक वार हुआ है कि जिस समय एकान्तमें बैठा आत्मतत्वकी चिन्ता कर रहा था मुझे प्रतीत हुआ कि मेरी आत्मा शारीरिक बन्धनसे छूट गई और जिस प्रकार अनन्त मेघराशि सहसा आकाशमें विलीन हो जाती है, उसी तरह मेरा आत्मतत्व भी नामातीतमें विलीन हो गया। उस समय जब मैंने अपने अंगोंका स्पर्श किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि ये अंग मेरे नहीं बल्कि अन्यके हैं। पर उसमें सन्देहका लेशमात्र भी नहीं था, क्योंकि सम्पूर्ण परिष्कृत दिखाई दे रहा था। मेरा आत्मतत्व इतना विस्तृतरूप धारणकर गया था कि इस जीवनके साथ उसकी

तुलना करना सूर्यको दीपक दिखाना था। वह भाव समीचीन रूपेण शब्दोंमें भी नहीं प्रगट किया जा सकता, क्योंकि शब्द भी तो इस पृथ्वीके छायामात्र हैं। इसी विषयको लेकर योगवाशिष्ठमें महर्षि वशिष्ठने कहा है—

अयमेवाहमित्यस्मिन् सकोंचे विलयं गते
समस्तभुवनव्यापी विस्तार उपजायते।

यह शरीर मेरा है, मैं इस शरीरका अधिपति हूं, इस तरहके भाव हृदयसे उठ जाने पर समस्त विश्वव्यापी विस्तारकी उपलब्धि होती है।

इसी भावके आवेशमें आकर कवि शशांक मोहन आनन्दसे उत्फुल होकर अलापते थे।

इसीको आत्म प्रतिष्ठा कहते हैं और यही परम प्रभु सच्चिदानन्दकी प्रतिष्ठाका आभास है।

पूर्ण और अपूर्ण मैं ही हूं

—०—०—

आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, 'अहम्' नहीं है । आत्मा विश्वव्यापी और विराट है, 'अहम्' संकीर्ण और ग्रन्थिवद्ध है । आत्मा रक्त-मांससे परे है और विश्वको निर्माण करने वाली जो विधियां है उसमें रमण करता है, 'अहम्' रक्त-मांसके पिण्डसे बना है और इसी विश्वका जीव है । आत्मा हमारा तुम्हारा और समग्र संसारका कल्याण एक समझती है 'अहम्' एक ही कुटुम्बमे अनेक प्रकारके भेद भावका लक्ष्य करता है । परमहंस श्रीरामकृष्णके शब्दोंमे जो आत्मा अपनेहीमे पूर्णता और अपूर्णता देखती है, उसीके लिये कहा है :—

एकोऽवर्णो वहुधाशक्तियोगाद्वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति

अर्थात् आत्मा एक है और वर्णहीन है पर आवश्यकताके अनुसार विविध प्रकारकी शक्तियोंके योगसे अनेक वर्ण धारण करती है ।

यह ब्रह्माण्ड एक विचित्र क्रीडास्थल है । इसका विधाता भी उस लीलाका विचित्र पात्र है। वह इस पृथ्वी तलमें प्राणी मात्रमें एक शक्ति और एक ही प्रवाह देखता है । विज्ञान द्वारा भी यही सत्य प्रमाणित हुआ है । किसी बड़े भारी विद्वानका मत है :— जिस प्रकार ऊपरकी ओर फेका हुआ ढेला पृथ्वीकी तरफ खिंच जाता है उसी प्रकार चन्द्रमा भी पृथ्वीकी ओर आकृष्ट होते हैं ।

सूर्यकी रश्मियोंके विश्लेषणसे जिन पदार्थोंको प्रकाश मिलाता है वे धातु और वाष्प सभी इस भूतलमें विद्यमान हैं और सूर्यमें भी वे सब धातुयें विद्यमान है। ऐसी कौनसी शक्ति है जो अति-दूरवर्ती और स्थिर नक्षत्रोंके समूहको, शुक्लवर्ण तथा धूम्रवर्ण धूम्रकेतुको भी वही प्रकाशित करती है। हमारे सूर्य जगतके नक्षत्र गण जिन नियमोंके वशवर्ती हैं उसी प्रकार सूक्ष्म पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि प्रकाशके खजाना दोनों नक्षत्रगण भी एक दूसरे-को आकृष्ट करते हुए उसी नियमके वशवर्ती है। इससे हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि इस पृथ्वी-तलपर हम जिस एकताका अनुभव करते हैं उसका आभास इस भूतलसे भिन्न स्थानपर भी गोचर है। विज्ञानने अनुसन्धान द्वारा यही बात सिद्ध कर दिखलाई है कि कोई भी वस्तु—चाहे वह इन्द्रिययुक्त हो वा इन्द्रियहीन हो, जीव सहित हो या जीव रहित हो, चाहे वह उद्भिज जगतका जीव हो या चेतन जगतका, ज्ञानभूमिमें उत्पन्न हो अथवा नीति भूमिमे, इस अवनीतलपर उत्पन्न हो अथवा उस विस्मय तथा आनन्दमे अधिष्ठित जीव हो जो ज्योतिष्क-मण्डलवृन्दमे देखनेमें आता—सदा और सर्वदा इस अज्ञात और कल्पनातीत जीवनमे शक्तिकी लीलामें संगत, समंजसीभूत और एक है। पश्चिम देशके वैज्ञनिकोने खोजकर निकाला है कि:—गर्मी, प्रकाश, बिजली और आकर्षक धातु ये सभी एक ही शक्तिके विविधि रूप है। विज्ञानाचार्य सर जगदीश-चन्द्र बोस महाशयने अनेक वैज्ञानिक क्रियाओ द्वारा यह

सिद्ध कर दिखलाया है कि इस पृथ्वी तलके अनेक सजीव और निर्जीव पदार्थ एक ही प्रकारकी शक्ति द्वारा सञ्चालित है और एक ही प्रकारकी क्रियामे रत हैं। अनेक प्रकारके प्रयोगों द्वारा वोस महोदयने यह सिद्ध कर दिखाया है कि आघात प्रतिघात, सुषुप्ति और वेहोशी तथा जरा मरणके रक्त-मज्जा निर्मित मानव शरीर पर जो लक्षण देखनेमे आते है वे ही उद्भिज पदार्थों पर भी देखनेमें आते है।

अनेक प्रकारकी क्रियाओं द्वारा प्रकृत विज्ञान जिन सिद्धान्तों-की सत्यता प्रमाणित करता आ रहा है कवि सम्राट् टेनिसने उन्ही सिद्धान्तोंका ज्ञान किसी टूटे फूटे किलेमे विकसित एक पुष्पके द्वारा प्राप्त करके कहा थाः—

"सुमन यदि मै तेरी प्रतिभाका ज्ञान प्राप्त कर सकता तो मुझे यह सहजमे ही उद्भासित हो जाता कि मनुष्य और ईश्वर क्या पदार्थ है।"

अर्थात् एक साधारण पुष्पकी सत्ताका ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वह विश्वकी सत्ताका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेते। इससे विदित हुआ कि दोनोकी सत्ता एक है। महात्मा टालस्टाय अपनी जीवन गाथा लिखते लिखते एक स्थान पर लिख गये हैं:—

"I was all alone and it seemed to me that mysterious, majestic Nature, the attractive bright disc of the moon, which had for some reason

stopped in-one undefined spot in the pale blue sky, and yet stood everywhere and as it were filled all the immeasurable space and myself, insignificant worm, defiled already by all pretty wretched human passions, but with all immeasurable mighty power of love, it seemed to me in those minutes that nature and the moon and I were one and the same"

अर्थात् मैं एकान्तमें बैठा था। मुझे प्रतीत हुआ कि रहस्यमयी महिमान्विता प्रकृति देवी तथा उज्ज्वल चन्द्रमाका बिम्ब—जो किसी अनिर्वचनीय कारणवश नीलाकाशके एक प्रान्तमे ठिठक गया है तोभी सर्वत्र व्याप रहा है और अगणित देशोंको अपनी रश्मियोंसे प्रकाशित कर रहा है और मैं इस पृथ्वीका एक तुच्छ जीव, संसारके सभी प्रकारके कलुषित विचारोंके वशीभूत पर प्रेमके अनिर्विण्ण स्रोतमे निमग्न मुझे उस समय यही प्रतीत होता था कि यह पृथ्वी, यह चन्द्रमा और मै एक ही स्थानके जीव हैं। इनमें और मुझमें कोई भेद नही है।

अध्यात्म विज्ञानके प्रभावसे महर्षियोंने इसी रहस्यका उद्घाटन किया था। यही कारण है कि इस वर्णहीन भूमि ही "पूर्ण मै हू" का कर्मक्षेत्र है। "मै अपूर्ण हू" यह भाव सर्वत्र पार्थक्यका अनुभव करके अपने क्षुद्र शरीरको ही कर्मकेन्द्र मान लेती है। हमारी 'अपूर्णता' में 'अहम्' का भाव

भरा है। पर पूर्णताका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर 'अहम्' का भाव विलीन हो जाता है और उस सच्चिदानन्दकी व्यापकताका बोध होता है। इससे यह निश्चय हुआ कि हमारी पूर्णता कर्मयोगमें और अपूर्णता कर्मभोगमें है। जब तक हम कर्मभोगी रहते हैं अपूर्ण रहते हैं। और जब हम कर्मयोगमें निष्ठित होते हैं कर्मयोगी बन जाते हैं।

मनुष्य असीम शक्ति प्राप्त कर लेनेपर भी 'अहम्' रूपी शब्द-के फेरमें पड़कर 'अहम् महीयान्' के भावको व्यक्त करनेमें अपनी प्राकृत महत्ता भी खो बैठता है।

दक्ष प्रजापतिके यज्ञकी पौराणिक कथा इसी सिद्धान्तको पुष्ट करती है। अशेष गुणोसे युक्त होकर भी दक्ष सर्वेश शिवकी महत्ताको भूल गये और उनको नीचा दिखानेके लिये अपने "अहम् महीयान्" के भावको व्यक्त करने लगे। परिणाम यह हुआ कि उनका घोर पतन हुआ, जो यज्ञकुण्ड उन्होंने यज्ञपदार्थोंकी आहुतिके लिये बनाया था उसमें उन्हींकी आहुति दे दी गई। दक्ष इतने कार्यकुशल थे कि वे वास्तवमें दक्ष नामको चरितार्थ करते थे। उनके सोलह कन्यायें थीं। उनमेसे तेरह कन्यायें धर्मको, एक अग्निको, एक संयत पितृगणको, और एक संसारके कष्टनिवारक, कल्याण कारक शिवको प्रदान किया। जिन त्रयोदश कन्याओको उन्होंने धर्मको पत्नीत्व रूपसे दिया उनका नाम था—श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री तथा मूर्ति। इन त्रयोदश कन्यायोके निम्न लिखित पुत्र

उत्पन्न हुए :—श्रद्धाको शुभ, मैत्रीको प्रसाद, दयाको अभय, शान्तिको सुख, तुष्टिको हर्ष, पुष्टिको स्मर, क्रियाको योग, उन्नतिको दर्प, बुद्धिको अर्थ, मेधाको स्मृति, तितिक्षाको मंगल, ह्रीको विनय और सर्वगुण सम्पन्ना मूर्त्तिसे नरनारायण नामके दो ऋषिकुमार उत्पन्न हुए।

पुष्टिसे स्मरकी उत्पत्ति हुई। इससे प्रगट होता है कि पुष्टि प्राप्त होनेसे ही एक अनिर्वचनीय आनन्दकी उपलब्धि होती है। 'स्मर' शब्द 'स्मि' धातुसे बना है। इसका शब्दार्थ है मुस्कराना। असीम उन्नति हो जाने पर जो एक तरहका घमण्ड दृष्टिगोचर होने लगता है वह भी धर्मका सगा भाई है। इसलिये दर्पको पापसे परिवेष्टित नहीं मानना चाहिये। बुद्धिसे अर्थका उद्भव है अर्थात् अभीष्ट पदार्थकी सिद्धि बुद्धि द्वारा ही होती है। मूर्तिसे अभिप्राय प्रकृतिके प्रतिरूपसे है। इसीमें सत्व, रज और तमोगुणकी लीला होती है और यही कारण है कि मूर्तिको सर्व गुणोत्पत्ति स्वरूपा कहते हैं, तथा नेत्रोंमें धर्म रूपी अंजन लगाकर इसकी उपासना करनेसे विदित होता है कि नर और नारायण परस्पर किस तरह आवद्ध हैं। इस प्रगट विश्वमें अर्थात् इस संसारमें प्रकृतिका जो रूप हम देखते हैं भगवानका जो दिव्य प्रकाश है—उसीको हम नारायण संज्ञा देते हैं। नर और नारायणका सौहार्द अर्थात् नारायण नरके मंगलका किस प्रकार विधायक हैं इस त्रिगुणात्मकका इस विश्वके अनुष्ठानमें प्रत्यक्ष रूपसे चिन्तन करनेसे चित्र उद्भासित हो उठता है।

यहांतक तो हम यह देखते रहे कि धार्मिक पुरुष श्रद्धा, मैत्री आदि तेरह कन्याओंकी उपासना द्वारा क्या क्या प्राप्त कर सकता है।

दक्षने स्वाहा नामकी अपनी कन्याको अग्निको दिया, क्योंकि शास्त्रोका विधान है कि संसारी गृहस्थको देवताकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ अवश्य करना चाहिये। 'हवन' की आहुति देते समय 'स्वाहा' मन्त्रका उच्चारण करना पड़ता है।

स्वधा नामकी कन्याको उन्होंने पितृगणोंको दिया। इसके द्वारा संसारी जीव तर्पणादिकसे पितृगणोंको सन्तुष्ट करके निश्चिन्त होते है।

पन्द्रह कन्याओके बाद सबसे छोटी सोलहवीं कन्याका जन्म हुआ। श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा ही तथा मूर्ति इन तेरह मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक शक्तियोके तथा इनके फल स्वरूप उन सब गुणोकी प्राप्ति हो जानेपर मनुष्य स्वतः देवता तथा पितरोके प्रति श्रद्धायुक्त होकर श्राद्धादि करता है और कृतकृत्य होता है। इस प्रकारके उत्कृष्ट जीवन गठित होने पर सतीका जन्म होता है। समस्त ब्रह्माण्डके मूलमे जो शक्ति है, समस्त अनित्यको ढके हुए स्थित जो नित्य शक्ति, नित्य प्रति क्रीड़ा करती है और जो उत्पन्न करनेवाली, पालन करने वाली और अन्तमे संहार करने वाली आदि शक्ति है उसका ज्ञान मिलता है। जिन लोगोंने उस आदि शक्तिका ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे ही सृष्टि, स्थिति तथा लयकर्त्ताका

औषधालयके निमित्त एक लाख रुपयोंका दान कर दिया है, किसीने देशके कल्याणके निमित्त बड़ा प्रयास किया है। पर यम-राजके खजानची चित्रगुप्त महाशयने जिसकी रकमको जमाखाते न डालकर खर्च खाते डाल दिया है उसकी अवस्था ठीक दक्ष प्रजापतिकी सी है, क्योंकि वह भी 'अहम्' के फेरमे पड़कर भगवानकी श्रेष्ठताको भूलकर समस्त प्राणीमात्रको हीन समझ बैठा है।

प्राचिन इतिहासका मनन करनेसे यही भाव बोधगम्य होता है कि अनेक जातियां अनेक अंशोंमे उच्चतम और परिपूर्ण हो कर भी "अहम् की अपूर्णता" की प्रशंसामे इतनी व्यस्त हो गई कि अपना सर्वनाश कर डाला। यह देशही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्राचीन रोम और यूनान इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आज भी यूरोपमे इसी "अपूर्ण अहम्" की लीला पूर्णरूपसे चरितार्थ हो रही है। अभी थोड़े ही दिनोंकी बात है—अमरीका नगरमे अमरीकन जेम्स और निग्रो जातिके जैक जानसनका मल्लयुद्ध हुआ था। इस युद्धमे जैक जानसनने जेम्स जेफ्रिजको हरा दिया था। यह पराजय अमरीका निवासियोंके लिये असह्य था। नगर नगरमे अमरीकाके निवासी काले हवशियोंपर अनेक तरहके क्रूर अत्याचार करने लग गये थे। न्यू यार्क नगरमे तो उनका एक महल्लाही जला दिया गया था। इसी तरह अन्य अनेक स्थानों पर भी उन्हें इस प्रकारके अत्याचार सहने पड़े थे। पर इससे यह न समझना चाहिये कि हवशीलोग सर्वथा चुपचाप बैठे रह

अत्याचार सह रहे थे। उन लोगोंने भी कई स्थानोंपर अपनी पूर्ण अमानुषिकताका परिचय दिया। यदि "अपूर्ण अहम्" का यह ताण्डव नृत्य अधिक काल तक इसी प्रकार चलता जाय तो इसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। हमारे देशमे किक्करसिंह और कल्लू मियांकी जो कुश्ती हुई थी उसमें न तो हिन्दूओंने ही किक्करके जय लाभकी कामना की थी और न मुसलमानोंने ही कल्लूके जय लाभकी कामना की थी। परम परमेश्वर चिदानन्दकी प्रेरणासे इस देशके अधिवासीगण 'अपूर्ण अहम्' से मुक्त होगये है और यदि उसकी प्रेरणा रही तो इसी प्रकार मुक्त रहेंगे।

(५)

कर्मकेन्द्र

इस जगतमे भगवानका यही विधान है। वह 'अहम्' को सदा हीन और तुच्छ प्रमाणित करता रहता है। विश्वके रहस्यके मार्गको भली भांति जानने वाले महात्मा ईसाने कहा था:—जो अपनेको ऊंचा समझता है प्रभु उसे नीच और जो अपनेको नीच समझता है प्रभु उसे ऊंच बनाते है। 'अपूर्ण 'अहम्' सदा अपनी बड़ाई करनेमें प्रयत्नशील रहता है और यही कारण है कि वह सदा हीन बना रहता है। 'पूर्ण अहम्' समस्त विश्वको उच्च स्थान प्रदान करके केवल आप सबसे नीचे रह गया और यही कारण है कि भगवानने उसे उठाकर सबसे ऊपर बैठा दिया। यही 'पूर्ण अहम्' प्राकृत कर्मकेन्द्र है। जोसेफ म्याटसीनीने इसी 'पूर्ण अहम्' को कर्मकेन्द्रका प्राकृत अधिकारी मानकर कहा था:—

"Ask yourselves, as to every act you commit within the circle of family or country, 'If what I now do were done by and for all men would it be beneficial or injurious to Humanity?' And if your conscience tell you it would be injurious desist, desist even though it seem that an imme-

diate advantage to your country or family would be the result."

प्रत्येक कार्यके आरम्भ करनेके पूर्व, चाहे वह कार्य देशके लाभके लिये हो या अपने वंशके कल्याणार्थ हो, यह निश्चय करलो कि जो कुछ तुम करने जा रहे हो वह यदि समस्त प्राणी द्वारा सबके लिये ही किया जायगा तो उसका फल मानव समाजके लिये लाभदायक होगा या हानिकारक। यदि तुम्हारा विवेक कहता है कि इससे हानि होगी तो ठहर जावो। यदि अब उस कामके करनेसे प्रत्यक्षमे तुम्हारे देश या वंशका कुछ लाभ भी होता हो तो उसे मत करो। महात्मा लामिने (Lamennais) ने कहा था :—

"When each of you, loving all men as brothers, shall reciprocally act like brothers, when each of you seeking his own well-being in the well-being of all, shall identify his own life with the life of all, and his own interest with the interest of all; when each shall be ever ready to sacrifice himself for all the members of the Common Family, equally ready to sacrifice themselves for him, most of the evils which now weigh upon the human race will disappear, as the gathering vapours of the horizon on the rising of the sun; and the will of God

will be fulfilled. for it is His will that love shall gradually unite the scattered members of the Humanity and organize them into a single whole, so that Humanity may be one, even He as is one"

जब तुम लोग परस्पर भ्रातृभावसे प्रेरित होकर एक दूसरेके कल्याणके लिये आचरण करोगे, जब तुममेंसे प्रत्येक मानव जातिके कल्याणमें ही अपने कल्याणकी कामना करेगा, प्राणीमात्रके जीवनको अपना जीवन समझेगा, और अपने स्वार्थको उन्हींके स्वार्थमें मिला देगा, जब प्रत्येकव्यक्ति अपनेको एक महान् परिवारका अंग मानकर अपने जीवनको उस महान् परिवारके लिये उत्सर्ग करनेको तैयार रहेगा और या जब उस महान् परिवारके अन्य लोग भी उसी प्रकार उसके लिये उत्सर्ग करनेको तैयार रहेंगे, उस समय मानव समाजके अन्तर्गत अनेक प्रकारकी बुराईयोंका नाश हो जायगा मानो सूर्यके दिव्य प्रकाशने क्षितिजपर घिरे कुहरेके मंडलका नाश कर दिया है। उस समय ईश्वरकी प्रेरणाओं की पूर्ति होगी क्योंकि उसकी प्रेरणा है कि विच्छिन्न मानव समाज इसी प्रेमकी ग्रन्थिमें बंधकर एकीभूत हो जिससे उसके (ईश्वरके) अनुरूप मानव समाज भी एक हो।"

महात्मा विदुरने भी महाभारतमें इसी 'पूर्ण अहम्' को विस्तारका केन्द्र बनानेको कहा है :—

हितं यत् सर्वभूतानां आत्मनश्च सुखावहम्,
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ।

मनुष्यको वही काम करना चाहिये जो समस्त प्राणियोंका कल्याणकारक हो और करनेवालेको सुख देने वाला हो क्योंकि विधाताके न्यायमें सर्वार्थसिद्धिका यही मूल तत्व है।

'दार्शनिक चुड़ामणि इमानुअल क्याण्टने भी यही कहा है:—
'मनुष्यको इस भावसे आचरण करना चाहिये जिससे उसके आचरणको विधिविहित बोलकर ग्रहण किया जा सके।'

उपरोक्त दोनों उपदेशोंके एकही भाव है। तुम्हारा कल्याण इसीमे है कि तुम अपनेको विश्वका अंश मानो। इसलिये सारा विश्व तुम्हारा है और तुम सारे विश्वके हो। संकुचित हृदय होकर तुम जिसको 'अपनत्व' का संबोधन देते हो वह वास्तवमे वैसा नहीं है। वल्कि सारा संसार तुम्हारा है और उसीकी मंगल कामना तुम्हें करनी चाहिये। आओ हम सभी डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सुरमें सुर मिलाकर गावें:—

आमार एकला घेरर आड़ाल भेङ्गे विशाल भवे,
प्राणेर रथे वाहिर हते पारव कवे।

इस संसारमे तुम्हारे मंगल साधनका अभिप्राय क्या है, केवलमात्र सच्चिदानन्द परमपिताकी प्रतिष्ठाका रूपान्तरमात्र क्योंकि उनकी प्रतिष्ठा हो तुम्हारा लक्ष्य है, उसी लक्ष्यको तरफ दृष्टि करके कार्य करनेवाली, ज्ञानको प्राप्त करनेवाली, तथा चित्तको प्रसन्न करनेवाली ससामञ्जस्यको अबोधरूपसे अग्रसर होने देना ही कर्मयोग है।

इससे कर्मयोगका अभिप्राय निकला श्री विष्णुके चरण कम-

लोमें प्रीति उत्पन्न करनेकी कामना अर्थात् जो समस्त संसार-को घेरकर एक हो रहा है उसीके चरण कमलोंमें अनुराग। इस ठांवपर स्वार्थ और परमार्थ एक हो जाते हैं। हमारा और सारे विश्वका उद्देश्य एक हो जाता है। इसी भावको हृदयं-गम करके ही रामप्रसादने कहा थाः—

आहार कर मने कर आहुति देइ श्यामा माके।

नगर फिर, मने कर प्रदाक्षिण श्यामा माके॥

जिस समय मैं अन्नका कौर उठाकर मुंहमे रखता हूं उस समय मुझे यही प्रतीत होता है कि मै मांको आहुती दे रहा हूं और जिस समय मैं नगरोंमे फेरी देता हूं उस समय मुझे यही बोध होता है कि मैं मांकी प्रदक्षिणा कर रहा हूं।

भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको कर्मयोगका निम्न लिखित मूलमन्त्र बतलाया हैः—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसगः समाचर॥

'यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः। श्रुतियोंने यज्ञ शब्दका अर्थ विष्णु बतलाया है। विष्णुके चरणोंमें प्रीति उत्पन्न करनेके हेतु के अतिरिक्त जो कर्म किया जाता है वह संसारमे प्राणीको बन्धनयुक्त करता है। इसलिये विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये कर्म करो। आसक्तका त्याग करो।

श्री मद्भागवतमें नारद मुनिने व्यासदेवको त्रिताप—

आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक–से मुक्त होनेका निम्न लिखित उपाय बताया है:—

एतत् संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सित् ।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्माणि भावितम् ।

अर्थात् हे ब्राह्मण तापत्रयसे मुक्त होनेका केवल मात्र यही उपाय है कि प्रत्येक कर्म मे परमेश्वरके वर्तमान होनेकी भावना करलो । इसपर यह आशंका उठ सकती है कि कर्ममे तो बंधन है और जिसमें बन्धन उसमे फिर मुक्ति कैसे ? उसके लिये फिर नारद मुनिने कहा है:—

आमयो यश्च भूताना जायते येन सुव्रत ।
तदेव ह्यामय द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम ।

जो वस्तु मनुष्यको दुःख देती है उस वस्तुसे वह रोग नहीं मिट सकता । पर यदि उस वस्तुमे और अनेक वस्तुयें मिला दी जांय तो फिर वह वस्तु उस दुःखको मिटाने योग्य हो जाती है ।

एव नृणाक्रिया योगाः सर्वे संसृतिहेतवः ।
त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ।

इसी प्रकार मनुष्यका आचरित कर्म बन्धनका हेतु होकर भी भगवानके चरणोमे अर्पित होनेपर वही मुक्तिका हेतु हो जाता है । जो लोग सकाम शुभ कर्म करते है:—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोक विशाल, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशान्ति ।
एव त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना, गतागतं कामकामा लभन्ते ।

वे लोग उन शुभ कर्मोंका शुभ फल विशाल स्वर्गलोकमें प्राप्त करके पुण्य क्षय हो आनेपर फिर मृत्युलोकमें उतरते हैं। इस प्रकार वेदविहित कर्मानुष्ठानमें तत्पर होकर भी कामनाके फेरमें पड़कर बराबर आने और जानेके चक्करमें पड़े रहते हैं।

जब तक पुण्य फलका अवशेष रहता है तबतक तो स्वर्ग-के असीम आनन्दका उपभोग करते हैं और जब पुण्य क्षीण हो जाता है तब वहांसे गिरकर पुनः मर्त्यलोकमें आजाते हैं। जो लोग 'अपूर्ण अहम्' की सत्ता स्वीकार करके कार्यमें मग्न हो जाते हैं उनके भाग्यमें स्वर्गका यह क्षणिक सुख भी नहीं बदा रहता। जो लोग इस 'अपूर्ण अहम्' की मायामें फंस जाते हैं उन्हें उस घोर शुभ कर्मके फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं रहती। संसारके मनुष्योंकी आंखोंमें धूल झोंककर कुछ दिन तक अपना काम भले ही चला लें, पर ईश्वरकी आंखोंमें कौन धूल झोंक सकता है। इन दोनोंमें ही हानि है। पर 'अपूर्ण अहम्' की भक्तिमें तो अधिकतर हानि है क्योंकि सकाम कर्म तो केवलमात्र भगवानके चरणोंमें प्रार्थना करनेकी प्रेरणा करता है पर 'अपूर्ण अहम्' तो मनुष्यको एकदम अन्धा बना देता है और मनुष्यको ईश्वरके बराबर बन बैठनेके लिये प्रेरित करता है।

निष्काम कर्म---प्रेमके मार्गमें

निष्काम कर्म ही सात्विक कर्म है। भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है:—

नियतं संगरहितम रागद्वेषतः कृतम्।
अफल प्रेप्सुना कर्म यत्तत् सात्विकमुच्यते॥

अर्थात् जो कर्म विहित विधिके अनुसार आशाविहीन, राग-द्वेशशून्य तथा फलाफलसे अपेक्षित होकर किया जाता है उसे ही सात्विक कर्म कहते हैं। और

असक्तोह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।

जो मनुष्य आसक्ति रहित होकर काम करता है वही परमपदको प्राप्त हो सकता है।

यदि अनवरत रूपसे सदा निष्काम कर्मका आचरण नही किया जा सकता तो जितना संभव है उतना ही करना चाहिये क्योंकि उतना भी इस ससार चक्रमेंसे प्राणीकी रक्षा कर सकता है।

इसके अनुसार भगवान श्रीकृष्णने कुरुक्षेत्रमे अर्जुनसे निष्काम भावसे युद्ध करनेके लिये कहा था:—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवम् पापमवप्स्यसि॥

सुख दुःख, हानिलाभ, जयपराजयके विषयमे उदासीन भाव

ग्रहण करके युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ। इस तरह तुम पापके भागी नहीं हो सकते। इस प्रकारकी बुद्धि हो जानेपर 'कर्मबन्ध प्रहास्यसि' कर्म बन्धन छूट जायगा और यही निष्काम कर्मका सच्चा स्वरूप है। और

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

इस निष्काम कर्मयोगमें आरम्भका नाश नही है. इसमे किसी तरहकी असफलताकी सम्भावना नहीं, इसमें किसी तरहके हानिकी भी सम्भावना नहीं रहती। यदि इस निष्काम कर्मका थोडा भी आचरण हो जाय तो यह बड़े भारी भयसे रक्षा करनेमे समर्थ होता है।

कुछ लोगोका कथन है कि निष्काम कर्ममे प्रेरणाकी शक्ति नही है। फल प्राप्तिकी इच्छासे, इष्ट साधनकी आशासे मनुष्य जिस तरह काम करनेके लिये उद्यत होसकता है वह बात निष्काम कर्ममें कहांसे आसकती है। पर इस तरहकी शंकाका निवारण सहजमें ही हो सकता है। कभी कभी यह प्रत्यक्ष देखनेमे आता है कि मनुष्य अपना काम करनेमे उतनी तत्परता नही दिखाता जितना दूसरोंके लिये दत्तचित्त और सयत्न रहता है। प्रेमियोंमे तो यह बात और भी प्रत्यक्षरूपसे दिखाई देती है। जिससे हम प्रेम करते है उसके सुख साधनके सामने अपने सुख साधनको हम तुच्छ समझते हैं। प्रेमपात्रके लिये प्राणोंको भी गंवा देना अति सहज प्रतीत होता है। इष्टाभ्यासके निमित्त हेमन्त किस प्रसन्नता तथा उत्साहके साथ

अपने प्राणोंको देनेके लिये तैयार हो गया था। जिस समय हत्यारोंने नारायणराव पेशवापर सशस्त्र आक्रमण किया था उस समय प्रभुभक्त दास चाफाजी टिलेकरने विना अस्त्र शस्त्रके होकर भी किस प्रकार अपने शरीरसे प्रभुके शरीरको ढक लिया था और पाषाणकी तरह अटल पड़ा शस्त्रोंके आघातको सहते सहते प्राण त्याग किया था। परम प्रिय और पूजनीय प्राणोंको इस प्रकार इतने सहजमे त्याग देनेकी प्रेरणा कहांसे आती है। यह प्रमाण तो बड़े बड़े उदारहृदय महानुभावोके दिये गये है। पर साधारण मनुष्योंमे भी यह बात देखनेमें आती है कि हम जिसे प्यार करते हे उसको सुखी करनेके लिये यदि हमे थोड़ा कष्ट भी उठाना पड़ता है तो हम उसे सानन्द बरदाश्त कर लेते है। एक समयकी बात है कि दो थके मांदे बटोही एक ही स्थानपर आ जुटे। पर वह स्थान दोके रहने योग्य नहीं था। ऐसी अवस्थामें क्या भाव उदय होते है। क्या एकको सोनेके लिये पर्याप्त स्थान देकर दूसरा रात भर ऊंघता ऊंघता काटकर भी आनन्द प्राप्त नहीं करता। इस भावकी मात्रा अत्याधिक बढ़ जाती है इसी लिये प्रेमीके लिये प्राण त्याग करना अति सहज और आनन्दप्रद प्रतीत होता है। किसी व्यक्ति विशेषके प्रति प्रेम बन्धनमे बध जानेसे यदि उसके सुख या मंगल कामनाकी निष्काम प्रेरणाकी प्रवृत्ति देखनेमे आती है तो यदि किसी व्यक्ति विशेषका इसी प्रकारका अनुराग या प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय, देश अथवा जातिसे हो जाय तो क्या वह व्यक्ति उस धर्म सम्प्रदाय, देश अथवा जातिको

मंगल कामनासे प्रेरित होकर अपने सम्पूर्ण सुख साधनों और आनन्दकी सामग्रियोंको तिलाञ्जलि देकर उनका त्याग नहीं कर देगा ? इस प्रकारके अनेक महात्माओंके जीवनचरित हमलोगों-के सामने हैं जिन्होंने धर्मके लिये अथवा स्वदेशके लिये अपना सर्वस्व त्याग दिया है।*

धर्मके लिये, देशके लिये निष्काम कर्मयोगमें प्रवृत्त होने वालों-का उदाहरण इस देशमें हजारों और लाखों मिलेंगे। राजपूत रमणी पन्नाका उदाहरण कितना रोमाञ्चकारी है। राजकु-मार उदयसिंहके प्राणोंकी रक्षा बनवीरके हाथोंसे करनेके लिये उनकी धाई पन्नाने उनके स्थानपर अपने प्राणसे भी प्यारे पुत्रको सुला दिया और बनवीरद्वारा तेज छुरीकी धारसे खण्ड खण्ड होते अपनी आंखों देखा। रूस-जापान-युद्धके समय एक समा-चार निकाला था:—एक रूसी, यहानस्तान नामी एक जापानी रमणीके साथ विवाह करके याकोहामा नगरमें रहता था। रूसी अपनी स्त्रीसे कोई भेद नहीं रखता था, केवल एक छोटीसी सन्दूक उससे छिपाकर रखता था। किसी तरह भी उस सन्दूकको वह उसे नहीं देखने देता था। स्त्रीको इस बातका सन्देह हुआ कि उसका पति रूसका गुप्तचर है और जापान राज्यकी भेदभरी बातें संग्रह करके इसी सन्दूकमें छिपाकर रखता है। प्रियतम पतिके प्रेमकी अपेक्षा प्रिय स्वदेशका प्रेम उसके हृदयमें अधिक

* इस देशमें महात्मा गांधी सबसे बड़े त्यागी और महात्माओंमें हैं और उनके बाद लाला लाजपतराय, देशबन्धु दास और पण्डित मोतीलाल नेहरूका नम्बर आता है।

वेगसे उमंग मारने लगा। निदान एक दिन उसने अपने पतिको शराब पिलाकर मतवाला बना दिया और उस सन्दूकके सम्पूर्ण कागज पत्रोंको लेकर पुलिसके सन्मुख उपस्थित हुई। नशा उतरते हो उसने सन्दूकको तलाश किया। उसे न पाकर वह समझ गया कि उसकी स्त्रीने क्या कारवाई की है। वह उसी दम उठा और जापान छोड़कर भाग गया। किस भावसे प्रेरित हकर उस जापानी रमणीने अपने परम आनन्दमय गार्हस्थ्य जीवनको इस प्रकार अगाध सागरके बीचमे निमग्न कर दिया और फिर भी सुख तथा शान्तिका अनुभव किया। अनेक जापानो रमणियोंने तो यहांतक किया कि जब उन्होंने देखा कि उनके पति केवल मात्र इसलिये युद्धमें नहीं जाते हैं कि उन (रमणी) लोगोंका भरणपोषण करनेवाला कोई नहीं रह जाता तो उन्होंने अपने २ पतियोंका साथ त्याग दिया और इस तरह युद्धमे, जानेके लिये उनका मार्ग साफ और कंटकरहित कर दिया। एक जापानी रमणीकी कहानी और भी रोमाञ्चकारी है, एकमात्र पुत्र उसका अवलम्ब था। उसने देखा कि जब तक वह जीती है पुत्र युद्धमे भाग न लेनेके लिये बाध्य रहेगा। निदान इसने एक धारदार छुरा लेकर अपनी छातीमे भोंक दिया और रक्तरञ्जित उसी छुरेको अपने पुत्रके हाथमे रखकर उसने उसे युद्धमे प्रवृत्त होनेके लिये शुभ आशीर्वाद दिया और आप परम आनन्दपूर्वक परम धामका मार्ग लिया। यह उत्तेजना उसे कहांसे मिली थी?

जिन लोगोंका हृदय और भी उदार हो गया है, जिनके प्रेमका

विस्तार और भी दूरतक फैल गया है वे लोग इस संसारके कल्याणके लिये भगवानके विधिकी प्रतिष्ठाकी कामनासे किसी जाति या देशका ख्याल न कर रोग, शोक तथा सन्तापका अपहरण करनेके लिये उनके हृदयमे न जाने कौनसी प्रेरक शक्ति आ उपस्थित होती है कि वे खुशी खुशी प्राण त्याग करते हैं। फादर डेमियन इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इसी तरह संसारके मंगलकी कामनासे फ्रांसनिवासी मार्क्विस लाफायत् अमरीका वासियोंके पराधीनताकी शृङ्खलकी जड़ काटनेके लिये उन्मत्त हो उठा था। भला एक फ्रांसनिवासीको अमरीकासे क्या सहानुभूति थी ? पर उसकी आत्मा निश्चिन्त नहीं रह सकी। जिस समय अमरीकाने स्वतंत्रताकी घोषणा करके इङ्गलैण्डके साथ युद्ध ठान दिया था उस समय इस वीरकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। इस युद्धका समाचार सुनते ही वह अमरीकाके पक्षमें युद्ध करनेके लिये दृढ़संकल्प हो गया। उसने काउण्ट डी ब्रेलिसे सलाह ली। उन्होंने कहाः—'मैंने तुम्हारे पिताको मिण्डेनके युद्धमे और चचाको इटालीके युद्धमे सहर्ष प्राण त्यागते अपनी आंखो देखा है। उनके वंशके एकमात्र तुम्ही आधार रह गये हो उसके मूलोच्छेदनकी मैं राय नही दे सकता।' पर लाफायेत्को इससे सन्तोष न हुआ। वह अपने दृढ़संकल्पसे च्युत न हो सका। इसी बीचमे अमरीकावालोंकी घोर पराजयका दुःखपूर्ण समाचार मिला। दूसरे ही दिन उन लोगोंके न्यूयार्क त्यागका संवाद मिला। इस समाचारसे भी वह अधीर नहीं हुआ।

उसके हृदयमें विश्वजनित जो प्रेम भाव था वह और भी वेगसे बहने लगा। अमरीकामे रहनेवाले फ्रांसके प्रतिनिधि फ्रैंकलिन, और ली आदिने भी उसे अमरीका जानेसे रोकना चाहा। स्वयं फ्रांसके राजाने उसे लौटाना चाहा। पर वह किसी भी तरहसे न रुका। अनेक प्रकारकी विपत्तियोंको सहता वह अमरीका पहुंचा और रणमें योग देकर उसने अनेक संग्रामोंमे अपनी वीरता धीरता और उदार तथा विशाल हृदयताका परिचय दिया। फ्रांसकी राज्यक्रान्तिमे योगदान करके उसने यश कमाया था उसके प्रति अमरीकाका पक्ष लेकर युद्ध-भूमिमे जाना सहस्रगुणा अधिक और बढ़कर था। स्पेनदेशमें नियमतन्त्रशासन प्रणाली की स्थापनाका समाचार पाकर राजा राममोहनरायने हर्षो-फुल्ल होकर आनन्दोत्सव मनाया था, क्योंकि उनके विशाल हृदयमे संसारके कल्याणक भाव भरा था। नहीं तो स्पेन और भारतसे क्या संम्वन्ध! जिस समय आप ईङ्गलैण्ड जा रहे थे नेटालके वन्दरगाहमे १८३० की क्रान्तिके वाद एक फ्रांसोसी जहाजपर स्वाधीनताका पताका फहराते देखकर आनन्दके मारे उछल पड़े और उसको सप्रेम अभिवादन करनेके लिये आगे बढ़े और ठोकरसे सख्त चोट खायी। स्वनामधन्य हर्वर्ट स्पेन्सर इसी सार्वभौमिक प्रेमके प्रतापसे सीधे स्वर्ग सिधारे। उन्होंने जापानवासी वैरन केनिकोरको निम्नलिखित पत्र लिखा थाः—

आपने हमारे पास अनेक प्रश्न लिख भेजे हैं। उनका

उत्तर मैं साधारण तरहसे दे देता हूं। मेरी समझमे जापानके राजनीतिक कल्याणके लिये यह श्रेयस्कर होगा कि अमरीकामे यथासंभव यूरोपके लोग न घुसने पावें। अधिकतर शक्ति सम्पन्न जातियोंके बीचमे आप लोगोंका निवास सदा आपद्ग्रस्त होगा इसलिये विदेशियोंको अपने निकट स्थानोंमे रहनेके लिये केवल स्थान देनेसे ही काम नही चल जायगा। बल्कि सदा इस बातके लिये सतर्क होना पड़ेगा कि उन्हे स्थान न मिले। प्राकृतिक, शारीरिक तथा मानसिक शक्तिके प्रयोगसे जिन वस्तुओं की उत्पत्ति होती है उनके आयात नियात तथा विनिमयके निमित्त अन्य देशोंके साथ संसर्ग रखनेके हेतु जितने नियम उपकारी हों उनका निर्माण करना आवश्यक है। इस उद्देश्यसे किसी भी अन्य विशेषकर बलिष्ठ जातिको आवश्यकतासे अधिक अधिकार दे देना कदापि उपकारी नहीं है। यूरोप और अमरीकाको राजशक्तिके साथ आपकी वर्तमान शक्तिकी तुलना करनेसे हमें प्रतीत होता है कि आप लोगोंने विदेशियोंके धनोपार्जनके लिये अपने साम्राज्यका द्वार मुक्त कर दिया है। हमें आशंका है कि ऐसी नीतिसे आपको अनेक तरहके कष्टोंकी सम्भावना हो सकती है, इन विचारसे मेरा चित्त अतिशय विह्वल है। यदि कोई राष्ट्र किसी बलिष्ठ शक्तिको एक बार भी आश्रय दे दिया तो वह बलिष्ठ राष्ट्र उसकी सत्ताको हड़प जानेकी ही चेष्टा करेगा। इस बातका आविर्भाव होते ही संघर्ष उपस्थित हो जायगा। परिणाम यह होगा कि विरोधी शक्ति यह प्रसिद्ध

करेगो कि जापानवालोंने ही पहले आतङ्क उपस्थित किया है। निदान इसका प्रतिशोध करना आवश्यकीय है। परिणाम यह होगा कि देशके कुछ अंशपर वे आक्रमण कर देंगे और उन भूमि-भागको उनके लिये स्वतंत्र कर देना पड़ेगा। इस प्रकार धीरे धीरे सारा जापान पराजित होकर विदेशियोंके हाथमें आजायगा। प्रत्येक अवस्थामें यह भवितव्य अनिवार्य हो जायगा और यदि आपलोगोंने उपरोक्त अधिकारोंके अतिरिक्त अधिकार भी विदेशियोंको दे दिया तो यह अवस्था और भी सहज हो जायगी।"

जिस महापुरुषके ये वचन है वह वास्तवमें विश्वव्यापी प्रेमका खजाना था।

सार्वजनिक हितसे प्रेरित होकर काम करनेको ही निष्काम कर्म या श्रीविष्णुपादप्रेरित कर्म कहते है। पर व्यक्तिगत, सम्प्रदायगत अथवा स्वदेशके स्वार्थसे प्रेरित होकर किया हुआ कर्म विष्णुपदसे प्रेरित अर्थात् निष्काम कर्म हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। यदि यह काम भगवानके नियमोंके प्रतिकूल अथवा विरोधी है तो वह निष्काम कैसे हो सकता है। मान लो कि अपने सम्प्रदाय-विशेष या जाति-विशेषकी वृद्धिसे प्रेरित होकर तुमने अन्य सम्प्रदाय या जातिको किसी तरह भी हानि पहुंचायी तो क्या उससे भगवान कभी भी प्रसन्न हो सकते हैं? क्योंकि नारायणकी दृष्टिमे सारा विश्व एक है।

सब भूमि है गोपालकी इसमें अटक कहा?

जिसके मनमें अटक है वही अटक रहा।

वास्तवमें यह समग्र विश्व नारायणका है। यह हमारा है, वह दूसरे है, इस तरहके संकीर्ण विचार क्यों तुम्हारे हृदयमें उठते हैं? जिसका दृष्टिकोण संकीर्ण है, मन संकीर्ण है, वही सदा संकीर्ण होकर रहता है। जो समाज या जाति अपनी संकीर्णहृदयताके कारण इस उदार और विशाल जगतको अपने हृदयके भीतर लाकर रखनेकी इच्छा करती है, भगवान उसका फल उसे अवश्य ही देते हैं। ईसाई धर्मावलम्बी रोमन कैथलिक लोगोंद्वारा प्रोटेस्टेण्ट ईसाईका सताया जाना और रोमन जातियोंद्वारा बर्बरोंको बाहर निकालनेकी चेष्टाका फल इतिहासमें ज्वलन्त उदाहरण हैं।

पश्चिमी जातियोंमें अनेक ऐसे हुए हैं जिन्हें सार्वजनिक हितसाधनके प्रति अपने देशका स्वार्थसाधन अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ। ऐसेही लोगोंको लक्ष्य करके हर्बर्ट स्पेन्सरने कहा है:—

"हमारे देशमें धर्म और अधर्मका ज्ञान किसे है? इस विचारसे हमारे मनमें घृणा उत्पन्न होती है। स्वदेशप्रेमके साथ इस धर्माधर्मके विचारको मिला देनेपर कुछ कालके लिये यह ध्वनि सुगत प्रतीत होने लगती है। पर बाहरी आवरण उतारकर फेंक देनेमें ही विदित हो जायगा कि इसका अन्तरंग रूप बहुत ही भिन्न है। चाहे जिस तरफ देखो।"

"थोड़ी देरके लिये ख्याल कीजिये कि हमने किसी विदेशी शत्रुके आक्रमणको रोका है। इस स्थानपर स्वदेशहित-

साधनके ख्यालसे यह आचरण धर्मयुक्त है; क्योंकि आत्मरक्षा केवल संगत ही नहीं है बल्कि वह एक तरहका कर्त्तव्य भी है। इसके बाद कल्पना कीजिये कि हमने किसी अन्य देशपर आक्रमण किया है। दूसरेके देशको दखल कर लिया है। अथवा किसी जातिको किसी वस्तुको लेनेकी इच्छा नही है, पर हमने अपने शस्त्रके बलसे उसे वह वस्तु लेनेको वाध्य किया है। अथवा हमारे देशका कोई अधिकारी उनके विरुद्ध शासन दण्ड चलानेको मन्त्रणा देता है और उसके अनुसार हम अन्याय शासनमे प्रवृत्त हुए। स्मरण कीजिये कि क्या किसी जातिने आजतक किसी अन्य जातिके साथ इस तरह अन्याय आचरण करके उसे दोषपूर्ण स्वीकार किया है। उस समय इस स्वदेशहितसाधनके स्वार्थसे क्या ध्वनि निकलती है? जिन लोगोंको हम सता रहे हैं वह तो धर्मपथपर है और हम लोग अधर्मपथपर हैं। यहांपर स्वदेशहितसाधनकी अभिलाषासे यही ध्वनि निकलती है कि हम लोग धर्मको किनारे रखकर अधर्मको पुष्ट करना चाहते हैं। यही शैतानकी इच्छा है और हम उसके वशीभूत हो गये हैं। कई वर्षकी वात है कि एक समय मैंने इसी भावको ऐसे शब्दोंमे प्रकाशित किया था कि इसे पढ़कर लोग आश्चर्य करेंगे और हमे अवश्यही स्वदेशद्रोही कहेंगे। जिस समय अपने क्षत स्वत्वोंकी रक्षाके वहाने ब्रिटिश सरकारने द्वितीय वार अफगानिस्तानपर चढ़ाई की थी उस समय हमारे सैनिकोंकी घोर क्षतिका समाचार सम्वादपत्रोंमे निकला। उस

समय हमलोग अथेनियम क्लबमें बैठे थे। हम लोगोंके साथ एक सैनिक अध्यक्ष भी थे। उन्होंने उस प्रसंगकी चर्चा छेड़ दी। बातोंहीमे मैने उनसे कहाः—जो मनुष्य धर्म अधर्म, न्याय अन्यायकी परवा न कर केवल वेतनके लिये नरवध करनेपर उतारू हो जाता है उसको मृत्युसे हमे लेशमात्र भी दुःख नहीं होता। मेरे इस उत्तरको सुनकर वे अवाक् रह गये।"

"इसके उत्तरमे जो शोर गुल मचेगा उसे मैं जानता हूं। कोई कहेगा :—यदि यह मत मान लिया जाय तो सेनाका संगठन और राज्यका शासन असम्भव हो जाय। किस भावसे प्रेरित होकर अमुक सैनिक युद्धके लिये प्रवृत्त हो रहा है—इस तरहका निर्णय करनेपर तो एक क्षण भी काम नहीं चल सकता। सांग्रामिक दुर्बलता आजायगी और जो हो चाहेगा हमपर हमला करके हमारा देश छीन लेगा। पर यह चिन्ता अकारण है। युद्धके समयमे देश-रक्षाके निमित्त जिस तरह आज सैनिक प्रचुर संख्यामें पाये जाते हैं उसी तरह उस दिन भी पाये जायंगे। देशरक्षाके लिये युद्ध करना प्रत्येक सैनिक अपना कर्तव्य समझेगा और उसके लिये खुशी खुशी प्राण देगा। उस समय युद्धका एकमात्र अभिप्राय आत्मरक्षा रह जायगा। दूसरे देशोंपर आक्रमण करनेके निमित्त युद्ध होगा ही नहीं।"

"यह कहना असंगत नही समझा जा सकता कि आक्रमणके लिये युद्ध उठ जानेपर फिर रक्षार्थ युद्ध भी उठ ही जायगा। हां, आवश्यकता केवल इस बातकी घोषणाकी है कि भविष्यमे रक्षार्थ

युद्धके अतिरिक्त आक्रमणके हेतु युद्ध नहीं किया जायगा।"

"किन्तु जिन्हें 'हमारा देश' 'हमारा देश' यह चिन्ता सर्वतो रूपसे व्याप रही है उन्हें धर्म और अधर्मकी चिन्ता कहां? जिनके भावमे इस प्रकारकी ध्वनि उठती है और जो यह सोचते हैं कि आजतक तो हमने साम्राज्यका उपभोग किया है तो फिर भविष्यमे हम इससे क्यों वञ्चित रहें, वे लोग इस सांग्रामिक संयमके विधानको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखेंगे। उन लोगोंकी दृष्टिमे रविवारके दिन गिर्जेमे दी हुई धर्म दीक्षाके अनुसार सोमवारको आचरण करना नितान्त मूर्खता और बेवकूफी है।"

जो लोग राज्यसुखभोगकी कामनासे सनातन धर्मको भूल जाते हैं उन्हे परमेश्वर भलीभांति दिखाता है कि जो जाति स्वदेशप्रेम और विश्वप्रेमको परस्पर विरोधी मानती है उसका कल्याण नहीं है क्योंकि वह अपने पैरोंमे आप कुल्हाड़ी मार रही है।

जिन्होने ईशचरणोंमें नेह लगाया है उन्होंने तो संसार भरको अपना समझ लिया है। उनकी दृष्टिमे ससारके हितके सिवा और कोई बात आही नहीं सकती। भगवानका भक्त समदर्शी होता है। वह सबसे समान प्रेम करता है, चाहे वह छोटा हो चाहे बड़ा। भगवद्गीतामें भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनसे कहा है:—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

अर्थात् जो ब्राह्मण विद्या और विनययुक्त है उसे, गौ, हाथी, कुत्ते, कुत्ते को खानेवाले चाण्डाल तकको विद्वानलोग बराबर दृष्टिसे देखते हैं। यही आन्तरिक तत्व है "यत्र जीवस्तत्र शिवः।" अर्थात् प्रत्येक जीवमें स्वयं आनन्दस्वरूप भगवान विराजमान हैं। युधिष्ठिरके विश्वव्यापी प्रेममें कुत्तेका उदाहरण अभी गया जाता है। मनुष्यके प्रेममें इतर जीवोंका तथा उद्भिज पदार्थोंका क्या स्थान है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण दैनिक पञ्चयज्ञोंमें वर्तमान है।

लाफकेडि हार्नने अपनी "अनफेमीलियर जापान" नामी पुस्तकमें लिखा है:—मनुष्य देवताके निकट सदा इस बातकी प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर! हमारे पालित जीव किसी प्रकारका कष्ट न पावे और सुखी रहें। टोकियोके एकोइन मन्दिरमें पशुओंके स्मृति-चिन्ह रखे हैं और उनकी मंगलकामनाके लिये प्रतिदिन प्रार्थना की जाती है।

हम लोगोकी तर्पण और पिण्डदानकी व्यवस्था भी विश्वजनीन प्रेमका स्वरूप है। तर्पण और पिण्डदानके मन्त्रोंमें स्पष्ट लिखा है:—

देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, असुर सर्प, गरुडजातीय पक्षी, वृक्ष, टेढे चलनेवाले जानवर, विद्याधर, जलचर, खेचर, (उडनेवाले पक्षी) निराहार, पापी, धार्मिक आदि सब-की तृप्तिके लिये मैं यह जलदान करता हूँ और सबको पिण्डदान करता हूँ।

इसी प्रकार जैन धर्मावलम्बियोमें पशुओंकी रक्षा तथा वृद्ध, निरुपाय पशुओंके पालनके लिये पिञ्जरापोल आदिकी जो व्यवस्था की जाती है उसका स्मरण करके हृदय गद्‌गद् हो जाता है। इस प्रकारके सार्वभौमिक प्रेममें क्या आनन्द है! कालरिजने सत्यही कहा है:—

"He prayeth best who loveth best
All things both great and small·
For the dear God who loveth us,
He made and loveth——all"

भगवानका वही सबसे प्यारा भक्त है जो छोटी बड़ी सभी वस्तुओंपर समान दृष्टि रखता है। क्योंकि इन सभी वस्तुओंका निर्माण उसी समदर्शी महाप्रभुने किया है जो हमे प्यार करता है और उसी तरह उन्हें भी प्यार करता है। इसी प्रसंगको लेकर भागवतमें लिखा है:—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

जो मनुष्य समस्त प्राणियोमे भगवानकी ही छाया देखता है और समस्त प्राणियोको ईश्वरका अंशस्वरूप मानता है वही भगवानका परम भक्त है।

निष्काम कर्म—ज्ञान जनित

इस परिच्छेदमे हम यह दिखानेकी चेष्टा करेंगे कि ज्ञानी मनुष्यका कर्मकेन्द्र क्या है और उसे किस द्वारसे प्रेरणा मिलती है।

सबसे पहले तो ज्ञानके द्वाराही हमें यह भासता है कि मैं और समस्त विश्व एकही शक्तिके भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। गीतामे भगवान श्रीकृष्णने कहा भी है :—

अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।

अर्थात् मै प्रत्येक प्राणीमें अविभक्त अर्थात् एक होकर अधिष्ठित हूं, पर बाहरसे देखनेमे भेद प्रतीत होता है और सब भिन्न भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं।

अध्यात्मविज्ञानमे इसी तत्वकी आलोचना की गई है। प्रकृतिविज्ञानमे भी इसी तत्वका उद्घाटन होता है। यदि यह बात ठीक है तो फिर 'अहम्' क्या रहा। 'अहम्' उसी विश्वमे परिणत हो गया। योगवाशिष्ठमें महर्षि वशिष्ठने ज्ञानभूमिका सोपान प्रदर्शित किया है :-

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा॥
सत्तापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका।
पदार्थभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा गतिः॥

शुभेच्छा प्रथम ज्ञानभूमि, विचारणा द्वितीय ज्ञानभूमि, तनु-

मानसा तृतीय, सत्तापत्ति चतुर्थ, असंसक्ति पञ्चम, पदार्थभावना षष्ठ, तुर्यगा-गति सप्तम। इसके बाद इन सातों ज्ञानभूमियोंकी विस्तृत व्याख्या की गई है।

शुभेच्छा- मनुष्यके चित्तमे इस भावका आना कि मैं क्यो मूढ़ होकर बैठा हूं, मैं वैराग्य धारण करके शास्त्रोंकी आलोचना क्यो न करूं और संतोंकी संगतिसे ज्ञानोपार्जन क्यों न करूं,- इसी भावको शुभेच्छा ज्ञानभूमि कहते हैं।

विचारणा -शक्तियोंके मननसे तथा सतोंकी संगतिसे, धर्मा-धर्म, सत्यासत्य, स्थायी अस्थायी, आत्मा अनात्मा, कर्तव्य अकर्तव्य, बन्धन मोक्ष आदिकी विवेचनाके जो सदाचारिक विचारोंकी तरंगे मनमें उठती हैं उसीको विचारणा ज्ञानभूमि कहते है।

तनुमानसा—सबसे प्रथम शुभेच्छाका जन्म हुआ। उसके बाद विचारणा शक्तिद्वारा इन्द्रियादिकोंके भोगके विषयकी तुच्छताका ज्ञान उत्पन्न होकर उनकी ओरसे चित्तमें जो उदासीनता उत्पन्न होती है उसीका नाम तनुमानसा ज्ञानभूमि है। तनुमानसा अवस्थाको प्राप्त हो जानेपर चित्तकी प्रवृत्ति फिर विषयवासनाकी ओर नही दौड़ती। मनकी स्थूलता मिट जाती है और सूक्ष्मत्वकी प्राप्ति होती है।

सत्तापत्ति—शुभेच्छा, विचारणा, तथा तनुमानसा इन तीनों ज्ञानभूमियोंको प्राप्त होकर हर तरहके प्रलोभनसे जिस समय मुक्त होकर मन विरक्त होकर आत्मामें स्थिर हो जाना है उसी अवस्थाको सत्तापत्ति ज्ञानभूमि कहते है।

असंसक्ति—उपरोक्त चारों तत्वोंका अभ्यास कर लेनेपर जिस विलक्षण सात्विक भावका उदय होता है, जिसके द्वारा विषयासक्ति सम्पूर्णतया उच्छिन्न हो जाती है, उसीको असंसक्ति ज्ञानभूमि कहते हैं।

पदार्थभावना—उपरोक्त पांचों तत्वोंके अभ्याससे मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो जाता है और तब बाह्य और अन्तरंगकी चिन्ता मिट जाती है। उस समय सयत्न प्रकृत आत्मतत्वकी चिन्ता उपस्थित होती है उसीका नाम पदार्थभावना ज्ञानभूमि है।

तूर्यगा-गति—उपरोक्त छहों तत्वोंका अभ्यास करनेसे आत्माका भेदभाव मिट जाता है और आत्मामें ब्रह्ममें समता दीखने लगती है। उसी अवस्थाको तूर्यगा-गति ज्ञानभूमि कहते हैं।

इस व्याख्याके बाद वशिष्ठ मुनिने कहा है: —

ये हि राम महाभागाः सप्तमीभूमिमागताः।

आत्मारामा महात्मानस्ते महत्पदमागताः ॥

हे रामचन्द्र! जो महात्मा ज्ञानभूमिकी इस सातवीं अवस्था तक पहुंच जाते हैं वे आत्माराम होकर साक्षात् परमपदको प्राप्त होते हैं।

"भेदस्यानुपलम्भतः" अर्थात् किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है, इस भावके उदयको ही तूर्यगा-गति कहते हैं। इस अवस्थामें पहुंचनेपर सबमें एकता देखनेमें आती है। अपने और परायेका भेदभाव न जाने कहां चला जाता है। सात्विक ज्ञानकी

उत्पत्ति होनेसे ही भेदभाव मिट जाता है। इसी प्रसंगको लेकर भगवान श्रीकृष्णने गीतामें कहा है:—

सर्वभूतेषु येनैकम् भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ॥

जिस ज्ञानकी प्राप्तिसे संसारके सभी प्राणियोंमें एकताका बोध तथा ज्ञान होता है, दुनियांकी सारी विभक्त वस्तुओंमें एकताका ज्ञान प्राप्त होता है उसी ज्ञानको सात्विक ज्ञान कहते हैं।

एक अविभक्त सत्ता, एक अव्यय वस्तु, सुतरां एक सर्वव्यापी विष्णुसे भिन्न हम, तुम आदि भिन्न भिन्न तुच्छ पदार्थ अब दृष्टिपथमे आतेही नहीं। ज्ञानके इस ऊंचे चबूतरेपर चढ़ जानेपर प्रतीत होगा कि हमारे हृदयसे सारी कामवासनाएं उठ गई है और हमारे हृदयमें किसी प्रकारकी संकीर्ण इच्छाओंकी वासना नही रह गई है।

इस अवस्थामें पहुंचनेपर योगवाशिष्ठके अनुसार जीवन्मुक्त अर्थात् तूर्यगा-गतिप्राप्त महात्मागण सुख-दुःखसे दूर हो जाते हैं और कार्याकार्यकी और निजी किसी तरहकी प्रवृत्ति भी नही रह जाती। किन्तु लोक तथा समाजके प्रति जो कर्तव्य है उसे नहीं भूलते और सुप्रबुद्ध मनुष्यकी भांति समाजमे प्रचलित आचार विचारका पालन करते हैं, पर आसक्तियोंके चक्करमे नहीं पड़ते। जिस तरह प्रगाढ़ निद्रामे सोये हुए मनुष्यको सुन्दरसे सुन्दर स्त्री अपने रूपसौंदर्यसे मोहित नहीं कर सकती उसी प्रकार संसारकी

क्रियाएं उन्हें किसी तरह अपने वशमें नहीं कर सकतीं। क्योंकि वे आत्माराम पदको पहुंच गये हैं, वे आत्माकी लीलामें रत हैं। बाह्य इन्द्रियोंका सुख उनके लिये किसी तरहका प्रलोभन नहीं उपस्थित कर सकता।

वशिष्ठने "पार्श्वस्थबोधिताः" कहकर जिस बातकी भावना की थी उसीको भगवान श्रीकृष्णने 'चिकीर्षुः लोकसंग्रहम्' से प्रगट किया था। भगवान श्रीकृष्णने कहा था:—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

हे अर्जुन! जिस प्रकार मूढ़ जन विषयोंके वशीभूत होकर कर्म करते हैं उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्योंको भी विषयवासनामें न पड़कर संसारके कल्याणके लिये कर्म करना चाहिये।

भगवान श्रीकृष्णके मतानुसार ज्ञानी जनोंकी प्रेरणाका कारण है संसारके कल्याणको कामना और महर्षि वशिष्ठके मतके अनुसार पार्श्वस्थबोधन है। ज्ञानी जन उसी कामको करते हैं जिस कामको लोककी रक्षाके हेतु लोकपालादि करते हैं। उनको अपने लिये कोई भी ईप्सित पदार्थ नहीं है। उनकी कर्ममें प्रवृत्ति केवल संसारके कल्याणके हेतुसे होती है अथवा इस संसारमें महाप्रभु सच्चिदानन्दकी प्रतिष्ठा करानेके हेतुसे।

भक्त तथा ज्ञानी पुरुषका एक ही कर्मकेन्द्र है क्योंकि जिस समय 'अहम्' का भाव उठ जाता है और समस्त विश्वका भाव उसका स्थान ग्रहण कर लेता है उस समय ज्ञानी मनुष्यका कर्म-केन्द्र विश्व हो जाता है।

लोकसंग्रह

व्यक्तिगत, सम्प्रदायगत, समाजगत, जातिगत, राष्ट्रगत उन्नतिके लिये जो लोग आवश्यक प्रयत्न करते हैं उन सबका एकही कर्मकेन्द्र है. कारण कि सबका मूल एकही है केवल भिन्न भिन्न कर्म-केंद्र शाखाके रूपमें हैं। भगवानने कहा भी है—"एकोऽहं बहु स्याम्" अर्थात् मैं एक होकर भी अनेक रूप धारण करता हूं। जिनकी चेष्टाएं व्यक्तिगत होती हैं वे भी इस भावके अन्तर्गत इसी बहुत्व-के भावका प्रतिपादन करते हैं क्योंकि एक भी ऐसा व्यक्ति मिलना कठिन है जिसकी आकृति और प्रकृति किसी दूसरे व्यक्ति-की आकृति और प्रकृतिसे मिलती जुलती हो। जुडुये भाइयोंकी आकृति यद्यपि एक देखनेमें आती है तथापि उनकी प्रकृतिमें भी वही समानता अभीतक दृष्टिगोचर नहीं होती है। लीला-मय श्रीभगवानकी लीलाकी भित्ति विचित्र और विषम है। वे इस तरहकी विषमता जानबूझकर रखते हैं, नहीं तो उनकी लीला ही न चले। यही कारण है कि स्वभावजनित गुण और बहिर्गत तथा आन्तरिक भेदभावके कारण व्यक्तिगत, सम्प्रदायगत, जातिगत तथा राष्ट्रगत विचित्रता तथा विषमताकी सीमा नही है। पर इन विविध विचित्रताओं और विषमताओंके बीचमें भी एक तरहकी समता या एकत्व है। यह होना भी ठीक या स्वा-भाविक ही है क्योंकि जो इतने विविध रूपोंमें प्रगट होता है वह है तो अद्वितीय। प्राकृतिक धर्म, शिक्षा, दीक्षा, आकास, वायु, जल,

स्थानीय अनेक प्रकारके दृश्य, स्पृश्य, खाद्यादिके प्रभावसे भिन्न देशोमें, भिन्न जातियोमें, भिन्न समाजोमें तथा भिन्न भिन्न व्यक्तियोमें उसकी शक्ति भिन्न भिन्न प्रकारसे काम कर रही है और उसीके अनुसार लोगोके आचार, विचार, स्वभाव, संस्थिति, शील, व्यवहार, रीति, नीतिमे विभिन्नता देखनेमें आती है। पर फिर भी उन सब विभिन्नताओमे एक प्रकारकी एकता है क्योंकि सबकी चेष्टा उसी सच्चिदानन्दकी प्रतिष्ठा है। जिस तरह भिन्न भिन्न प्रकारके बाजे (जैसे, हारमोनियम, तबला, मजीरा, सितार) एक साथ मिलकर एकही प्रकारकी संगीतध्वनि निकालनेके लिये तत्पर रहते हैं उसी प्रकार असंख्य प्राणियोकी भिन्न भिन्न शक्ति-संचालनका एकमात्र अभिप्राय सच्चिदानन्द परमेश्वरकी प्रतिष्ठाकी स्थापना है। व्यक्तिगत, सम्प्रदायगत, जातिगत, कायिक, वाचिक, मानसिक भिन्न भिन्न प्रकारकी चेष्टाएं और भावनाएं हैं। उसी प्रकार ये सब उसी मूलतत्वकी प्रतिष्ठाके हेतु एक दूसरेके अभावकी पूर्ति करते है। उसी महान् गृहस्थकी चेष्टाएं हैं कि उस प्रभूत गृहस्थीके सञ्चालनके लिये अगण्य जीव और अगण्य उपकरणोका संग्रह करते हैं। जो हमारे पास नहीं है उसका साधन तुम संग्रह कर देते हो और जिसका तुम्हें अभाव है उसका हम संग्रह कर देते हैं। जो इस देशमें नहीं पैदा होता वह अन्य देशोंसे आता है और जो अन्य देशोमे नहीं उत्पन्न होता वह इस देशसे जाता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न देशो और व्यक्तियोंकी सहायतासे

सभ्यताकी उन्नतिकी धारा बहती है। एशिया और यूरोपकी धारा एक नहीं है, भारत और इंगलैण्डकी धारा एक नही है तथा एक देशमें भिन्न२ सम्प्रदायोमें भी अभाव दृष्टिगोचर होता है, पर यह विभेद अभावकी पूर्ति करता है। हम अपने अभावोंकी पूर्ति तुम्हारेद्वारा कर लेते हैंऔर इसी प्रकार एक देश अपने अभावों-की पूर्ति दूसरे देशद्वारा करता है। इस अभावकी पूर्ति जिस प्रकार सर्वोत्तम हो सकती है वही गठित होता है और सम्पूर्ण उत्तम साधनोका एकही उद्गम स्थान है और वही एक प्रत्येक व्यक्तियोंका लक्ष्य है और लोकसंग्रह उसीके अपेक्षित है।

इस लोकसंग्रहके काममे प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ देता ही है। इसमें छोटे बड़ेका भेद नही है। सभी इस महायज्ञके ऋत्विज है। इस यज्ञमें सभीको कुछ न कुछ हवन करना पड़ता है, चाहे वह राजा हो या रंक, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, अंगरेज हो या फ्रांसोसी। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक सम्प्रदाय, प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जातिका इस संसारमे कुछ न कुछ करणीय है। ईश्वरने किसीको बेकार नहीं बनाया है। एक परमाणुका जन्म भी निष्प्रयोजन नहीं है। इस पृथ्वीतलका कोई जीव या कोई व्यक्ति निरर्थक नही है। लोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि फूस-पत्तीमेंसे हीर निकल रहा है। विज्ञानशास्त्र मिट्टी और धूरमेंसे उत्तम उत्तम रत्न निकाल रहा है। मानव-संसारमें हम लोग जिसे हीन और नगण्य समझते हैं उसने ही इस महायज्ञमे क्या आहुति दी है हमलोग नहीं जानते। बरिसालमे गोपाल मेहतर नामका

एक व्यक्ति रहता था। कर्त्तव्यनिष्ठ वह इतना अधिक था कि हमलोग उसे अपना गुरु मानते थे। यदि इनकी साधारण वृत्तिपर ही ध्यान दिया जाय तो प्रतीत होगा कि यह भी कोई साधारण बात नहीं है। सुना है कि जिस समय हमारे गुरुदेव पूज्यपाद स्वामी विजयकृष्णदेवजी कहीं जाते तो प्रस्थानके समय सदा मेहतरानीको बुलाते और उसे कुछ इनाम देकर प्रणाम करते और कहते—"मा! तुम जननीकी भांति मलमूत्र साफ करके हमलोगोंका उपकार करती हो उसका प्रतिफल देना तो असम्भव है। हमलोग तुम्हारे सदाके ऋणी हैं और आजन्म ऋणी रहेंगे।" हमलोग तो सदा उन्हे हेय और नीच समझते हैं, उनके कार्यकी महत्ताकी कभी गणना ही नहीं करते। यदि विचारपूर्वक देखें तो विदित होगा कि इन मेहतर और मेहतरानियोंका काम स्वकीया जननीके उस कामसे कम नहीं है जो वह बाल्यावस्थामे करती है। माता जिस भांति बाल्यावस्थामे हमारा मलमूत्र साफ करके परिष्कार रखती है उसी प्रकार ये जवानी और बुढ़ापेमे हमारे मलमूत्रको साफ करके हमसे गन्दगी दूर रखते हैं और सफाई करके स्वास्थ्यवृद्धिका साधन प्रस्तुत करते हैं। यदि उनको (मेहतरको) इस बातका ज्ञान हो जाय कि ईश्वरने उन्हे इसीलिये उत्पन्न किया है कि वह अपने कर्त्तव्यपालनसे संसारके सुख और स्वास्थ्यका संवर्धन करे तो वह अपनी हीन वृत्तिको घृणाकी दृष्टिसे न देखे बल्कि अतिशय प्रसन्न होकर वह उसका सम्पा-

दन करे। और यदि हम लोग भी उसके कार्यको इसी दृष्टिसे देखते तो हम भी गोस्वामी विजयकृष्णजीकी भांति उसके चिरकृतज्ञ रहते। यदि वढ़ई विचारपूर्वक अपने कामकी आलोचना करे तो उसे मालूम होगा कि उसका कार्य कितना महत्वपूर्ण है। प्रत्येक दिन उसे पचासो प्राणियोंके भरण पोषणके लिये भोजनादि सामग्रीके पकानेके लिये साधन प्रस्तुत करना पड़ता है। यदि वह स्मरण करे कि भगवानने उसके हाथमे कितना भारी और महत्वपूर्ण काम दे रक्खा है तो दुःख न करके वह अत्यन्त आल्हादित होगा और उसे प्रतीत होगा कि उसके औजारके प्रत्येक आघातमे अमृतकी वर्षा हो रही है। और यदि हम लोग भी उसके कार्यको इसी दृष्टिसे देखें तो हमें भी प्रतीत होगा कि उसके शरीरका प्रत्येक बूंद पसीना मोतियोंके दाने है। दोपहरकी कड़ी धूपमें गलने और झुलसनेवाला किसान यदि इस वातका स्मरण करता कि विधाताने उसे किस महत्वशाली कार्यका भार सौंपा है, कितने आदमियोंके भरण पोषणकी जिम्मेदारी उसके सिरपर है तो वह अपने इस कडे परिश्रमको ग्लानिपूर्वक कभी भी नही देखता। यदि हमलोग भी उसकी खेतीगिरीको इसी श्रद्धापूर्ण दृष्टिसे देखते तो उससे और भी अधिक स्नेह करते और उसके कार्यके गुरुत्वकी महिमा पूर्णरूपसे समझ सकते।

पर जिन मेहतरो, वढइयो और किसानोंने अपने इस कर्तव्यके मर्मको समझ लिया है उन्हे अपने भोजन-वस्त्रकी कोई

चिन्ता नहीं रहती, परिवार-पोषणकी चिन्ता उन्हे उद्विग्न नहीं कर सकती, वे समझ लेते हैं कि विधाताने उनका सारा प्रबन्ध कर दिया है, हमें केवल उसकी आज्ञाओंका पालन करना है और उसीके अनुसार चलना है। वह स्मरणकर कि विधाताने इस महत् सृष्टिके भरण पोषणका किञ्चित् भार उसके ऊपर भी रख दिया है, वह मनही मन पुलकित होता है। वह अनेक प्रकारकी चिन्ताओंमे अपना शरीर नहीं जलाता, वह अपनेको नीच नहीं समझता। वह विष्णु को प्रसन्न करनेके हेतु अपना सारा काम करता जाता है। संसारके कल्याणके लिये वह अपनी शक्तियोंका उपयोग करता जाता है। वह समझता है कि यदि लोग हमे नीच समझते हैं तो इससे हमारी कोई हीनता नहीं है क्योंकि भगवानकी दृष्टिमे तो उसकी प्रतिष्ठा है। अपनी लीलाको सुचारु रूपसे चरितार्थ करनेके लिये उन्होंने उसे भी बुला कर अपने साथ कर लिया है। इन भावनाओंसे वह अतिशय प्रफुल्लित होकर रविदास भगत की भांति गाता है: —

सुरसरिसलिलकृत वारुणीरे
सन्तजन करत नाहि पानम् ।
सुरा अपवित्र न त अवर जलरे
सुरसरि मिलत नाहि होहि आनम् ॥

कितने सरल और मर्मभरे शब्द हैं। साधुजन गंगाजलसे बने मद्यको भी नहीं पी सकते। यदि वही सुरा पवित्र गंगा-

जलमे गिर जाय तो वह अपवित्र नहीं रह जाता और उसका अपर नाम भी नहीं रह जाता। उसकी अतिशय प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।

सुविख्यात सन्यासी सन्त अण्टानीने इस तरहकी वार्ता किसी चमार भक्तके वारेमें सुनी थी। अनन्त काल तक तपस्या करनेपर अण्टानीको देववाणी हुई कि अलेकजण्ड्रिया (अफ्रिका) नगरमें एक चमार रहता है, वह भक्तोंका राजा है। इस देववाणीको सुनते ही वे अपने स्थानसे उठे और अति शीघ्रताके साथ उसके श्रीचरणोंके दर्शनके लिये चले। उन्होंने उसके पास पहुंचकर देखा कि वह भगवानमें लिप्त अपनी जीविकाको अनवरत रूपसे चला रहा है और अपनेको सबका दास तथा सबसे हीन समझता है। उसको किसी कठिन तपस्याके आचरणकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उसने अपने कर्मका केन्द्र भगवानको ही मान लिया है। इतनेसे ही उसकी वासनाओंका बन्धन छिन्न-भिन्न हो गया है। इस प्रकार वह उच्च अधिकार-प्राप्त हो गया है।

इसी तरहका एक और भी वृत्तान्त है। एक साधुने ४० वर्षतक अनवरत तपस्या की। उसके वाद देववाणी हुई कि समीपके एक ग्राममे एक नीच जातिका मनुष्य रहता है जो उनकी अपेक्षा कहीं ऊंचे दर्जेपर पहुंचा है। इस प्रकार देववाणी सुनकर उनके हृदयमे उसके दर्शनकी उत्कट अभिलाषा उठी और वे उस ग्राममे गये। वहां पहुंचकर उन्होंने देखा कि एक स्थानपर भारी भीड़ जुटी है, लोग एक नटका तमाशा देख रहे

हैं और खूब गुल गपाड़ा मचा रहे हैं। उन्होंने उस फकीरका पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह यही नट है। तमाशा समाप्त होनेके बाद वे महात्मा चुपचाप उसके पीछे हो लिये और अतिशय एकान्त स्थानमें पहुंचकर उससे पूछा—"आपने कौनसी ऐसी कठिन तपस्या की है अथवा महान् अनुष्ठान किया है जिससे भगवानकी आपपर इतनी कृपा हो गई है।" उनकी बातें सुनकर वह अवाक् हो गया। उसने कहा—"मैंने तो जाननेयोग्य किसी तरहकी तपस्या या अनुष्ठान नहीं किया है?" पर सन्यासी उसे सहजमे ही छोड़नेवाले नहीं थे। अनुनय विनय करतेही रहे। अन्तोगत्वा लाचार होकर उस नटने कहा—"हां, मुझे स्मरण आता है कि मैंने एक दिन एक कार्य किया था। वह कार्य यद्यपि खराब नहीं था तो बहुत अच्छा भी नहीं था।" साधुने उस कार्यका विवरण सुनना चाहा। तदनुसार उस नटने कहा—"एक दिनकी बात है कि मैं अपने गिरोहको लेकर तमाशा करने जा रहा था। मार्गमे मैंने एक स्त्रीको देखा जो घूंघट काढ़कर भीख मांग रही थी। पता लगाया तो मुझे मालूम हुआ कि उसका पति ऋणके बोझसे दबकर जेलखाना से रहा है। इस स्त्रीके निर्वाहका कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है, इस लिये लाचार होकर बिचारी भीख मांगकर ही गुजारा कर रही है। कुछ दिन पहलेकी बात है कि मैंने तमाशा दिखाकर उसीके घरमें कुछ पैदा किया था। इस समय उसके दुःखको घटानेकी मुझमें प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न हो उठी। मैंने उससे उसके पतिके

कर्जकी रकमका पता लगाया। मालूम हुआ कि पांच सौ रुपया है मैं सीधा घर आया। मेरी स्वर्गीया पत्नीके गहने मैंने सन्दूकसे निकाले और उन्हे बेंचा। पर उससे दो सौसे अधिक न मिले। मैं बड़े संकटमे पड़ गया। निदान मैंने अपनी मण्डलीका साज बेंचकर शेष रुपयोका प्रबन्ध कर लेना चाहा। इस प्रकार मैंने उस स्त्रीके पतिका कर्ज चुकाया और उसे छुड़ाया। इसमे कोई उल्लेख करनेयोग्य महत्वकी बात नहीं है।" उस समय साधुको विदित हुआ कि इस नटका कार्यक्षेत्र क्या है और किस कारण इसने भगवानके चरणोमे स्थान पाया है। इसने अपना संकीर्ण स्वार्थ त्याग करके संसारके लाभकी कामनासे इस प्रकार कार्य किया है और यही कारण है कि यह इतने ऊंचे पद तक पहुंच गया है।

हमने पहले कहा है कि इस क्षेत्रमे हीन कोई नही है। महाभारतकी शक्तुप्रस्थ यज्ञकी कथा इस कथनका प्रमाण है। धर्मराज युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ शक्तुप्रस्थ यज्ञसे कही हीन हो गया। युधिष्ठिरकृत अश्वमेध यज्ञकी समाप्ति हो ही रही थी कि एक विचित्र प्रकारका नेवला—जिसका सिर और आधा शरीर सोनेका था—आकर यज्ञकी वस्तुओको भ्रष्ट करने लगा। उसने कहा— "यह अश्वमेध यज्ञ शक्तुप्रस्थ यज्ञकी तुलनामे कहीं हीन है।", नेवलेकी यह बात सुनकर उपस्थित मण्डली विस्मित हो गई और इस नेवलेसे इस हीनताका कारण पूछने लगी। नेवलेने कहा "कुरुक्षेत्रमें एक ब्राह्मण रहता था। उसकी जीविकाका एकमात्र अवलम्ब

भिक्षा-वृत्ति थी। घरमें आप, पत्नी, पुत्र और पुत्रपत्नी चार प्राणी थे। दिनके छठे भागमें भीख मांगकर जो कुछ संग्रह कर सकते उसीसे अपना पेट पालते। कोई कोई दिन उपवासमें भी बीत जाता था। एक समय भीषण अकाल पड़ा। उस समय बिचारे ब्राह्मणके ऊपर तो और भी नयी विपत्ति आ गिरी। इस अकालमें भिक्षा मिलना दुर्लभ हो गया। अब फाकोंकी बातही पूछना व्यर्थ था। फाकेपर फाके होते थे। एक दिन ब्राह्मणने भीख मांगकर जो कुछ संग्रह किया उससे सत्तू तैयार कराया। सत्तू केवल इतनाही था कि सारे परिवारके पेटकी ज्वाला एक बार किसी तरह शान्त हो सकती थी। निदान सत्तूको चार भागोंमें बांटा गया और ब्राह्मण, ब्राह्मणी, पुत्र तथा पतोहू चारो अपना अपना भाग लेकर भोजन करने बैठे। सत्तू सानकर मुहमें भी नहीं डाला था कि एक अतिथि (मेहमान) आकर उपस्थित हो गये। ब्राह्मण अपने आसनसे उठ बैठा और उनके आदर सत्कारमें लग गया। अतिथिके योग्य अर्घ आदि प्रदान करनेके बाद ब्राह्मणने अपने अंशको अतिथिके सामने लाकर उपस्थित किया। अतिथि उतना सत्तू खा गये पर उतनेसे उनकी क्षुधा न मिटी। अतिथिको भूखा रखना पाप समझकर ब्राह्मणीने अपना अंश भी उस अतिथिके सामने ला रखा। अतिथि उसे भी खा गये पर उनकी भूख न मिटी। यह देखकर ब्राह्मणके लड़केने भी अपना हिस्सा लाकर उनके सामने रख दिया। पर उससे भी अतिथिकी क्षुधा न गई। अन्तमें ब्राह्मणकी पुत्रवधूने अपना भी

हिस्सा उसे दे दिया। इतना सत्तू खानेके बाद अतिथिकी क्षुधा शान्त हुई। उस भूखे ब्राह्मण परिवारको वह रात भी उसी तरह निराहार काटनी पड़ी। इस अपूर्व उदारताका परिणाम यह हुआ कि उस ब्राह्मणके कुलकी विष्णुलोकमे प्रशंसा होने लगी और उसी अपूर्व त्यागके प्रभावसे वह ब्राह्मणकुमार स्वर्गका अधिकारी बन गया। अचानक मैं वहां पहुंच गया और सत्तूका जो कुछ उच्छिष्ट भाग जमीनपर गिरा था उसीपर लोटने लगा। देखते देखते मेरा सिर और आधी धड़ सोनेकी हो गई। आधी बची धड़को भी सोनेकी बनानेकी अभिलाषासे मैं तपोवनोमें और यज्ञशालाओमे घूमा किया, पर मुझे हर स्थानसे निराश होकर ही लौटना पड़ा। अन्तमे मैं यहां आया कि कदाचित् महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञकी पवित्र सामग्रियोके स्पर्शसे मेरी मनो-कामना सिद्ध हो। पर यहां भी मुझे निराश ही होना पड़ा। लाचार होकर मुझे इसी परिणामपर पहुंचना पड़ा कि महाराज युधिष्ठिरका यह धर्मयज्ञ भी उस गरीब ब्राह्मणके सत्तूदानरूपी यज्ञकी तुलनामे नहीं खड़ा हो सकता।"

कोई भी कार्य शुद्ध है या अशुद्ध, छोटा है या बड़ा, साधा-रण है या महान्, इन बातोकी विवेचना और निर्णय केवलमात्र उस कार्यको सम्पादित करनेवालेकी योग्यता और स्थिति देख-कर ही किया जा सकता है। सत्तूका दान बहुत ही साधारण बात थी। अश्वमेध यज्ञके दानकी तुलनामे वह नगण्य है, पर दान करनेवाले व्यक्तियोका स्मरण करनेसे वह सत्तूका दान इस

अश्वमेध यज्ञके दानसे कहीं महत्वशाली प्रतीत होने लगता है और इसी लिये उसकी तुलनामें महाराज युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ अति हीन हो गया।

हिन्दीमें एक कहावत है—"जैसे सत्तर वैसे अस्सी"। इस कहावतका अत्युत्तम उदाहरण यहांपर दृश्यमान है। किसी नगरमे एक ब्राह्मण रहता था। उसकी जीविकाका एकमात्र उपाय चोरी था। इस वृत्तिमें रहकर उसने ५२ नरहत्या की। इतनी नरहत्याके बाद उसके हृदयमे ग्लानि उत्पन्न हुई और उसे अपने कियेपर पश्चात्ताप होने लगा। उसके मनकी वेदना इतनी प्रबल हो उठी कि वह एक सन्यासीके पास गया और अपनी हीन वृत्तिकी चर्चा करके पूछने लगा—"महाराज किसी उपायसे इस घोर पापसे मेरा भी उद्धार हो सकता है?" उसकी आत्मकहानी सुनकर सन्यासीने उसके हाथमें एक काले रंगकी पताका दी और कहा - "तुम चोरीके पेशेका त्याग करके इस पताकाको अपने हाथमे लेकर देश विदेश भ्रमण करो। जिस दिन यह पताका अपना रंग बदल देगी और श्याम रंगसे सफेद रंगकी हो जायगी, उस दिन समझना कि तुम्हारा पाप भी छूट गया और तुम उससे मुक्त हो गये।" ब्राह्मणको जन्मभरका अभ्यास था। इससे कमरमे तलवार लटकाकर वह पताका लेकर देश विदेश जंगल और बस्तियोंमें घूमने लगा। सदा उसे इस बातकी चिन्ता जलाती रही कि वह दिन कब आवेगा जब वह इस घोर पापसे मुक्त होगा। एक दिनकी बात है कि वह

किसी एकान्त स्थानसे भ्रमण करता चला जा रहा था कि उसने देखा कि एक लम्पट नराधम किसी स्त्रीकी मर्यादा बिगाड़नेके हेतु उसपर आक्रमण करने जा रहा है और बिचारी सुन्दरी स्त्री मारे भयके भाग रही है। इस कृत्यको देखकर ब्राह्मणने ऊंचे स्वरसे आवाज दी कि अरे नरपिशाच! रुक जा! रुक जा! और आगे कदम उठानेकी धृष्टता न कर! पर वह दुष्ट कब माननेवाला था। वह उसी तरह चला गया और उस युवतीके पास पहुंचकर उसपर आक्रमण करही बैठा। ब्राह्मण भी अति वेगसे वहांपर पहुंच गया, पर उस युवतीके उद्धारका अन्य कोई मार्ग न देखकर उसने एक बार चिल्लाकर कहा—"जैसे सत्तर वैसे अस्सी" और कमरसे तलवार निकालकर उस चाण्डालके गलेपर इतने जोरसे मारी कि उसका सिर धड़से अलग हो गया और रक्तकी धारा फौवारेकी तरह उसकी गर्दनसे निकलकर बहने लगी। ब्राह्मणने अपनी गर्दन उठाई और धाराप्रवाह देखने लगा। उसने विस्मित होकर देखा कि उसी रक्तकी धाराके प्रवाहके साथ उसकी पताका भी अपना रंग बदलती चली जा रही है और नीलेसे सफेद होती चली जा रही है। इसी निःस्वार्थ कार्यसे स्वर्गमे उसका जयजयकार मचने लगा और चोरी तथा नर-हत्याजनित घोर पापसे उसकी मुक्ति हो गई।

जिस आधारका अवलम्बन करके उस ब्राह्मणने तिरपन मनुष्योंकी हत्या की थी उसी आधारके अनुसार भगवान कृष्ण-चन्द्रने महायति अर्जुनको युद्ध करनेके लिये आदेश किया था।

भगवानने पहले अन्य उपायोंद्वारा ही दुर्योधनको इस पाप कर्मसे दूर करनेका यत्न किया था, पर जब वे सफलमनोरथ न हुए तो लाचार होकर उन्हें इसी मार्गका अनुसरण करना पड़ा और उन्होंने अर्जुनको युद्ध करनेके लिये प्रेरित किया। इस युद्धमे पाण्डवोंका स्वार्थ नहीं भरा था। यह युद्ध पापको उठाकर वसुन्धराका बोझ हलका करनेके लिये किया गया था। यह धर्मयुद्ध था और संसारके कल्याणके लिये किया गया था।

इसीको आधार मानकर जो कोई कार्य किया जाय, उसमें लोकके कल्याणकी सम्भावना रहती है और इस आधारके अतिरिक्त जितने आधार हैं सबमे लोककी हानिकी सम्भावना है। जो व्यक्ति, जो जाति, जो समाज, जो राष्ट्र इस आधारको सामने रखकर और अपना लक्ष्य बनाकर काम करते हैं वे धन्य हैं। इंग्लैण्डने गुलामोंकी प्रथा दूर करनेमें इसी प्रथाका अवलम्बन किया था। अमेरिकावालोंने अर्धसभ्य जाति फिलीपाइन प्रदेशवालोंको स्वतन्त्र कर देनेका जो निश्चय किया था उसका भी आधार यही था। इसी आधारको अपने सामने रखकर, अपना लक्ष्य बनाकर जो जाति अपने देश या राष्ट्रका कार्य सुसम्पन्न करती वही राष्ट्र और जाति धन्य है, वही प्रकृत मार्गका अनुसरण करनेवाली है और वही सच्चा देशका कल्याण करती है। "सर्वभूतहिते रताः" अर्थात् संसारके सभी प्राणियोंके कल्याणमें सदा तत्पर रहनेवाले ही लोकसंग्रह करते हैं। बिना इस भावके हृदयमें स्थान हुए सच्चा लोकसंग्रह नहीं हो सकता। उनके लोकसंग्रहकी

दुन्दुभी बजाकर भीतर निजी स्वार्थकी भीषण मायामें पड़े रहनेका क्या फल होता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वर्तमान यूरोप है। रणचण्डी जो भीषण रूप धारण करके समस्त यूरोपमे नाच रही है और अपने भीषण ताण्डवके अन्तर्गत समस्त विश्वको कवलित कर जाना चाहती है उसका कारण यही स्वार्थान्धता है। जो जाति किसी अन्य कमजोर जातिकी श्रीवृद्धि नहीं देख सकती, दूसरेकी बढ़ती देखकर जिस जातिके मुंहमें तुरंत पानी आजाता है और जीभसे लार टपकने लगती है, अथवा जो जाति दूसरी जातिकी शक्तिको बलात् अपने वशमे करके उसका अपने मनके अनुसार सञ्चालन करना चाहती है अथवा अपनी शक्तिमें उसे बलात् मिलाकर अपनी शक्तिकी प्रतिष्ठा करानी चाहती है, वह जाति समस्त संसारकी शत्रु है और उसके पापोका फल अवश्य फलित होगा। प्रकृतिमे सबका एकही बीजाधार होकर भी संसारके प्रत्येक प्राणी, समाज, सम्प्रदाय, राष्ट्रका व्यक्तित्व भिन्न है और उसी आधारपर उनका धर्म भी भिन्न है और उस धर्मके अनुसार प्रत्येककी जीवनधारा भिन्न भिन्न सोतोंसे बही है यद्यपि अन्तमे सभी उसी एक अति विस्तृत सागरमें जाकर मिली है। इस स्वधर्ममे प्रत्येक दूसरेसे जबर्दस्त है। दूसरी तरफ चाहे जो कुछ भी त्रुटि हो, पर इस स्थलमे सबही शक्तिसम्पन्न है। साधारणतया यह बात देखनेमें आती है कि यदि किसी मनुष्यका एक अवयव कमजोर या दुर्बल रहता है। तो उसी हिसाबसे उसका दूसरा अवयव मजबूत और पुष्ट रहना

है : जैसे गूंगे और बहिरेकी देखनेकी शक्ति बड़ी तेज होती है, अंधेकी छूकर पहचाननेकी शक्ति तेज होती है, इसी प्रकार यहां भी जिसमें जो अभाव रहता है उस त्रुटिकी पूर्तिके लिये प्रत्येक राष्ट्र या जातिकी स्वाभाविक शक्ति अथवा स्वधर्मशक्तिका सञ्चालन होता रहता है और वह वृद्धि पाती जाती है। इसी प्रसंगको लेकर इमर्सनने लिखा है :—

"Only by obedience to his genius, only by the freest activity in the way constitutional to him, does an angel seem to arise before a man and lead him by the hand out of all the wards of the prison."

"अर्थात् एकमात्र अपनी नैसर्गिक बुद्धिकी सहायतासे ही नैसर्गिक प्रवृत्तिके अनुसार उसके प्रयोगसे ही मनुष्यको प्रतिभासित होगा कि एक दिव्य मूर्ति उसके सामने उपस्थित होकर कारागारसे उसे निकालकर बाहर खींच रही है अर्थात उसके सारे बन्धनोंको काटकर उसे मुक्त कर रही है।" यह उक्ति सबके लिये समान है, चाहे वह कोई व्यक्तिविशेष हो, राष्ट्र हो, जाति हो या समाज सम्प्रदाय हो। जो जाति अपने धर्मका त्याग करके दूसरोंके धर्मको स्वीकार करनेकी चेष्टा करती हो या दूसरोंको अपना धर्म छुड़ाकर दूसरे धर्ममें दीक्षित करनेकी चेष्टा करती हो वह जाति सदा अभागी है। संसारके कल्याणकी कामनासे प्रेरित होकर अपने प्राकृत धर्मके अनुसार ही चलकर और उसीमें

जो कुछ हीनता या कमी दिखाई दे उसकी पूर्ति अन्य स्थानसे कर लेना या यदि दूसरोंमें किसी तरहका अभाव या हीनता दिखाई दे तो उसे पूर्ण कर देनेकी चेष्टा करना, इसीको लोक-संग्रहका सच्चा मार्ग कहते हैं। भिन्न भिन्न मार्गोंके द्वारा यात्रा करके अर्थात् भिन्न भिन्न मार्गोंका अनुसरण करके उसी सच्चि-दानन्दकी प्राप्तिको ही लक्ष्यमें रखकर यात्रा करना सच्चा लोक-संग्रह है।
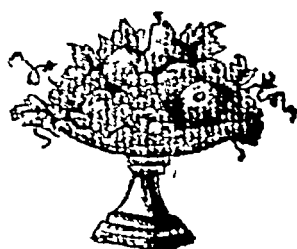
कर्मयोगीके लक्षण

जो मनुष्य संसारके कल्याणके लिये काम करता है वही सच्चा कर्मयोगी है। भगवान श्रीकृष्णने गीतामें ऐसे कर्मयोगी-के लक्षण बताये हैं:—

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योनीर्विकारः कर्ता सात्विक उच्यते॥

जो मनुष्य आसक्तिसे रहित है अर्थात् जिसे संसारकी किसी भी वस्तुसे मोह नहीं है और न जिसे 'अहम्'का निरर्थक अभिमान है, और जिसके हृदयमे असीम धैर्य और उत्साह भरा पड़ा है और जो सिद्धि तथा असिद्धिके लिये सदा निरपेक्ष रहता है अर्थात् न तो उसे लाभसे अतिशय सुख होता है और न हानिसे दुःख, ऐसा ही मनुष्य निष्काम कर्मयोगी है और इसीको सात्विक कर्ता कहते हैं।

मुक्तसंग

जिस मनुष्यको संसारकी आकर्षक वस्तुएं अपनी ओर खींच नहीं सकतीं वह मनुष्य बन्धनमुक्त है, स्वस्थ है, स्वाधीन है। जब मनुष्यका किसी वस्तुकी तरफ खिंचाव नहीं रहता तो फिर उसे किसी बातकी परवा क्यों होने लगी। ऐसे लोगोंके विषयमें भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनसे कहा है:-

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

जो मनुष्य राग अर्थात् प्रेम और स्नेहके बन्धन तथा क्रोधसे वरी है और जिसने अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया है और नव संसारके विषयोंमें विचरण करता है, इस तरहका मनुष्य जिसने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है और अपने मन-पर पूरा अधिकार कर लिया है वही प्रसाद लाभ करता है— अर्थात् इस अवस्थाको प्राप्त मनुष्य संशयके द्वन्द्वमें कभी भी नहीं पड़ते, सदा, सर्वदा और सभी अवस्थामें प्रसन्नचित्त रहते है। ऐसे ही पुरुषोंको लक्ष्य करके भगवान श्रीकृष्णने कहा है:—

प्रसादे सर्वदुःखाना हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

अर्थात् जिस मनुष्यको प्रसादकी प्राप्ति हो गई उसके सम्पूर्ण दुःखोका नाश अवश्य ही हो जायगा। जो मनुष्य इस प्रकार परम आनन्दकी प्राप्ति करता है उसकी बुद्धि अतिशीघ्र आत्मस्व-रूपमें प्रतिष्ठित होती है। जनक आदि बड़े बड़े महात्माओंने इसी प्रणालीका अनुसरणकर कार्य किया था और सिद्धिलाभ किया था। गीतामे भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने कहा भी है :—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

अर्थात् निष्काम कर्मयोगके अनुसार ही कर्म करके राजा जनक आदि महात्माओको सिद्धि मिली थी ।

उपरोक्त प्रकारके प्रसादके प्रभावसे बुद्धि आत्मामे प्रतिष्ठित हो गई थी। यह जानकर ही महाभारत शान्तिपर्वमे महात्मा जनकने कहा था:—

अनन्तम् वत मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किञ्चन ॥

हमारी सम्पत्ति और विभूतिका अन्त नहीं है पर मेरा कुछ भी नहीं है। यहां तक कि यदि अग्निदेवके कोपसे आज मिथिला देश जलकर भस्म भी हो जाय तो इससे मुझे किसी तरहकी हानि नही हो सकती। इसी प्रसंगको लेकर योगवाशिष्ठमें महर्षि वशिष्ठने कहा है:—

सुषुप्तावस्थितस्यैव जनकस्य महीपतेः ।
भावनाः सर्वभावेभ्यः सर्वथैवास्तमागताः ॥

महाराज जनक सदा सुषुप्तावस्थामें रहे, अर्थात् जागते हुए भी, संसारका कार्य सञ्चालन करते भी संसारके मोहबन्धनोंसे वे मुक्त थे, सुख-दुःख उनके लिये बराबर था, हानि-लाभ उनके लिये एकसा था, इसलिये संसारकी वस्तुओंमें मनुष्यको जो आसक्ति होती है वह उनसे कोसों दूर थी अर्थात् उसका उनपर प्रभावही नहीं पड़ सका था। इस अवस्थामें आकर

भविष्यं नानुसन्धत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ ।
वर्तमाननिमेषन्तु हसन्नेवानुवर्तते ॥

न तो उन्हें भविष्यकी चिन्ता थी और न भूतका अनुभव उन्हें

विह्वल करना था अर्थात् जो काम हो गये थे उनके कुपरिणामके ज्ञानसे न तो वे कभी व्याकुल होते थे और न उनके अनुसार गणना करके वे कभी इसी बातसे चिन्तित होते थे कि भविष्यमें भी किसी तरहकी खराबी न आजाय। उनका एकमात्र लक्ष्य वर्तमानपर रहना था। अर्थात् वर्तमान समयमें जो कुछ सामने आता था और जिसे वे करणीय समझते थे उसका आचरण हँसते हँसते प्रसन्नचित्त किया करते थे। अर्थात् सदा और सर्वदा वे प्रसन्नचित्त रहते थे, कभी विह्वल या व्याकुल नहीं होते थे। जो इस पदको प्राप्त होना चाहते है उन्हींको लक्ष्य करके महाकवि लांगफेलोने लिखा है :—

"Trust no future, however pleasant,
Let the dead past bury its dead ;
Act, act in the living Present,
Heart within and God o'erhead."

चाहे भविष्य कितना ही सुन्दर और आशाप्रद क्यो न प्रतीत होता हो उसपर भरोसा मत रखो। और जो बाते बीत गईं उनकी भी परवा मत करो, उन्हें भूतकालके अनन्त उदरमे विलीन हो जाने दो। केवल वर्तमानको अपने दृष्टिपथपर रखकर अनवरत रूपसे निरन्तर काम करते रहो और केवल ईश्वर तथा अपने साहसपर भरोसा रखो।

जिस मनुष्यको संसारके किसी भी पदार्थ से आकर्षण नहीं रह जाता और जिसे संसारकी कोई भी वस्तु अपनी ओर खींच

नही सकती उसी मनुष्यको रागद्वेषसे मुक्त कह सकते हैं और उसी मनुष्यके लिये कहा गया है कि:–'दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह वीतरागभयक्रोधः।' अर्थात् रागद्वेषसे जो मनुष्य मुक्त हो गया है वह विपत्तियोंके आपड़नेपर कभी भी नही घबराता, अर्थात् पूर्ण धीरता और साहसके साथ वह विपत्तियोंको सहता है और यदि सुख, आनन्द या प्रसन्नताकी कोई बात आ पड़ी तो वह आनन्दसे विह्वल नही हो जाता। न तो उसे किसी वस्तुविशेषसे प्रेम रहता है, न किसीसे वह डरता है और न उसमे क्रोध रह जाता है।

ऐसे ही मनुष्यको उदार कहते हैं। उनके लिये किसी सम्प्रदाय विशेषका बन्धन नही है और यदि बाहर किसी सम्प्रदाय विशेषके अंगभूत हो भी गये तो उनके हृदयमे किसी तरहका द्वेष भाव नहीं रहता। वास्तवमें वे सदा सम्प्रदायकी नहीं रहते हैं। बन्धनसे मुक्त होकर उस ग्रन्थिके बाहर आकर वे देखते हैं कि.—

"भिन्न भिन्न मत, भिन्न भिन्न पथ
किन्तु एक गम्यस्थान"

अर्थात् इस संसारमे अनेक तरहके मत और सम्प्रदाय प्रचलित हैं और प्रत्येक सम्प्रदाय भिन्न भिन्न मार्गों की ओर ले जाना चाहता है पर सबका लक्ष्य एक ही है, अर्थात् सबको पहुंचना एक ही स्थानपर है चाहे वह किसी भी मार्गका अनुसरण क्यो न करे।

प्रकृतिकी लीलाका अनवरत निरीक्षण करनेसे उस आनन्दमे एकत्वका ज्ञान होता है। कठोपनिषद्मे कहा है:-

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थ सनातनः।

उसे दिखाई देता है कि यह ब्रह्माण्डमय विश्व एक अश्वत्थका वृक्ष है जिसकी जड़ तो ऊपरको है और शाखाएं नीचेकी तरफ फैली हुई हैं। ये शाखाएं अपरिमित हैं पर इन सबमें एक ही लीलामयकी लीलाकी क्रीड़ा होती रहती है। पर इस लीलाके अन्तर्गत काम करनेवाले प्रत्येक पात्रोंको कुछ न कुछ अलग २ करना है। इसीलिये कहा भी है:—"भिन्नरुचिर्हि लोकः।" संसारके प्रत्येक प्राणीकी रुचि भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिका व्यक्तित्व भिन्न २ है जिस व्यक्तित्वका नाश लाख चेष्टा करनेपर भी नहीं हो सकता। उस व्यक्तित्वका सम्मान द्वेष और पक्षपातरहित मनुष्य जितनी उदारता और श्रद्धासे कर सकता है अन्य कोई नहीं कर सकता। मुक्तसङ्ग मनुष्यको विदित होता है:—

"God fulfils Himself in many ways"

भगवान अनेक रूप धारण करके व्यक्त होते है और अपने व्यक्तित्वका सम्पादन करते है। वे सर्वव्यापी हैं इसलिये उनके तत्वपूर्तिके मार्ग भी अनेक है। इसी अवस्थाको दृष्टिपथमें रखकर भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था:—

ये यथा माम् प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

हे अर्जुन! जो मनुष्य जिस भावसे मेरा भजन करता है उसी भावगम्य रूपको ग्रहण करके मैं उसके पास उपस्थित होता

हूं। मनुष्य हर तरहसे मेरा ही पथगामी होता है। इसी भावको लेकर गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा हैः—

जाकी रही भावना जैसी, हरिमूरति देखी तिन तैसी।

इस मर्मके तत्वको हृदयङ्गम करके ही मुक्तसङ्ग प्राणी सबके प्रति असीम उदारताका भाव धारण करते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि इस पृथ्वीतलपर सबका बराबरका अधिकार है।

इब्राहिम खलीलुल्लाके पदपर प्राप्त हो गये थे और लोग उन्हें ईश्वरका बन्धु समझते थे। उनका नियम था कि वे विना नरयज्ञ किये कभी भी भोजन नहीं करते थे। प्रत्येक दिन वे एक अतिथिको भोजन कराकर ही आप स्वयं भोजनादि करते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि कोई अतिथि नहीं आ सका। इब्राहिम चिन्तित होकर अतिथिकी तलाशमें चले। मार्गमें उन्हें सौ वर्षका बुड्ढा एक जीर्ण शीर्णकाय मनुष्य मिला। इब्राहिम बड़ी अभ्यर्थनासे उसे अपने घर लाये। अतिथिको भोजन परोस कर आप भी सपरिवार भोजन करने बैठे। नित्य प्रतिकी प्रथाके अनुसार सबके सब ईश्वरका स्मरण करने लगे। पर वृद्धने वैसा नहीं किया। इब्राहिम वृद्धकी यह उदासीनता और उपेक्षा देखकर उससे कारण पूछने लगे। उसने उत्तर दिया—"मैं मुसलमान नहीं हूं। मेरे सम्प्रदायमें इस तरहकी प्रथा प्रचलित नहीं है।" उसकी यह बात सुनकर इब्राहिम मारे क्रोधके लाल हो गये। उनके ओंठ कांपने लगे। वे अपनेको किसी भी तरह

सम्भाल नहीं सके। उसी क्रोधके आवेशमे उस वृद्ध अतिथिको उन्होंने मारकर घरसे निकाल दिया। जिस समय बूढ़ा घरसे बाहर निकला उसी समय आकाशवाणी हुई--"इब्राहिम ! जिस मनुष्यको मैंने सौ वर्ष तक इतने आदरके साथ इस संसारमें रखा क्या तुम उसे अपने घरमे आध घण्टेके लिये भी स्थान देनेमें समर्थ नही हो सके।" यह देववाणी सुनते ही इब्राहिमको पश्चात्ताप हुआ। वे फौरन दौड़े और उस वृद्ध अतिथिको अपने घरमे ले आये और पहलेसे भी अधिक खातिरदारीसे उसका सम्मान किया। मालूम होता है कि इसी घटनासे इब्राहिमका मोह छूटा और उन्होंने खलीलुल्लाकी पदवी पाई।

मुक्तसङ्ग मनुष्य इस प्रकारका व्यवहार नहीं कर सकता। पापी और पुण्यात्मा सभी उसकी दृष्टिमे एक है। उसका उदार हृदय सबके लिये खुला रहता है। उसका मन कहता है कि संसार-में ऐसा कोई भी अधम प्राणी नहीं है जिसके लिये परमपिताके हृदयमे स्थान न हो। चाहे कोई कितना ही नीच क्यों न हो, भगवान अपने हृदयमे उसे भी स्थान देते ही हैं। चाहे वह चोर हो या हत्यारा हो, पतितपावनी पवित्रसलिला स्रोतस्विनीका जल सदा उसके लिये भी उसी तरह मीठा और सुस्वादु रहता है। जो मनुष्य संसारके बन्धनोसे छुटकारा पा गया है उसके लिये तो अब सम्प्रदायजनित अथवा संस्कारजनित बन्धन रह नहीं गया है। अपनी दिव्य दृष्टिके द्वारा वे संसारके सभी प्राणियोंमे देवत्व और पशुत्वका भाव देखते हैं। उनकी दिव्य दृष्टि महा

अधम, नीचसे नीच पापीके हृदयमें भी देवत्वका अंश देखती है। संसारमें ऐसा कोई भी पापी नहीं है जिसके हृदयमे देवत्वके कुछ न कुछ लक्षण वर्तमान न हों। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें देवत्वका कितना अंश है तथा पशुत्व किस परिमाणमें है इसका विवेचन तो होना कठिन है क्योंकि इसके नापनेका किसीके पास कोई साधन नहीं है। प्रसिद्ध ठग तांतिया भीलके हृदयकी उदारताका परिचय पाकर क्या कोई उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देख सकता है? प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें षड्रसोंका समावेश है। जिससे तुम्हारी शत्रुता है वह सदा तुम्हें सतानेकी चेष्टा करेगा। उसके इस कड़ुवे फलका आस्वादन करके तुम्हें यह नहीं समझना चाहिये कि उसमें कोमलता या मिठास है ही नहीं। उसके भी मित्र होंगे जो उसके सद्व्यवहार और नरमीसे निहाल हो जाते होंगे। हत्यारा क्या करता है। एक तरफ तो एक जीवकी हत्या करता है, उसके शरीरमें पैनी कटारी बड़ी निर्दयताके साथ घुसेड़ देता है और दूसरी तरफ वह दूसरे व्यक्तिको सप्रेम हृदयसे लगाता है। ऐसा भी देखनेमें आता है कि नरहत्या जनित आघातसे हृदयके अन्तर्हित भाव जग उठते हैं। मुझे एक हत्यारेका उदाहरण याद है। उसे फांसीका हुक्म हुआ था और वह जेलखानेमें बन्द था। वह वहां हर वक्त ईश्वरका नाम जपा करता था। अन्त समय तक वह ईश्वरका नाम जपता रहा। फांसी दिये जानेके एक दिन पूर्व उसने एकाएक यहाँ प्रार्थना की थी कि अन्त समयमें मेरे मुखमें गङ्गाजल दी

बूंदें डाल देना। उसकी इच्छा पूरी की गई थी। बरिसाल जेलमें एक हत्यारेको और भी देखा था। जिस समय मैं उसकी जेल कोठरीके दरवाजेपर पहुंचा वह गाढ़ निद्रामें पड़ा सो रहा था। पहरेदारने उसे जगाया और मुझे प्रणाम करनेके लिये कहा। उस कैदीका नाम मांगनखां था। वह एक साधारण किसान था। मैंने उससे पूछा—"तुम्हें फांसीका यह कठोर दण्ड क्यों मिला? और तुम्हारा अन्तिम दिन कब होगा?" उसने उत्तर दिया कि शायद चार या पांच दिन और शेष हैं। मैंने उससे कहा—"भाई! तुम तो बड़ी निश्चिन्ततापूर्वक प्रगाढ़ निद्रामें सोते हो। मेरी समझमें नहीं आता कि ऐसी अवस्थामें तुम्हें नींद क्योंकर आती है।" उसने उत्तर दिया—"बाबूजी मेरी अवस्था इस समय ६२ वर्षकी है। बहुत दिन तक इस संसारमें रह लिया। इस संसारके अनेक रूप देखे हैं। अब जीता ही कबतक रह सकता हूं। अधिकसे अधिक पांच या सात बरस। ६२ बरसके मुकाबिलेमें ५ या ७ की क्या गणना है। इतने दिन जीना न जीना बराबर है। इस पृथ्वीपर बहुत दिन तक रहा हूं। और एक बात है। घरपर रहकर स्वभाविक मौत मरना होता। न जाने किस तरह मृत्यु होती। इस शरीर-को न जाने कौनसी यातनाएं भोगनी पड़तीं। न जाने कितने प्रकारकी व्याधियां आक्रमण करतीं। महीनों रोग-शय्यापर पड़े कराहना पड़ता। घरके प्राणी सेवा शुश्रूषा करते करते परेशान हो जाते और मनमें कहते—न जाने यह बुड्ढा कबतक पड़ा पड़ा

सड़ा करेगा। यदि अब भी मर जाता तो अच्छा होता। मैं भी पीड़ाकी यातना भोगते भोगते घबरा उठता और प्रतिदिन ईश्वरसे यही प्रार्थना करता कि हे महाप्रभु! हमारी रक्षा करो, हमारा उद्धार करो। इस कष्टमय जीवनका शीघ्रातिशीघ्र अन्त करो। तो क्या इस प्रकारसे मरना अभिमत होता। यहां तो एक दफे गला दबा और सब साफ। यहां उद्वेगका कोई कारण नहीं।" उसकी बातें सुनकर मैं अवाक् रह गया। मेरी समझमें नहीं आया कि मांगनखांमें इतना धैर्य कहांसे आया। मैंने यह धारणा की कि किसी भी व्यक्तिके हृदयके भावोंको जाननेकी चेष्टा करना मनुष्यकी धृष्टतामात्र है। अब मेरी समझमें आया कि ईश्वरने इसी बातको समझानेके लिये मुझे इस हत्यारेके पास तक पहुंचाया है। मैंने अनुमानकर देखा तो मुझे प्रतीत हुआ कि इस धीर व्यक्तिके मुकाबिले मेरी कुछ भी गणना नहीं है।

मुक्तसंग मनुष्यने अपनी दिव्य दृष्टिद्वारा इस मर्मको भली भांति समझ लिया है कि पतितपावन आनन्दकन्दके प्रेमचक्रमें पड़कर महापापी भी एक दिन विशुद्धात्मा हो जायगा। चाहे कोई कितना भी पाप क्यों न करे, ईश्वरका विधान प्रत्येक प्राणीके पापोंको काटना ही है। पापोंका पहाड़ कट जाता है। पापाचरण करते हुए उस पापीको इस बातका अवश्य ही ज्ञान होगा कि मैं अनुचित मार्गपर चल रहा हूं। यह भाव धीरे धीरे इतना भीषण हो उठेगा, पश्चात्तापकी ज्वाला इतनी प्रबल हो उठेगी कि उसे उस मार्गका त्याग करके सन्मार्गपर चलना होगा। यदि

ऐसा न होगा तो शान्ति भी नही हो सकती। अंग्रेजीमे एक कहावत है:—Out of evil cometh good अर्थात् बुराइयोसे भलाईकी उत्पत्ति होती है। बुराई करते करते मनुष्य अस्थिर हो जाता है, क्लान्त हो जाता है। इस वेदनामे जलकर वह सुमार्गकी खोजमे चलता है और उसकी प्राप्ति करके उसीका अवलम्बन करता है। मुक्तसंग मनुष्य यह मानता है कि एक न एक दिन सभी सन्मार्गगामी होंगे, इसीलिये वह सबके प्रति उदार भाव प्रगट करता है।

जिसके हृदयमे उदारताका स्रोत बहा करता है वह किसी भी अवस्थामे कदम पीछे नहीं हटाता। हृदयकी उदारता जब समस्त विश्वमे व्याप जाती है तब अभिमान और वेगानापनका भाव लुप्त हो जाता है और इमर्सनके शब्दोमे:—'he will be content with all places and with any service he can render' अर्थात् जिस किसी पदपर उसे रख दीजिये वह सन्तुष्ट रहेगा और जो कुछ सेवा कर सकेगा उसीसे सन्तुष्ट रहेगा। उसकी दृष्टिमें कोई भी ऐसा पद नहीं है जिसकी प्रतिष्ठा कम या अधिक हो। जिस पदपर वह प्रतिष्ठित हो जायगा उस पदको त्यागकर वह दूसरे पदकी प्राप्तिकी कामना नहीं करेगा।

मुक्तसङ्ग मनुष्यमे त्यागकी मात्रा भी अत्यधिक रहती है। जो मनुष्य हर तरहके बन्धनसे मुक्त है उसे त्यागमे भी किसी तरहका कष्ट अनुभव नहीं हो सकता। जो मनुष्य संसारके मोह-बन्धनमे जितनाही फंसा रहता है उसके लिये त्याग भी उतनाही

त्यक्ताहंकृतिराश्वस्तमतिराकाशशोभनः ।

अर्थात् अहंकारका त्याग कर देनेसे मनुष्यकी बुद्धि एक दम-से स्थिर हो जाती है अर्थात् उद्वेगशून्य हो जाती है और अहंकार-हीन मनुष्य निर्मल आकाशकी भांति स्वच्छ होकर अतिशय शोभाको प्राप्त होता है। ग्लेड्स्टन अनुद्विग्नचित्त और स्थिर प्रकृतिका मनुष्य था। ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान मन्त्रित्वका गुरुतम भार उसके सिरपर बोझकी भांति लदा था. फिर भी वह उद्विग्न या चिन्तित नहीं हुआ। इसको देखकर उसके एक मित्र-को अतिशय आश्चर्य हुआ और उन्होंने उससे पूछा। उसने उत्तर दियाः—"इतने दिनोंमें केवल एक दिन चिन्ताके मारे मुझे नींद नहीं आई। एक दिनकी बात है कि मैं एक ओकका पेड़ अपने हाथोंसे काट रहा था। काटते काटते शाम हो गई। फिर भी थोड़ा काम रह गया था। मैं थक गया था। इसलिये उस दिन वहीं छोड़कर घर लौट आया। रातको तूफान आया और उस तूफानसे मेरी निद्रा टूट गई। मैं पड़े पड़े चिन्ता करने लगा कि इस तूफानसे वह वृक्ष अवश्यही टूट गया होगा। मैं उसे काट कर नहीं गिरा सका। मैं इतने बड़े साम्राज्यके कार्य भारकी चिन्ताको पार्लियामेंटके द्वारपर ही छोड़कर घर आता हूं। और घरमें लेशमात्र भी चिन्ता मेरे सिरपर नहीं रहती।

"अहम्" भावके दूर होने ही अपने परायेका भेदभाव मिट जाता है। जहां अपने और परायेका भेदभाव मिट जाता है फिर पक्षपात और कृतघ्नता चित्तके निकट नहीं आती।

क्या भाईसे भाई धन्यवाद या कृतज्ञताका इच्छुक होगा। क्या पिता अपने पुत्रके मुंहसे अपने यशकी कीर्ति सुनकर सुख तथा प्रसन्नता लाभ करेगा। जहां सभी अपने है वहां कृतज्ञता और प्रशंसाकी अभिलाषा किसके द्वारा की जाय। और न वह किसीके निकट कृतज्ञता प्रकाशित करनेकी इच्छा ही कर सकता है। उस अवस्थामे उपकार और भलाई करना तो अपना एक-मात्र उचित कर्तव्य ही है। फिर कर्तव्यका पालन करनेमे किस बातकी प्रतिष्ठाकी कामना चाहिये। हां, जो नहीं करता उसके लिये दवा है पर जो कर्तव्य करता जाता है उसकी सीमा नहीं है।

अहङ्कारहीन पुरुषके कर्तव्यपालनमे किसी तरहकी विडम्बना नही रहती। जिस प्रकार प्रकृति आडम्बरहीन होकर सहज भावसे अपने कर्तव्यका पालन करती जाती है उसी तरह वह भी सहज उदार भावसे अपना कर्तव्य करता जाता है। महर्षि वशिष्ठने योगवाशिष्ठमे कहा भी है:—

नाभिवाञ्छाम्यसंप्राप्तं सम्प्राप्तं न त्यजाम्यहम् ।
स्वस्थ आत्मनि तिष्ठामि यत्ममास्ति तदस्तु मे ॥
इति सञ्चिन्त्य जनको यथाप्राप्तात् क्रियामसौ ।
असक्तः कर्तुमुत्तस्थौ दिनम् दिनपतिर्यथा ॥

अर्थात् जिस वस्तुकी प्राप्ति मुझे नही हुई है या जो वस्तु मेरे पास नहीं है मैं उसकी प्राप्तिके लिये चिन्तित नहीं होता और न मैं उसकी आकांक्षा करता हूं। और जो पदार्थ मुझे प्राप्त हो

लोक (परलोक) का हिसाब करके, भ्रांतिकी सम्भावनाका निरास करके कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिसने अहङ्कारके दुर्गम तथा दुर्जय किलेपर अधिकार कर लिया है, उसे छिन्न-भिन्न कर डाला है, उसके हृदयमें सारा विश्व एक बोध होने लगता है, संसारके सभी प्राणी उसे अपने प्रतीत होने लगते हैं और वह अपनेको सबमें देखने लगता है और यही कारण है कि वह स्वच्छ, सरल, अनाविल होता है। उसको देखकर हृदयके कपाट आपसे आप खुल जाते हैं। पर साथ ही साथ सरल होकर भी वह सदा सतर्क रहता है। जिस तरह पिता पुत्रके सामने सरल और उदार प्रकृतिका होकर भी सदा सतर्क रहता है वही हालत उसकी होती है। उसके सतर्क रहनेका यह कारण है कि लोग अधिकार भेदके आधारपर वही जानते हैं जिसे जानना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इससे उसे क्षति पहुंचा सकते हैं। पर उसके उदार हृदयके संसर्गमें और उसकी प्रतिष्ठा करनेसे तुम मुग्ध हो सकते हो। संसारके साथ उसकी घनिष्ठता और मैत्री हो गई है इस बातका स्मरण करके इमर्सन महोदयके शब्दोंमें :—

He has but to open his eyes to see things in a true light and in large relations.

अर्थात् संसारकी वस्तुओंकी वास्तविक सत्ताको पहचानने तथा संसारके साथ उनके सम्बन्धको अच्छी तरह जाननेके लिये उसे केवल अपने नेत्रोंको खोलना है। एकमात्र आंखको खोलनेसे ही यह सब बातें समझ आयगा।

अहंकारहीन मनुष्य आकाशकी भांति प्रीतिकर प्रतीत होता है। जिस तरह आकाश सबको प्यारा प्रतीत होता है उसी प्रकार वह भी सबको प्यारा प्रतीत होता है। परमहंस रामकृष्णकी क्या गति। उनके पास जानेमे किसीको लेशमात्र भी सकोच नहीं होता था। जितने समय तक लोग उनके पास बैठे रहते थे लोगोंके हृदयमे यही भाव विद्यमान रहता था कि ये हमारे साथी और घनिष्ठ मित्रोंमेसे है। जिसके मनमे जो बात आती थी, जो भाव उदय होते थे वह विना किसी तरहके सङ्कोच या आशङ्काके उनके सामने प्रगट कर देता था। इस प्रकार बालक, युवा, वृद्ध, नर, नारी सभीके लिये वे आनन्द और प्रसन्नताके विषय थे। सभी उन्हें अपना मित्र समझते थे। प्रत्येक मनुष्यके साथ वे इतनी उदारता और सरलतासे मिलते थे कि मन मुग्ध हो जाता था। उनके पाससे हट जानेपर मनमे यह भाव उदय होते थे कि "हमने क्या किया है। इतने बड़े महात्माके पास जाकर कितने छोटेपनसे बात की है ?" एक दिन प्रातःस्मरणीय रामतनु लाहिरी महोदयने मुझसे कहा—"चलो एक सज्जन और श्रेष्ठजनसे तुम्हारा परिचय करा दें।" मैंने उनसे विनम्र होकर कहा—"मुझे किसी बड़े आदमीके समक्ष उपस्थित होनेमे बड़ी लज्जा लगती है और सङ्कोच मालूम होता है।" उन्होने उत्तर दिया "जिसके निकट जानेमें मनुष्यको किसी तरहका सङ्कोच या भय उपस्थित हो उसे कभी भी बड़ा आदमी नही समझना चाहिये।" वास्तवमे रामतनु लाहिरी महाशय, राज-

नारायण वसु महाशय, रामकृष्ण परमहंस महाशय, विजयकृष्ण गोस्वामी महाशय, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुषोंके समक्ष जानेमें किसी तरहका सङ्कोच उत्पन्न नहीं होता था। इन महानुभावोंकी संगतिसे, उपदेश आदिसे जो लाभ होता है उन उपदेशोंका भार भी इतना भारी नहीं होता कि मनुष्य उन्हें लेकर उठ भी न सके। जिस तरह सुबह शाम हवा खानेके लिये टहलना कठिन प्रतीत नहीं होता उसी तरह इन लोगोंके पास जाकर उपदेश और शिक्षा ग्रहण करना भी कठिन प्रतीत नहीं होता बल्कि अति सहज प्रतीत होता है। जो कुछ लाभ इन लोगोंसे होता है वह अज्ञातरूपसे हम लोगोंके हृदयमें पैठकर अपना काम करता है। इस दान और ग्रहणमें एक विचित्रता और भी है कि न तो देनेवाला ही यह समझता है कि हमने कुछ अपने पाससे दिया है और न लेनेवाला ही यह समझता है कि हमें कुछ मिला है। इसी सम्बन्धमें इमर्सनने कहा है:—"It costs a beautiful person no exertion to paint her image on our eyes, yet how splendid is that benefit! It costs no more for a wise soul to convey his quality to other men." जिस प्रकार किसी सुन्दर मनुष्यको देखते ही उसके रूप लावण्यका चित्र नेत्र पटपर खिंच जाता है, उसकी मोहनी मूरत आंखोंमें समा जाती है पर उस मनुष्यको किसी तरहका प्रयास नहीं उठाना पड़ता (अर्थात केवल मात्र उसकी उपस्थितिसे ही यह कार्य सम्पन्न हो जाता है)

पर दूसरे व्यक्तिको अतिशय लाभ और आनन्द मिलता है (लाभ इस बातसे कि नेत्रोंके पानेका तात्पर्य आज सिद्ध हो गया और आनन्द उस रूपलावण्यरूपी सुधाको पान करनेका) उसी प्रकार किसी महात्माको अपने विशुद्ध और उन्नत आत्माका ठप्पा दूसरोंके हृदयपर जमानेमें किसी तरहका प्रयास नहीं उठाना पड़ता पर इससे संसारका असीम लाभ होता है।

जिसके हृदयसे अहङ्कारका भाव लुप्त हो गया है फिर उसे मान और अपमानका भी कोई विचार नहीं रहता। लबारपन उसमें नहीं रहता, उसके हृदयमें न तो किसी तरहकी जिद् रह जाती है और न द्वेष या वैरको ही स्थान मिलता है। उसके लिये संस्कृत-का निम्न लिखित भाव सर्वथा सत्य और उपयुक्त है :—"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।" अर्थात् वह किसीसे द्वेष नहीं रखता, संसारके सभी प्राणियोंका वह भलाई चाहनेवाला है और उनके लिये उसके हृदयमें असीम करुणाके भाव भरे हैं। यदि कोई उनके साथ वैर करता है तो वे उसे अबोध या ज्ञानरहित समझकर उसपर कृपा ही करते है। यदि वे देखते हैं कि उसके कल्याणके लिये शासनकी आवश्यकता है तो पिता जिस प्रकार शासन करता है उसी प्रकार उस व्यक्तिकी भलाईकी कामनासे वे भी उसके शासन करनेके लिये सयत्न होते हैं।

जिस मनुष्यके हृदयसे अहङ्कार निकल गया है वह विश्वासी है, उसकी बुद्धि स्थिर है, उसमें अभिमानका लेश भी नहीं रह गया है, उसमें किसी तरहका आडम्बर नहीं रह गया है, उसको

प्रकृति सरल हो जाती है, उसके पास जानेमें किसी तरहका सङ्कोच नहीं होता और उसमें ईर्ष्या द्वेष नहीं रहता।

धृतिसमन्वित

सात्विक प्रवृत्तिका मनुष्य धृतियुक्त होता है। अनेक तरहकी विघ्न-बाधाओं तथा विपत्तियोंके आजानेपर भी अन्तःकरणकी प्रवृत्तियां प्रारब्ध कार्यका परित्याग नहीं करती। इसी भावको धृति कहते हैं। विघ्न-बाधाओं और विपत्तियोंसे घिर जानेपर भी स्थिर रहनेके लिये मनुष्यमें संयमकी आवश्यकता है। जिस मनुष्यमें संयमका अभाव है वह इस प्रकारकी विपत्तियोंसे घिर जानेपर अपने धैर्य्यकी रक्षा नहीं कर सकता। असंयमी पुरुषमें धीरता नहीं रहती। उसके हृदयके परदे बड़े ही कमजोर होते हैं। विघ्न-बाधाओंके साधारण धक्कोंको भी वे बरदाश्त नहीं कर सकते और टूटकर गिर पड़ते हैं। धृतियुक्त मनुष्य संयमी होता है। वह निडर होता है और उसमें असीम सहनशीलता होती है। कठिनसे कठिन आपत्तियोंके आनेपर, भीषणसे भीषण विघ्न-बाधाओंके उपस्थित हो जानेपर वह किसी भी तरह संतप्त और अधीर नहीं होता। कोई भी अनिष्टकारी अवस्था उसे अधीर बनाकर पीछे चरण हटानेके लिये प्रेरित नहीं कर सकती। यह बात बहुतोंको विदित है कि ब्राह्म-धर्मका प्रचार करनेके लिये जिस समय गोस्वामी विजयकृष्णदेव स्थान स्थानपर भ्रमण कर रहे थे उस समय उन्हें साधारणसे साधारण, मोटेसे मोटे अन्नपर निर्वाह करना पड़ा था। इसके अलावा और भी अनेक

तरहके कष्ट उन्हें सहने पड़े थे। इन कष्टों और यातनाओंने किसी भी अवस्थामें इन्हें अधीर नहीं होने दिया। *जिस मनुष्यमें

*संसारमें शान्तिकी स्थापनाके लिये महात्मा गांधीकी सहनशीलताके समान अभीतक तो दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। संसारकी भभकती ज्वालाको शान्त करनेके लिये, संसारसे अनाचार और दुर्नीतिका राज्य उठा देनेके लिये वे जिस साहस और उत्साहके साथ कार्य करते हैं, उसकी सराहना नहीं की जा सकती। उनके कार्यके मार्गमें जो कठिनाइयां उपस्थित हुईं उनका भी वर्णन अतिशय रोमाञ्चकारी है। अफ्रीकाके सत्याग्रह आन्दोलनसे लेकर भारतके असहयोग आन्दोलन तकका इतिहास भीषण प्रकारकी बाधाओं और विपत्तियोंका इतिहास है। कभी कभी तो उन्हींके अधीनस्थ काम करनेवाले भ्रममें पड़ गये और यह सोचने लगे कि महात्माने हमें धोखा दिया है और उनका साथ छोड़कर अलग हो गये। एक आध्रने तो उनका प्राण ही ले लेनेका यत्न किया था पर महात्मा इतनेपर भी विचलित न हुए। अपने मार्गपर सदा चलते रहे। असहयोग आन्दोलनके प्रचारके कारण उनपर जो अभियोग चलाया गया था उसका उन्होंने खुली अदालतमें जिस नीर्भीकताके साथ उत्तर दिया था वह संसारके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा। नौकरशाहीने उन्हें जेलमें ठूंस दिया है। पर वहांसे भी उनकी यही आवाज आ रही है:—"मेरा असहयोग आन्दोलनमें पूरा विश्वास है। केवल एकमात्र इसीसे संसारका कल्याण होगा।" —अनुवादक

धृति है। वह संसारके सभी प्राणियोंमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करता है। उसके चारों ओर सदा शान्तिका साम्राज्य विराजमान रहता है। किसी भी अवस्थामें किसी भी कारण वह उद्विग्न या उत्तप्त नहीं हो जाता। उसे इस संसारमें किसी बातका डर नहीं है। संसारचक्रके भीषण कोलाहलमें भी वह अटल और अव्याति शान्तिका अनुभव करता है। हजारों शत्रु अनेक तरहके तीखे अस्त्र शस्त्र लेकर उसको घेरे ही क्यों न हों, शस्त्रोंकी चमचमाहट और झनकार उसके कानोंको काटती ही क्यों न हो पर वह उनके बीचमें भी अटल, अचल और स्थिर रहता है। किसी भी तरह उसकी प्रकृतिमें विकार नहीं उत्पन्न होता। कहा भी है:—

> दग्धं दग्धं त्यजति न पुनः काञ्चनं दिव्यवर्णं।
> घृष्टं घृष्टं त्यजति न पुनश्चन्दनं चारुगन्धम्।
> खण्डं खण्डं त्यजति न पुनः स्वादुतामिक्षुदण्डम्।
> प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥

बार बार जलाये और तपाये जानेपर भी सोना अपने सौन्दर्यको नहीं छोड़ता (बल्कि जितना तपाया जाता है उतना ही चमकता है।) बार बार घिसनेपर भी चन्दन अपनी स्वाभाविक सुगन्धिको नहीं छोड़ता। ईख टुकड़े टुकड़े किये जानेपर भी अपने मीठेपनको नहीं छोड़ता। इसी प्रकार उत्तम पुरुषोंकी प्रकृति किसी भी अवस्थामें विकारको प्राप्त नहीं होती।

कैसी भी विपत्तियां क्यों न उपस्थित हो जायं, कितनी भी बाधाएं उपस्थित क्यों न हो जायं, धृतिमान पुरुष कभी भी उद्विग्न नहीं होता, बल्कि उलटे और अधिक उत्साह ग्रहण करता है। इसी प्रसंगको लेकर महाराज भर्तृहरिने अपने नीति-शतकमें लिखा है —

कदर्थितस्यापि हि धैर्य्यवृत्तेर्बुद्धेर्विनाशो नहि शंकनीयो ।
अधः कृतस्यापि तनूनपातो नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥

धीरप्रकृति मनुष्यकी बुद्धि उत्पीड़ित होनेपर भी किसी प्रकारसे विकृत हो सकती है इस प्रकारकी आशङ्का करना व्यर्थ है। अग्निको कितना ही नीचेकी ओर क्यो न दबाइये उसकी लपट सदा ऊपरको ही जायगी। किसी भी अवस्थामे नीचेको तरफ नहीं जा सकती।

महापुरुष महम्मद साहबने किस प्रकृष्टतम धृतिबलका परिचय दिया था। मार्टिन लूथरने धैर्यके बलपर ही यूरोपके महा प्रतापशाली, सर्वशक्तिमान, ईश्वरतुल्य, रोमके पापके घोषणापत्रको हजारोंकी उपस्थित जनताके समक्ष बिना किसी डर भयके फाड़कर आगमे डाल दिया था। अमरीकामे जिस समय थ्यूडर पार्कर गुलामी प्रथाके प्रतिकूल आन्दोलन कर रहा था उस समयकी बात है कि अमरीकाके सहस्रों निवासी गुलामी प्रथाका प्रतिपादन और समर्थन करनेके लिये एक महती सार्वजनिक सभा कर रहे थे। वक्तागणोंने बोलते बोलते थ्यूडर पार्करका नाम लेकर कहा—"यदि आज हम लोग इस स्थानपर थ्यूडर पार्करको पा जाते तो उसकी

बोटी बोटी काट डालते।" थ्यूडर पार्कर उस सभामें उपस्थित था। विपक्षियोंके मुंहसे इतना सुनते ही वह उठ खड़ा हुआ और अपनी छाती ऊंची करके निर्भीक स्वरमें बोल उठा—"थ्यूडर पार्कर यहीं तुम लोगोंके समक्ष उपस्थित है। क्या तुम लोगोंमेंसे किसीको साहस है जो उसका बाल भी बांका कर सके।" इतना कहकर वह पूर्ण साहस और वीरताके साथ उस सभासे उठकर चला गया। सब कोई अवाक् होकर देखते रह गये। किसीसे कुछ करते न बना। धृतिमान मनुष्य कितना निर्भीक हो सकता है, इसका इससे बढ़कर दूसरा ज्वलन्त उदाहरण नहीं मिल सकता।

जिन महापुरुषोंने धर्मके लिये अथवा देशके लिये अपने अमूल्य जीवनका उत्सर्ग किया है उन लोगोंने धृतिबलका सबसे बढ़कर उदाहरण छोड़ा है। लरेन्सियस नामी एक महात्माको प्रचलित धर्मके विरुद्ध किसी धर्मपर विश्वास और आस्था रखनेके कारण प्राणदण्डकी आज्ञा हुई। उन्हें खाटपर सुला दिया गया और उसके नीचे चिता जला दी गई। उस स्थानपर उस देशके राजा भी उपस्थित थे। उनकी पीठका कुछ अंश जल भी चुका था जब उन्होंने हंसते हुए सम्राट्से कहा—"महाराज, अब मेरा जला और कच्चा दोनों प्रकारका मांस मेरे शरीरसे काट-कर चखिये और देखिये किसमें किस प्रकारका स्वाद है।" क्या इससे भी बढ़कर धृतिबलका कोई ज्वलन्त उदाहरण हो सकता है?

उत्साही

सात्विक कर्तामें उत्साह असीम होता है। संसारके कल्याणकी कामनासे अथवा श्रीभगवानकी प्रसन्नताके लिये प्राणी मात्रके हितके लिये जो काम किया जाता है उसमें असीम आनन्दका स्रोत बहता है और जिस काममें आनन्दकी प्राप्तिकी सम्भावना रहती है उसके आचरणमें मनुष्यको असीम आनन्द प्राप्त होता है। इससे यह परिणाम निकला कि कर्मयोगीमे आनन्दी और उत्साही होनेके दोनों शुभ लक्षण वर्त्तमान हैं। जिनके हृदयमें उत्साह है उनको किसीके भरोसेकी परवा नहीं रहती। उन्हे अपने बाहुबलमें असीम आशा और भरोसा रहता है। उनमें साहसकी भी कमी नहीं रहती। वे सदा इस भावको धारण करते हैं :—

यदि तोर डाक् शुने केउ ना आसे,
तबे एकला चलरे,
एकला चल, एकला चल, एकला चलरे।

* * * *

यदि सवाइ फिरे याय, ओरे ओरे ओ अभागा,
यदि गहनपथे यावार काले केउ फिरे ना चाय,
तबे पथेर काटा
ओ तुइ रक्तमाथा चरणतले एकला दलरे।

यदि तेरी पुकार सुनकर कोई आगे न बढ़े तो तू अकेला ही आगे बढ़। किसीकी प्रतीक्षा मत कर। अकेला ही चल। यदि कुछ दूर जाकर सभी पराङ्मुख हों तो वे सभी अभागे हैं और यदि कठिन मार्गपर चलनेके समय कोई मुख फेरना नहीं चाहता तो तू ही अकेला सभी आपत्तियोंको झेलकर, उस मार्गके कांटोंको अपने पैरोंतले रौंद दे।

उत्साही मनुष्य सदा नया प्रतीत होता है क्योंकि साहस रहनेपर उसे सदा नये नये कर्म करणीय दृष्टिगोचर होते हैं।

मनुष्यकी यही स्वाभाविक प्रकृति है। तेज, आनन्द और नयी वस्तुको देखकर उसका मन उस तरफ खिंच जाता है। उस आकर्षणमें जिन लोगोंका संसर्ग आनन्दी तथा उत्साही पुरुषके साथ हो जाता है वे भी आनन्दित और उत्साहपूर्ण हो जाते हैं। उनके पक्षमें 'संसर्गजाः दोषगुणाः भवन्ति' पूर्णांश- से चरितार्थ होता है। यह हो सकता है कि प्रचलित प्रथामें अन्ध विश्वास रखनेवाले लोग केवल सुनने या देखने मात्रसे उसके निकट या उसके सहवासमें न आजायं पर जो उसके संसर्गमें आजायंगे उन्हें उसका प्रतिफल मिलेगा ही, इसमें सन्देह नहीं। उत्साहीके संसर्गसे गुणोंकी किस प्रकार बढ़ती होती है, सद्भाव किस प्रकार प्रगट होकर चमकने लगते हैं और इस प्रज्वलनमें कितने साहसिक काम हो गये हैं, इसके अनेक ज्वलन्त उदाहरण इतिहासमें वर्तमान हैं।

सिद्धि असिद्धिमें समभाव

—:o:—

साधारण मनुष्य जिस सिद्धिके लिये पागल हो जाता है सात्विक कर्ता उसकी कभी चिन्ता तक नहीं करता। वह जानता है कि बाह्य सिद्धि न होनेपर भी भीतरकी सफलता तो अवश्य होगी। ज्ञानकी प्राप्तिसे जिस प्रकार हृदयमें ज्योतिका प्रकाश होता है, प्रेमसे जिस प्रकार आनन्दकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार कर्मसे शक्तिकी वृद्धि होती है। पुण्य कर्म करनेका पुण्य फल अवश्य ही होगा। यदि बाह्य कार्यमे सम्प्रति सफलता न मिले तोभी अन्तःशक्तिके प्रयोगके लाभका फल तो अवश्य मिलेगा। जिस समय भगवान श्रीकृष्ण सन्धिका प्रस्ताव लेकर दुर्योधनके पास जा रहे थे उस समय महामति विदुरने कहा था:—"दुर्योधन एक नहीं सुननेका, व्यर्थके लिये इस प्रस्तावसे क्या फायदा? आपकी बात न मानेगा और उपेक्षा करेगा।" उस समय भगवान श्रीकृष्णने उत्तर दिया था:—

धर्मकार्य यतन् शक्त्या नोचेत् प्राप्नोति मानवः।
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः॥

मनुष्यको अपनी शक्तिभर सदा धर्माचरणकी चेष्टा करनी चाहिये, चाहे उसमे सफलता मिले चाहे न मिले। यदि उसका

फल नहीं मिलता तो क्या, तज्जनित जो पुण्य फल है उसकी प्राप्ति तो अवश्य ही होती है।

और साथ ही साथ बाह्य फलके सम्बन्धमें भी यही बात निश्चय है—"नेहाभिक्रमनाशोस्ति"। पश्चिमी ऋषि चेलासियावासीने कहा था—"No true effort can be lost" यदि किसीने सच्चे दिलसे किसी कामको करनेकी चेष्टा की है तो वह निष्फल नहीं हो सकता। इन सब बातोंको देख सुनकर क्या फिर भी कोई अपने जीवनमें किये कार्यके फलाफलको देखनेका विचार कर सकता है? न जाने जीवनकी किस धारामें, किस समयमें किस कार्यका फल मिलेगा इसका पता तो हमारी क्षुद्र दृष्टिको नहीं लग सकता। किनारेपर खड़े होकर मैंने अगाध जलराशिवाले तालाबमें एक ढेला फेंका। मैं देखता हूं कि ढेला फेंकनेसे जलराशि आन्दोलित हो उठी और उसमें तरङ्गोंपर तरङ्गें उठने लगीं, पर कहीं न कहीं जाकर वे सब विलीन हो गईं। पर मैं इसका पता नहीं चला सकता कि उनका क्या हुआ। उसी प्रकार मानवरूपी सागरके कर्मरूपी इस अगाध जलराशिमें हमारी क्षुद्र चेष्टाएं कितना लहर उठावेंगी और वह कहां जाकर विलीन हो जायेंगी इसकी धारणा क्या मैं कर सकता हूं। पर इससे यह भी नहीं समझ लेना चाहिये कि वह चेष्टा विफल हो गई। यदि वह आज विफल हुई तो कल वही फलवती भी होगी। आज जिस श्रममें हमें असफलता मिली है कल उसीमें हम सफलमनोरथ होंगे। धर्माचरण

असफल होकर भी सफलताका मार्ग दिखलाता है और अन्तमें सफलताको भी लाकर सामने रख देता है। इटालीकी स्वाधीनताका उदाहरण ले लीजिये। प्रजातन्त्रवादियोंकी चेष्टाएं अनेक बार विफल हुईं। विदेशी शक्तियोंके सामने उन्हे अनेक बार हार खानी पड़ी, पर इस हारका परिणाम क्या हुआ? प्रत्येक बार उनकी शक्तिमे कुछ न कुछ नया बल अवश्य आया। अन्तमें उन्होने विजय लाभ की। इङ्गलैएडमे प्रजातन्त्रकी स्थापना क्या एक दिनमें हो गई? राजाके विशिष्ट अधिकारोंके साथ भीपण संग्राम करना पड़ा। अनेक वार पराभवका फल चखना पड़ा। तब कहीं अन्तमे जाकर सफलता मिली। इसीपर लार्ड बाइरनने लिखा भी है—

——Freedom s battle once begun,
Bequeath'd from bleeding sne to son,
Though baffled oft is ever won"

जब एक वार स्वाधीनताके लिये सग्राम छिड़ गया तो रक्त-पात होता ही रहेगा। सम्भव है कि यह युद्ध कई पीढ़ियोंतक चलता रहे पर अन्तमें विजयकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है। यह बात इस प्रकारकी स्वतन्त्रताके लिये है, चाहे वह सामाजिक स्वतन्त्रता हो या राजनीतिक स्वतन्त्रता हो या धार्मिक स्वतन्त्रता हो। चाहे बन्धन इस लोकका हो चाहे परलोकका हो, दोनो प्रकारके बन्धनोंसे मुक्ति पानेकी चेष्टा असफल होती होती किसी न किसी दिन तो अवश्य ही फलवती होगी। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन

चेष्टा कर । वे ही सच्चे कर्मयोगी हैं जो सिद्धि और असिद्धि दोनोंमें एक भावसे रहते हैं ।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा ।

निराशी निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥

सम्पूर्ण कर्मोंको हममें अर्पण करके अध्यात्मचेतसा अर्थात् हम हर तरहसे अन्तर्यामीके अधीन होकर काम कर रहे हैं यह भाव हृदयमे धारण करके और उस कर्मसे किसी प्रकारके लाभ आदिकी आशाकी सम्भावना न रखके विकारहीन होकर युद्ध करो ।

यह बात केवल धर्मयुद्धके लिये ही उचित नहीं है । संसारके सभी प्रकारके कर्मोंके लिये इसी तरहकी धारणा करके युद्ध करना होगा ।

महाराज युधिष्ठिर मनसा वाचा तथा कर्मणा इसी प्रकारके कर्मयोगी थे । उन्होंने द्रौपदीसे कहा था: —

धर्म एव मनः कृष्णे ! स्वभावाच्चैव मे धृतम् ।
धर्मवाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम् ॥

हे राजपुत्रि । मैं तुमसे हृदयकी बात कहता हूं । जो कुछ मैं करता हूं उसके फलप्राप्तिकी मैं कभी भी कामना नहीं करता । इतना जानता हूं कि देना होता है इसलिये देता हूं, यज्ञ करना होता है इसलिये यज्ञ करता हू । हे कृष्णे (द्रौपदी) फलाफलका मै कभी भी विचार नही करता । किसी तरहकी फलप्राप्ति हो या न हो, पर मैं सदा उन कार्यों के निष्पादन करनेकी चेष्टा करता हूं जो किसी गृहस्थको करने चाहिये । वेदविहित विधियोका अतिक्रम न हो इस बातको सदा दृष्टिपथमें रखकर और साधु महात्माओंके आचरणका सदा अनुकरण करते हुए मै जो धर्माचरण करता हूं उसके लिये मै कभी भी किसी तरहके फलकी आकांक्षा नहीं रखता । प्रकृतिसे ही मेरा मन हे कृष्णे ! धर्मकी ओर झुक गया है । जो लोग फलप्राप्तिकी कामनासे धर्माचरण करते है वे लोग धर्मको बाजारू सौदा समझ बैठे है और इसलिये धर्मके अनन्य पक्षपाती लोग उन्हें अतिशय निकृष्ट दर्जेका जीव समझते हैं । टेनिसनने कहा भी है:—

"To live by law,
Acting the law we live by without fear,
And because right is right to follow right
Were wisdom in the scorn of consequence"

विधि विधान तथा नियमके अनुसार रहना चाहिये क्योंकि विधि विधान तथा न्यायके अनुसरणमे फिर किसी बातका भय नहीं रह जाता। और चूंकि न्यायपथ सदा धर्म पथ है इसलिये परिणामका कभी ख्याल न कर न्यायका आचरण करना ही बुद्धिमानी है।

प्रकृत मनीषी जो कुछ करते है सभीमे सिद्धि अथवा असिद्धि का चिन्ता नही रखते, उससे सर्वथा उदासीन होकर काम करते हैं।

संसार क्रीड़ाक्षेत्र है

यहांतक हमने अनेक लक्षणोंसे कर्मयोगीकी पहचान बतलाई । जिस व्यक्तिमे ये सब उपरोक्त लक्षण वर्तमान हों उसका काम नाटकके पात्रके अभिनयसे भिन्न क्या हो सकता है। उसका कोई भी कार्य स्वार्थसे प्रेरित होकर नहीं होता। नाटकके पात्रको ले लीजिये। जिस समय वह रङ्गमञ्चपर आता है उस समय उसे न तो द्रव्यका लालच रहता है और न प्रशंसाका प्रलोभन। उसकी सारी चेष्टाएं केवलमात्र दर्शकोंको सन्तुष्ट करनेके लिये होती है। इस प्रकार नाटकके पात्रकी लीलाका तत्व समझ लेनेपर कर्मयोगीके अभिनय-तत्वको समझनेमें आसानी होगी। नाटकके पात्रकी भांति कर्मयोगी निःस्वार्थ भावसे विष्णुके प्रसन्नतार्थ तथा संसारके कल्याणकी कामनासे प्राणपणसे इस ससारमें लीलाभिनय करते हैं।

ऋषिपुंगव महर्षि, वशिष्ठने संसारमे विचरण करनेके निमित्त जो उपदेश श्री रामचन्द्रजीको दिया था उसीके अनुसार कर्म-योगी भी इस संसारमे रहकर कर्म करता जाता है। मुनिजीने कहा थ :—

पूर्णां दृष्टिमवष्टभ्य ध्येयत्यागविलासिनीम् ।
जीवन्मुक्ततया स्वस्थो लोके विहर राघव ॥

देह आदि इन्द्रियां तथा अन्नपानादि हमारे प्राणस्वरूप हैं, पुत्र, मित्र, कलत्र तथा धनधान्यादि सब हमारे हैं, इस प्रकारके जो आकर्षण करनेवाले भाव मनुष्यके हृदयमें वर्तमान हैं उन्हें वासना कहते हैं। इन भावोंके त्यागको "ध्येय वासना"का त्याग कहते हैं। हे रामचन्द्रजी! ध्येयवासनाके त्यागसे जिस असीम आनन्दकी उपलब्धि हो सकती है उसे ही दृष्टिपथपर रखकर जन्म तथा मरणकी चिन्ता न कर संसारयात्रा करो।

अन्तः सत्यक्तसर्वाशो वीतरागो विवासनः।
बहिः सर्वसमाचारो लोके विहर राघव॥

हे रामचन्द्रजी! हृदयके अन्तःस्थित सम्पूर्ण आशा, आसक्ति तथा वासनाका त्याग करके बाह्य जगतके सभी कार्योंको करते रहो।

अन्तर्नैराश्यमादाय बहिराशोन्मुखेहितः।
बहिस्तप्तोऽन्तराशीतो लोके विहर राघव॥

हे रामचन्द्रजी! भीतर तो निराशाके घोर अन्धकारको बनाकर बाहरी जगतकी आशाको प्रथम स्थान देकर और उसीमें उत्फुल्ल होकर कार्य सम्पादन करते रहनेसे अन्तर्हृदय ठंढा रहता है और इसलिये शीतल रहता है और बाहर उष्ण बना रहता है इसलिये तप्त रहता है। इसी प्रकारका कार्य करते रहो।

हे रामचन्द्रजी ! कार्यके अनुसार किसी कार्यके संबन्धमें बनावटी उल्लास और हर्ष दिखाकर और किसी कार्यके सबंधमे बनावटी उद्वेग तथा निन्दाका भाव दिखाकर कार्य सञ्चालन करो।

बहिः कृत्रिमसंरम्भो हृदि संरम्भवर्जितः ।
कर्ता बहिरकर्तान्तः लोके विहर राघव ॥

हे रामचन्द्रजी ! अन्तः हृदयमे किसो तरहके आवेगको स्थान न देकर और बाहरी बनावटी आवेग दिखाकर, अन्तः हृदयसे उदासीन होकर, बाहर सञ्चालक होकर संसारका कार्य सम्पादन करो।

सच्चा कर्मयोगी यद्यपि कार्योंका सम्पादन करता रहता है तथापि वह अपनेको कर्ता नहीं समझता। इसलिये उसकी दृष्टिमे सारी वृत्ति समान है। वह किसीको भी घृणाकी दृष्टिसे नही देखता। इसी प्रसंगको लेकर भगवान श्रीरामचन्द्रजीको महाराज वशिष्ठने उपदेश दिया है :—

आशापाशशतोन्मुक्तः समः सर्वासु वृत्तिषु ।
बहिः प्रकृतिकार्यस्थो लोके विहर राघव ॥

हे रामचन्द्रजी ! हजारों प्रकारकी आशाओंके बन्धनको तोड़कर और सभी अवस्थाओंमे एकसा रहकर बाहर अपनी प्रकृतिके अनुसार कार्य करके ससारका सञ्चालन करो।

जो इस अभिनयके उपदेशक हैं वही भगवान आनन्दकन्द

उपसंहार

—०—

कर्मयोगीका क्या लक्ष्य है, कर्मकेन्द्र कहां है, उसका लक्षण क्या है, कर्माभिनय किस तरहका होता है, इन बातोंकी आलोचना संक्षेपमें की गई है। पर इस तरहके आचरण करनेवाले कर्मयोगी चरले ही देखनेमें आते हैं। अधिकांश जनसंख्या तो राजस या तामस कार्याचरण करनेवालोंकी है। राजसी कर्मके लक्षणः –

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।

क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥

जो कर्म फलप्राप्तिकी कामनासे, अहङ्कारके साथ और बड़े ही श्रम आयाससे किया जाता है उसे 'राजस कर्म' कहते हैं।

अहङ्कार जहां विद्यमान है वहां स्वभावमें सरलता नहीं आ सकती। जब स्वभावमें सरलता नहीं है तो काम भी सहज नहीं होता। अब हमको हरेक कामका हिसाब किताब रखना पड़ता है, इससे बुद्धिमें बनियाई या बनियापन आजाता है। बनियापन आजानेसे सहज काम भी कठिन हो जाता है। उस समय दूसरोंके रुपयोंकी तरफ तृष्णा बढ़ती है, अपने रुपयोंको

इस प्रसङ्ग मे श्रीमद्भगवद्गीतामे भगवान श्रीकृष्णने कहा है—

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

जो कर्म मे आसक्त है, कर्म फलकी कामनासे ही कर्म करते हैं, दूसरेके धनके अपनानेके लोलुप है, लोभ इतना अधिक है कि एक पैसा भी जेवसे निकालना कठिन है, दूसरोंके सतानेकी सदा चेष्टा किया करते है, अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, अभी सिद्धिमे प्रसन्न और असिद्धिमे दुःखी हो जाते हैं, जो लोग इन उपरोक्त आचरणोंसे युक्त हैं उन्हें राजस कर्ता कहा जाता है ।

राजस कर्म और राजसोकर्म करनेवाले मनुष्यके लक्षणका संक्षेपमे दिग्दर्शन कराके अब भगवान श्रीकृष्ण तामस कर्ता और तामस कर्म के लक्षण वर्णन करते है ।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत् तत्तामसमुच्यते ॥

जो मनुष्य विना इस वातको समझे ही काम करने लग जाता है कि इस कामका भविष्यमे क्या परिणाम होगा, इसमे कितनी शक्तिका नाश और अपव्यय होगा, आर्थिक क्षति कितनी भीषण होगी, इस कार्यसे कितने लोगोको कष्ट होगा और अपनी शक्ति-का कितना ह्रास होगा, उसीको तामस कर्ता कहते हैं ।

और भी

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥

जो मनुष्य अनवहित, विवेकशून्य, उद्दण्ड, शठ, दूसरोंकी जीविकोपहरणमें दत्तचित्त रहता है, आलस्ययुक्त रहता है और काम करनेमें बड़ी सुस्ती दिखाता है, वह तामस कर्ता कहलाता है।

राजस और तामस कर्ताके जो लक्षण दिये गये हैं उनमें तुलना करनेपर विदित होता है कि पश्चिमी अर्थात् युरोप देशके निवासीगण राजस कर्ता हैं। क्योंकि जिस प्रकार उनके बल, पराक्रम, साहस और सम्पत्तिकी वृद्धि हुई उसी प्रकार उनके भीतर दम्भ और अहङ्कारका भाव भी बढ़ता गया है और वे लोग सदा राजसी वृत्तिसे उत्पन्न विषय वासनाके उपभोगमें लगे रहते हैं। जिस समय उनकी देह सदनुष्ठान करनेमें भी प्रवृत्त रहती है उस समय बहुधा उसमेंसे राजसी प्रवृत्तिकी महक आती है। लोग लाखों रुपयोंका दान इस अभिलाषासे प्रेरित होकर करते हैं कि राजाकी दृष्टिमें उनका सम्मान हो, प्रजाके हृदयमें उनके प्रति श्रद्धा भक्ति बढ़े। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि सात्त्विक प्रवृत्तिका सर्वथा लोप हो गया है, पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि रजोगुणसे उत्पन्न वृत्तियोंकी वृद्धि और उनका विकास सीमासे कहीं अधिक बढ़ गया है। फलतः वहाँ समाजमें सात्त्विक प्रवृत्तिजनित शान्ति तथा नीरवता बहुत कुछ लोप हो गया है। यह अवस्था देखकर उनमेंसे कतिपय विचारवान पुरुषोंने इस बातकी अतिशय चेष्टा की कि इन लोगोंमें सात्त्विक प्रवृत्तिका पुनरागमन या पुनर्जीवन हो जाय। [illegible] [illegible]

उसी तरहके अनेक महापुरुष इस बातकी चेष्टा कर रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि सात्विक भाव धीरे धीरे बढ़ती प्राप्त करता जा रहा है। इससे अब भारतवर्ष, चीन तथा अन्य देशोंके प्राचीन समयके महर्षिगणोंकी अध्यात्मचिन्ताओंकी प्रतिष्ठा आज पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई है। डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको 'नोबुल प्राइज' मिलनेका यही साधन हुआ है। तामसी प्रवृत्ति उन लोगोंमें कहीं कम है। तामसी प्रवृत्तिवाले मनुष्यके जो लक्षण है अर्थात् आलस्य, विषाद और दीर्घसूत्रता (काम करनेमे ढिलाई) वह इनके बीच बहुत ही कम देखनेमे आते है। इनमें राजसी प्रवृत्तिका भाव ही अधिकांश दृष्टिगोचर होता है। यह राजसी प्रवृत्तिका ही प्रसाद है कि इन लोगोंमें इस प्रकारका परस्पर संघर्ष उपस्थित हो रहा है। पर बीच बीचमें सात्विक प्रवृत्तिका भी कहीं कहींसे सुमधुर राग नेतागणको अपनी ओर आकृष्ट करेगा और वे कर्मयोगके मार्गमे आगे बढ़नेमे समर्थ होंगे। यदि उन लोगोंकी इस प्रकार उन्नति न होगी तो वे राजसी प्रवृत्तिसे तामसी प्रवृत्तिके पदपर गिर जायंगे। कर्ताके लीला-चक्रपर चढ़नेके बाद फिर कोई भी व्यक्ति एकस्थानपर स्थिर नहीं रह सकता। चाहे वह ऊपरकी ओर बढ़े या नीचेकी ओर गिरे। जो भीषण संग्राम, जो परस्पर स्वार्थसंघर्ष इस समय चल रहा है सम्भव है इसका अन्तिम परिणाम कल्याणकर ही हो। सुदूर विचार करनेपर जिस कल्याणकी आशाकी किरणे दृष्टिगोचर

उपार्जित भी कर लिया है वह साराका सारा अदालतोंके लिये स्टाम्प, वकील साहबको फीस, अमलोंको खुश करनेके लिये पान पत्ते गवाहोंकी खुराकी, अर्दली, पेशकार और चपरासीको घूस देनेमें समाप्त कर देता है। इसीको तामस प्रवृत्तिसे प्रेरित स्वार्थ त्याग कहते हैं।

पर तामसिक प्रवृत्तिकी छाया विद्यमान रहते भी यहांके अधिकारीगण सात्विकताको सर्वथा भूल नहीं जाते। ऋषि मुनि तथा भक्तगणोंने इस देशके जलवायुमें सात्विकताके भावको इतनी दृढ़ताके साथ भर दिया है कि आज भी कोई साधारण किसान भी यदि तीर्थाटन करके आता है और यदि उससे कोई पूछता है कि तीर्थयात्राकी कुछ बातें बतलाओ तो वह उनके लिये तैयार नहीं होता। पर धीरे धीरे उसके हृदयमें इस बातका अभिमान उठने लगता है कि हमने अमुक अमुक तीर्थस्थानोंकी यात्रा की है। यदि किसीसे पूछिये कि क्या ये पुत्र कन्या आपके ही हैं तो वह बड़ीही सरलतासे उत्तर देता है- 'सब ईश्वरके और हैं, मेरा क्या है? भगवानकी आज्ञाका पालन करते हम भी इनको देखभाल कर रहे

लिये जाड़ेकी सुखकर गर्मी, जाड़ेकी ठंडक, गर्मीकी शीतल वायु और बरसातका पानी शीतल स्नान है। इस तरह मान जिन कठिन परिश्रमसे कमाई सम्पत्तिको ये लोग बिना किसी सोच विचार और चिन्ताके उस अज्ञानी मानव तक मिटाकर अदालतों, इन्कमटैक्स और वकील मुख्तारोंके हवाले करते हैं।

अनुवादक

हैं। कितने ही ऐसे लोग हैं जो अपनी ख्यातिसे बड़े ही डरते है। लाखो रुपयोंका गुप्त रूपसे दान कर देते हैं पर यदि किसी भी पत्र या अन्य स्थानमे उनके नाम प्रकाशित कर दिये जाय तो वे दुखी हो उठते है। वे चुपचाप अज्ञातवासमें रहकर अपना काम करते रहना चाहते हैं। ऋषिगणोंके चरणोकी धूरिसे पवित्र की हुई इस भूमिपर आज भी सात्विक भाव सर्वथा लुप्त नहीं हो गया है। इसीलिये भगवानने अपनी असीम प्रेरणासे आज भी सात्विक भावको छिपाकर किसी न किसी कोनेमें रख छोड़ा है यद्यपि उसका प्रकाश थोड़ाही देखनेमें आता है। राजसी वृत्ति भी हम लोगोमें कमही देखनेमें आती है। इस समय हृदय यही कह रहा है, हम लोगोमेंसे तामसी वृत्ति निकलेगी और राजसी वृत्तिका उदय होगा। असावधानी, उदासीनता, मोह, जड़ता, धीरे धीरे दूर हो रहे है। चारों ओरसे उठो, जागोका तुमुल रव सुनाई दे रहा है। भिन्न भिन्न प्रदेश, भिन्न भिन्न लोग, भिन्न भिन्न सम्प्रदायके लोग आज एक दूसरेकी सहायता करनेको उठ रहे है।*

*हिन्दू, मुसलमान और सिखोका मेल वर्तमान युगकी एकताका सबसे ज्वलन्त उदाहरण है। इन जातियोका परस्पर ईर्ष्या.द्वेष और कलह इतिहासप्रसिद्ध है। यहांतक कि भारतको गुलामीकी बेड़ीमें जकड़कर रखनेमें इस भावने अंग्रेज जातिकी असीम सहायता की थी। अंग्रेजोके भारत शासनकी यही नीति थी कि एकको दूसरेसे लड़ाकर दोनोपर शासन करो। ये दोनों जातियां भी एक दूसरेका नाश करनेके लिये इस तरह कटिबद्ध हो गई

पुनः कर्मयोगमे प्रवृत्त हो और उसकी सन्तान फिर एक वार हंस हंसकर गावें:—

आगया है कर्मयुग कुछ कर्म करना सीख लो।
निज जातिपर निज देशपर हस हंसके मरना सीख लो॥
मारनेका नाम मत लो आप मरना सीख लो।
कृष्ण-जन्म-स्थानमे हंसकर विचरना सीख लो॥

मालव-मयूर

राजस्थान (मध्यभारत और राजपूताना) का [illegible]

ा; पृष्ठ-संख्या ४०: मूल्य ३॥ वार्षिक ।

सम्पादक

पं० हरिभाऊ उपाध्याय, महात्मा गांधीके "हिन्दी-नवजीवन" के [illegible] ।

मयूरका जीवन-कार्य

असत्य, अन्याय और अत्याचारका निर्भयता, शान्ति और विनय-पूर्वक विरोध [illegible]
रना तथा राजस्थानकी आन्तरिक शक्तिको जागृत और विकसित करना ।

मयूरकी विशेषतायें

१. सत्य, शान्ति और प्रेम इसके जीवनका धर्म है ।

२. यह विश्व-बंधुत्वका प्रेमी, राष्ट्रीय धर्मका उपासक और भारतीय[illegible] भिमानी है ।

३. यह विवेक-पूर्वक प्राचीनताकी रक्षा करता है और नवीनताका स्वागत।

४. देशी--राज्योंको यह ममत्वकी दृष्टिसे देखता है ।

५. विज्ञापनबाजोंके अनर्थसे समाजको बचानेके लिये इसमें विज्ञापन नहीं लिये जाते । सिर्फ लोकोपयोगी विज्ञापन **मुफ्त** छाप दिये जाते हैं ।

६. ललित कलाओंके नामपर विषय-विलास-प्रेरक सामग्रीका प्रचार करनेकी प्रवृत्तिका यह विरोधी है ।

७. छपाई, कागज तथा पोस्टेजके अलावा किसी किस्मका खर्चा इसपर नहीं लगाया जाता है ।

नोट--सस्ता-साहित्य-मंडलकी उन्नतिके सम्बन्धमें तथा कौन कौनसी पुस्तकें निकलीं और निकल रही हैं आदि सब बातोंका उल्लेख इस पत्रमें विशेष रूपसे रहता है ।

(१) **वार्षिक ग्राहक**—चूँकि [illegible]क पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें पोस्टेज के अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० [illegible] ग्राहकोंको अधिक लग जाता है इसलिये यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अर्थात् तीन रुपया १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च । वार्षिक ग्राहक जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशित पुस्तकें उन्हें लेनी होंगी ।

(२) **जो सज्जन** ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें सदाके लिये लिख लिया जायगा और ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे उनका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोड़कर वी० पी० से भेज दी जावेंगी ।

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई [illegible] रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा ।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें ।

क्योंकि इससे आप बार बार वी० पी० छुड़ानेके झंझटसे बच जावेंगे और पोस्टेजमें भी आपको बहुत ही किफायत रहेगी । और स्थाई ग्राहक [illegible] आठ आने भी आपसे नहीं लिये जावेंगे ।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक

वर्ष १] सस्ती विविध पुस्तकमाला [पुस्तक २

(सस्ती स्त्रीपयोगी पुस्तकमाला)

कन्या-शिक्षा

लेखक

स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी अनेक पुस्तकोंके निर्माता

पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

प्रथम बार] १९२९ [मूल्य ।)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,
अजमेर

लागत का ब्योरा

कागज	९७)
छपाई	१२०)
बाइंडिंग	१३)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	१३०)
कुल जोड़	३६०)
प्रतियां २०००	
लागत एक प्रति	≡)

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका
"हनुमान प्रेस"
३, माधो सेठ लेन, कलकत्ता।

॥ श्री ॥

कन्या-शिक्षा

पहली शिक्षा

महात्मा तुलसीदासने बालक और बूढ़ेको एक समानका बतलाया है। इसीसे दोनोंमें मेल भी खूब रहता है। लड़के अपने मातापिताओंके साथ रहना उतना पसन्द नहीं करते जितना कि अपनी दादीके साथ रहना पसन्द करते हैं। इसके कई कारण हैं, पहला कारण तो यह है कि दोनोंको घर-दुआरका कोई खास काम नहीं रहता। बूढ़ी दादी कोई काम नहीं कर सकतीं, उनके शरीरमें बल नहीं रहता, अतएव काम बतलाने अथवा त्रुटि निकालनेके अतिरिक्त वे कोई काम नहीं कर सकतीं, एक प्रकारसे वे संसारसे अपना सम्बन्ध त्यागकर उसके किनारे बैठी रहती हैं। लड़कोंके लिये भी यही बात है, उनको भी घरका कोई आवश्यक काम नहीं करना पड़ता। वे भी अभी संसारसे अलग ही हैं, उन्होंने अभी संसारमें प्रवेश ही नहीं किया है। दूसरा कारण है, बूढ़ोंका सहनशील प्रकृतिका होना। जवानोंकी प्रकृति जरा रूखी होती है, ये कामकी बातें करना अधिक पसन्द करते हैं अथवा अपने किसी प्रिय विषयकी बातोंमें मशगूल रहते

हैं। लड़कोंके लिये ये बातें नहीं, उन्हें तर्क-शास्त्रका ज्ञान नहीं, अथवा उनका तर्कशास्त्र किसी दूसरे प्रकारका होता है, प्रतिक्षण उनके मनमें अनेक प्रश्न उठते हैं, क्योंकि वे संसारसे बिल्कुल अपरिचित होते हैं, उनके सामने जो चीज आती है वह नयी होती है। उससे परिचय प्राप्त करनेके लिये बालकोंके मनमें बड़ी उत्सुकता होती है। अतएव जिसको और लोग साधारण बात समझते हैं, जिसके विषयमें औरोंकी समझसे प्रश्न हो नहीं हो सकता, उसीके विषयमें लड़कोंके मनमें अनेक प्रकारकी शङ्काएं होती हैं, जवानलोग लड़कोंके सभी प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सकते; क्योंकि उन्हें अवकाश नहीं, पर बूढ़ोंको अवकाश रहता है। बूढ़े इस बातको अपना सौभाग्य समझते हैं कि लड़के उनके पास आते हैं, क्योंकि लड़कोंके साथसे उनका समय आनन्दसे कटता है। तीसरा कारण है बूढ़ोंका जवानोंकी अपेक्षा अधिक विवेकी और धीर होना। बूढ़े इस बातको जानते हैं कि लड़के संसारसे अपरिचित हैं,संसारकी चीजें इनके लिये नयी हैं,ये उनसे परिचय प्राप्त करनेके लिये उत्कण्ठित हैं। अतएव वे धीरतापूर्वक उनके सब प्रश्नोंका उत्तर अपनी बुद्धिके अनुसार देते हैं। जवानोंके समान बूढ़े यह नहीं चाहते कि लड़कोंको इन बातोंका ज्ञान होना चाहिये। इसी प्रकार और भी कई कारण हैं जो बूढ़े और बालकों-में प्रेम उत्पन्न कर देते हैं।

इसी नियमके अनुसार राजेश्वरी भी अपने पितामाताके पास अधिक नहीं रहती थी, किन्तु दादीके पासही उसका स्थान था।

दादीको वह प्रिय थी और दादी उसे प्रिय थीं। दोनों अनेक बातें किया करती थीं।

एक दिन राजेश्वरीने दादीसे कहा—"दादी, रातकी कथा तो मैं समूची न सुन पायी, बड़ी लम्बी कथा थी, क्यों दादी?"

दादीने कहा—"तब तो मैं नाहक ही घंटों कहती रही, अच्छा अब मैं कोई कथा न कहूंगी।"

राजेश्वरीने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—"अच्छा दादी! अब आगेसे न कहना पर जो शुरू की है उसे तो खतम कर दो, कथा अधूरी छोड़ देनेसे आदमी रास्ता भूल जाता है।"

दादीने हंसकर कहा—"ठीक है। अच्छा बेटी कथा रातको कहूंगी। आओ, इस वक्त तुमको कुछ कामकी बात सिखलाऊं।"

राजेश्वरीने कहा—"तुम्हारी कामकी बात मैं न सुनूंगी, पहले कथा खतम कर लो। राजा अपने साथियोंसे जंगलमें बिछुड़ गये यहांतक मैं सुन चुकी हूं।"

दादीने कहा—"तुम्हारे माता पिताने तुम्हारा ब्याह कर दिया, अब वे निश्चिन्त हैं। बेटी, ब्याहके बाद लड़कियोंका दूसरा जीवन शुरू होता है। दूसरेके घरको अपना बनाना पड़ता है, जिनसे जान पहचान नहीं, जिनको कभी देखा तक नहीं जिनका नाम भी कभी नहीं सुना, उन्हें ही अपना समझना पड़ता है, उन्हींकी होकर रहना पड़ता है। इसके लिए कई बातें सीखनेकी जरूरत है, बिना सीखे वे बातें नहीं आतीं। देखती हूं तुम्हारे पिता माता निश्चिन्त हैं। अबतक तुम तिवारीके घर पढ़ने जाया करती थी, वह भी बन्द

हो गया। दो दिन बाद तुम अपनी ससुरार जाओगी। अबतक हमने खेलनेमें बिताया पर अब तो खेलनेसे काम न चलेगा। इन गुड़ियोंसे तुम्हारा काम नहीं चलनेका। बेटी, कन्याओंको अनेक बातें सीखनेकी जरूरत है। ससुरारमें जाकर एक योगीकी तरह रहना पड़ता है, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या आदिका त्याग करना पड़ता है। सेवा-शुश्रूषा करके सास-ससुर, जेठ-जिठानी, आदिको खुश रखना पड़ता है। घर भरकी खबर रखनी पड़ेगी, किसीको कष्ट तो नहीं हो रहा है, यदि कष्ट हो रहा है तो वह दूर करना पड़ेगा। राजेश्वरी, इसीसे मैं कहती हूं कि अब तुम कुछ कामकी बातें सीखो, बेटी! खेल कुछ कम करो।"

राजेश्वरी अभी बारह वर्षकी बालिका है। वह अपनी दादीकी बातें सुनकर डर गयी, कुछ चिन्तित भी हुई। पर वह बुद्धिमती थी, समझदार थी। दादीकी बातें उसने थोड़ी बहुत समझीं। उसने मनही मन इतना ही विचारा कि दादी जो कहने वाली हैं उसका काम आगे पड़ेगा, जब मैं अपनी ससुरार जाऊंगी तब वे बातें काम आवेंगी। पर ससुरारकी यादके साथ ही उसे अपने दुल्हेकी याद आयी जिससे वह लज्जित हो गयी। वह कुछ बोल न सकी, सिर नीचा करके चुप हो रही।

पर दादी इस बातको ताड़ गयीं। दादीने राजेश्वरीकी लाज दूर करनेके लिए कहा—बेटी, तू चुप क्यों है, बोलती क्यों नहीं। देखती हूं मेरी बातोंको सुननेसे तेरा मुंह एकाएक सूख गया, क्यों, डरती क्यों है, बेटी! चिन्ताकी तो कोई बात नहीं।

राजेश्वरी कुछ सोचकर शीघ्रतासे बोल उठी-दादी, तुम क्या कहती हो, मैं तो सोच रही थी कि तुमने जो कथा शुरू की है उसके आगे क्या होगा। राजा अपने साथियोंसे मिलेंगे कि नहीं. क्या जङ्गलमें किसी दैत्यसे तो उनकी भेंट न होगी ?

दादीने कहा-बेटी ! जिस तरह तुम आज छोटी बालिका हो उसी तरह मैं भी एक दिन थी, तुम आज अपनी दादीके पास बैठी हो और कथा सुनना चाहती हो उसी तरह मैं भी अपनी दादीके पास बैठा करती थी और उनसे कथा कहवाया करती थी। मेरी दादी जब मेरी ससुरारकी बात छेड़ती थी, तो मैं भी तुम्हारी ही तरह उसे टाल दिया करती थीं, पर बेटी, मनही मन उन बातोंको सुनना चाहती थी। वे बातें सुननेमें अच्छी लगती थीं, पर मैं चाहती थी कि कोई यह जानने न पाये कि मैं ससुरारकी बातें सुनना चाहती हूं। पर मेरी दादी भी तुम्हारीही दादीकी तरह बड़ी चतुर थीं। उनसे कोई बात छिप न सकती थी, वे मनकी बातें जान लेती थीं। बेटी, बूढ़ोंकी आंख भीतरकी बातें जाननेके लिए बड़ी तीखी होती हैं। बहुत देख सुनकर आदमी बूढ़ा होता है। काले बालोंको एक एक कर सफेद करना पड़ता है, यह सब क्या योंही बिना जाने समझे हो जाता है ? बूढ़े सब बातें जानते हैं, समझते हैं। बेटी, तुम क्या अपने मनकी बात अपनी इस बूढ़ी दादीसे छिपा सकती हो ? छिपानेको कोई बात भी तो नहीं है, क्या यह कुछ चोरी है ? तुम्हारे बाप मा तुमसे कुछ कहते सुनते

हो नहीं, इसीसे मैं तुम्हें सब बातें बता देना चाहती हूं, जो जानती हूं वह सिखा देना चाहती हूं। अच्छा बेटी, तुम इतने दिनोंतक स्कूलमें पढ़ने जाती थी, दिनभर वहीं तुम रहती थी, बतलाओ तो तुमने वहां क्या सीखा।

राजेश्वरी—वहां मैं लिखना पढ़ना सीखती थी। हिसाब, भूगोल, इतिहास, व्याकरण आदि वहां मैंने पढ़े हैं।

दादी—और भी कुछ तुमने सीखा है कि बस यही लिखना ही पढ़ना?

राजेश्वरी—और भी सीखा है। कोट, कुरता, कमीज आदि सीना जानती हूं। ऊनका गुलबन्द, मोजा, जूता आदि बीनना जानती हूं। कपड़ोंपर सूईका काम करना भी थोड़ा थोड़ा जानती हूं।

दादी—अच्छा है, ससुरारमें जाकर गुलबन्द और मोजे बनाकर अपने दुलहाको पहनाया करना तथा अपनी सासके लिए जूते बीन देना, इससे वे लोग तुम्हें बहुत प्यार करेंगे। बेटी, क्या घर-गृरहस्तीके येही आवश्यक काम हैं? मैं नाहक ही तुझे बकती हूं, तुम्हारा क्या दोष है, इस समय हवा ही ऐसी चली है। तुम्हारी मा और बाप भी तो उसी हवामें पले हैं। उन लोगोंकी समझ है कि लड़कीको पढ़ना लिखना सिखा दिया बहुत हुआ, गुलबन्द बीनना, कपड़े सीना आ गया मानो सब कुछ आ गया। जिस लड़कीने हारमोनियम बजाना सीख लिया, उसकी प्रशंसाके पुल बांध दिये जाते हैं, मानों वह स्वयं सावित्री

सीताकी प्रतिमा हो। पर बाप माको क्या है, जब लड़की ससुराल जाती है तब उसे सब भोगना पड़ता है। वहां यह स्कूली शिक्षा किसी काम नहीं आती।

दादी इसी प्रकार व्यंगके साथ, प्रेमके साथ और सरलताके साथ अपनी पोतीसे कह रही थीं। उनका ध्यान अपनी पोतीपर था, अतएव उन्हें मालूम नहीं हुआ कि राजेश्वरीकी माँ वहां आकर खड़ी है, वह सब बातें सुन रही है। दादीकी बात अब खतम होने आई, यह देखकर राजेश्वरीकी मांने कहा—"हमें क्या कहती हैं, अम्मा! हमने कब रोका है, आप सिखाइये न। दूसरो-को तो सीखने जाना है, और राजेश्वरीकी तो दादी ही सब जानती हैं।"

दादीने रूखे स्वरसे कहा—बहू, ऐसी बात तुम क्यों कहती हो? तुमलोग इसे दिनभर स्कूल भेज दो, फिर मैं सिखाऊं कब? स्कूलसे लड़की आयी, फिर पण्डितके पास पढ़ने लगी। यह भी कोई पढ़ाई है? बच्चीकी तन्दुरुस्ती बिगड़ गयी। मालूम नहीं तुम लोगोंने इसे सरस्वती बनानेकी कसम सी खाली है। अब जबसे इसका ब्याह हुआ है तबसे स्कूल जाना बन्द हुआ है, अब समय मिलने लगा है और यह भी सदा मेरे ही पास रहती है। मालूम नहीं, इसने पान लगाना सीखा है कि नहीं, तरह तरहके भोजन बनाना जानती है कि नहीं। बहूको कोई मुंह देखनेके लिए नहीं बुलाता। जो लड़कियां घरके काम-धंधे नहीं जानतीं उनका अपमान होता है, ससुरालवाले वैसी लड़कियोंके बाप माँको

भली बुरी सुनाते हैं। इससे लड़कियोंको तो कष्ट होता ही है, जब बाप माँ देखते वा सुनते हैं तब वे भी दुःखी होते हैं और उनका दुःखी होना स्वाभाविक ही है। अच्छा बहू, तुम अपनी ही बात देखो न, तुम तो ऊनके बहुत काम जानती हो, हारमोनियम बजाना भी तुम्हें आता है, पर यहां आनेपर क्या तुम्हें इन कामोंके लिए अवसर मिला है? भर दिन तो लड़कोंके खिलाने पिलाने तथा घरके और काम-धंधोमें लगी रहती हो, भला बतलाओ इन सब कामोंके लिये समय कहांसे आये। कई स्त्रियां ऐसी भी हैं जो इन कामोंमें हो लगी रहती हैं, उनके लिए घरके काम-धंधे मानों हैं ही नहीं। पर बहू, मैं तो वैसी स्त्रीको एक क्षणके लिए भी देखना पसन्द नहीं करती हूं।

राजेश्वरीकी मांने कहा—अम्मा, मेरे बाप भी यही कहते थे। वे समझते थे कि लड़कियोंको लिखना पढ़ना सिखा दिया, बस हो गया। मेरा तो भाग्य अच्छा था, आपके हाथों पड़ी और आपने मुझे सब सिखा दिया, नहीं तो अम्मा! मेरी क्या दशा होती, जब मैं यह बात सोचती हूं तो घबड़ा जाती हूं। राजेश्वरीके पिता भी यही कहते हैं। उनसे मैंने कई बार कहा। वे कहते हैं, घबड़ानेकी जरूरत नहीं, सब काम समयपर ठीक हो जायगा, कोई गड़बड़ी न होगी, धीरज रक्खो। मैं उनकी ऐसी बातें सुन चुप हो रहती हूं, कुछ नहीं कहती, क्योंकि जब वे कोई बात ही नहीं सुनते तो कहना फजूल है।

दादीने कहा—"बहू, मुझे कोई चिन्ता नहीं। व्रजेश्वर जो कहता

है वह ठीक ही कहना है। उसका मतलब यह है कि इन सब बातों-के लिये मुझसे कहनेकी कुछ जरूरत नहीं. तुम लोग देखो, करो। समझी बहू ? राजेश्वरीकी मां हंसने लगी। दादीने कहा, "हंसो क्यों बहू ? क्या तुम समझती हो कि मैं अपने बेटेका पक्ष करती हूं ? पर नहीं, सो बात नहीं है, मेरे लिये तो तुम दोनों बराबर हो किसी किसीसे बातमें तो तुम मेरे लिये ब्रजेश्वरसे भी बढ़कर हो।"

सासकी बात सुनकर राजेश्वरीकी मां चुप हो गयी। उसने थोड़ा झुककर अपनी सासको प्रणाम किया और वह वहांसे किसी कामके लिये दूसरी जगह जानेके लिये खड़ी हुई।

दादीने कहा-थोड़ी देर ठहरो तुमसे कुछ कहना है। सुनो,अब राजेश्वरीका पाठशाला जाना भी छूट गया, यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ। अब इससे थोड़ा थोड़ा काम लिया करो, इससे यह काम करना सीखेगी, चीजें बना सकेगी, धीरे धीरे सब कामोंका अभ्यास हो जायगा। यह भर दिन योंही मेरे पास बैठी रहती है, मैं जो इसे सिखाऊं उसका तुम अभ्यास करा दिया करना।

राजेश्वरीकी माने कहा-अम्मा, मेरी तो इच्छा बहुत दिनोंसे थी, पर मैं आपसे डरती थी, कहीं आप नाराज न हों कि छोटी लड़कीसे अभी ही मजूरी कराने लगी। अब मैं आपका हुक्म पा गयी।

दादी-बहू, मैं कामसे न डरी, न काम करनेको बुरा समझती हूं। देखो, मैं तुमसे कितना काम लेती थी। उसीका फल है कि आज तुम नौकर चाकरोंके रहते भी अपना सब काम आप ही कर डालती हो।

तुमने सिर नीचा क्यों कर लिया ? अच्छा मैं समझी, नारायणके नामसे तू लजा गयी, क्यों !

राजेश्वरीने कुछ भी नहीं कहा, वह सिर झुकाये बैठी रही। दादीने कहा—बेटी, पहले पहल जब मैं भी तुम्हारे दादाका नाम सुनती थी या उनके संबन्धकी कोई बात सुनती थी, तो लजा जाती थी, पर ऐसा थोड़े ही दिन रहा। फिर लाज चली गयी सदा उनसे बातें होतीं—उनकी चर्चा होती। बेटी, तुम जानती हो ससुरारमें प्रतिदिन पतिसे घरके काम-काजके संबन्धमें बातें करनी पड़ती हैं, दिनमें कई बार सामने जाना पड़ता है, फि लज्जा कैसे रह सकती है। लज्जा स्त्री-पुरुषका प्रधान गुण है. वह स्वाभाविक है, वह सीखनेसे नहीं आती। जिस समय लड़के या लड़कियोंका जन्म होता है, साथ ही लज्जाका भी जन्म होता है और वह जन्म पर्यन्त रहती है। लज्जा कोई बुरी चीज नहीं, इसका रहना आवश्यक है। जिसे लज्जा नहीं वह निर्लज्ज, बेहया, बेशर्म कहा जाता है। जब किसीको गाली देना होता है तब लोग उसे बेशर्म, बेहया, निर्लज्ज आदि कहते हैं, इसका मतलब यही है कि लज्जाका न होना निन्दनीय है। निर्लज्ज स्त्री या पुरुष आदरणीय तो क्या होगा वह घृणित अवश्य हो जाता है, लोग उसकी निन्दा करते हैं। निर्लज्ज भले ही अपने मनमें अपनेको बड़ा समझे, पर लोग उसे बुरा समझते हैं। वह एक तरहका नक्कू बन जाता है। स्त्रियोंके लिए तो लज्जाका होना नितान्त आवश्यक है। घूंघट काढ़ना या कपड़ेमें सिमटकर

रास्तेमें टेढ़ी मेढ़ी होनी चलना लज्जा नहीं है। घूंघटकी भी जरूरत होती है, पर्देकी भी जरूरत होती है, पर समयपर। बेटी, तुमने देखा होगा कि बहुतसी स्त्रियोंका स्वभाव होता है कि जब वे किसी सवारीपर बाहर निकलती हैं तब वह सवारी पर्देसे ढक दी जाती है, पर रास्तेमें पर्दा उठाकर या उसमें कोई छेद हुआ तो उसमें मुंह लगाकर झांका करती हैं।

राजेश्वरीने कहा—हां दादी, मैंने देखा है, यही पड़ोसके मुन्नू बाबूकी दुलहिन अक्सर ऐसा किया करती है।

दादी—एक हीकी तुम कहती हो, सभी औरतें ऐसा ही करती हैं। बहुत कम हैं जो ऐसा न करती हों। यह देखनेमें कैसा बुरा मालूम पड़ता है। यह क्या है सो तो हमारी समझमें नहीं आता। बहुतसी स्त्रियोंको तुमने देखा होगा कि वे घरवालों या उनके परिचितोंके सामने तो घूंघट काढ़ती हैं, पर्दा करती हैं, पर बाहर घूंघुट काढ़ना या पर्दा करना आवश्यक नहीं समझतीं। यह भी आजकल एक लज्जा करनेकी रीति चल गयी है, पर ये बातें बुरी हैं, यह लज्जाका उपहास करना है। लज्जा मनकी बात है, अपनी मर्यादाके अनुसार व्यवहार करना लज्जा है, अपनी मर्यादाके घेरेमें रहना लज्जा है। बेटी, इस बातको कभी न भूलना। मुंह छिपानेका नाम लज्जा नहीं है। बड़े छोटे सबसे लज्जा की जाती है, जिससे जैसा व्यवहार करना चाहिए, उससे वैसा व्यवहार करनेका नाम लज्जा है। तुझे जानना चाहिए कि सच्ची लज्जा क्या है। समझती हो बेटी?

राजेश्वरीने कहा—हां।

दादीने कहा—इसके अलावे और भी कई बातें हैं जिनका जानना तुम्हारे लिए आवश्यक है। उनमें सबसे मुख्य है विनय। विनय और नम्रता दोनों एक ही चीज हैं। विनयी मनुष्यका हृदय कोमल होता है। जिसका हृदय कोमल होता है, वह सुखी होता है, उसका मन प्रसन्न रहता है, उसके हृदयमें उत्तम उत्तम गुणोंका विकाश होता है। बातचीतमें तथा व्यवहारमें नम्रता होनी चाहिए। कहीं नम्रता और कहीं कठोरताका व्यवहार करना बनावटी बात है, वह कृत्रिमता है। हित मित्र, नैहर ससुरार सब जगह विनयपूर्वक बर्ताव करना सबके लिए आवश्यक है। विनयी मनुष्यकी वाणी मीठी होती है। मीठी वाणीका आदर सब जगह होता है। जो लोग कठोर बोलते हैं उनकी बात कोई भी नहीं सुनता। और अधिक क्या कहा जाय नौकर चाकर भी प्रसन्न नहीं रहते। वे भी पीठ पीछे निन्दा करते हैं, गाली देते हैं। कहो, क्या इस तरह अपमानित होना अच्छी बात है।

राजेश्वरीने कहा—दादी, तुम्हारी यह बात सच है। हमारे पड़ोसमें केदारनाथके यहां जो नयी दुलहिन आयी है उसकी बोली बहुत कठोर है। नौकर चाकर तो उससे तंग हो गये हैं। एक दिन उनकी एक नौकरानी हमारे यहां आयी थी, वही सब बातें कहती थी। उसने कहा था कि बड़ी बहू है इसीसे हमलोग ठहरी हैं... भी कितने दिनोंतक इसका कोई ठिकाना नहीं।

दादीने कहा—बेटी, मालूम हुआ तुमने मेरी बात समझी है। मीठी वाणीका आदर सब जगह होता है। तुम हजार अच्छा काम करो पर तुम्हारी बोली कठोर है तो लोग तुमसे खिंचे रहेंगे, तुम्हारे पास आनेसे लोग डरेंगे। मीठी बोली होनेके लिए चित्तको सदा प्रसन्न रखना आवश्यक है। जिसका कलेजा जलता होगा, वह भला मीठी बोली कैसे बोल सकेगा? जो क्रोधसे, ईर्ष्यासे भीतर ही भीतर भूसेकी आगके समान लहकता रहेगा, उसके मुंहसे मीठी बोली कैसे निकल सकती है? बहुत लोग घमण्डके मारे फूले रहते हैं। वे किसीसे प्रेमपूर्वक बोलना अपना अपमान समझते हैं। ऐसे मूर्खों की बुरी दशा होती है। उनकी ओर आंख उठाकर देखना तक कोई पसन्द नहीं करता। जो हंसमुख हैं, जिन्हें किसी बातका घमण्ड नहीं, वे सबके प्यारे होते हैं, उनका सब जगह आदर होता है। लोग उन्हें अपनी चीज समझते हैं, उनके पास जाकर दो घड़ी बैठनेमें लोग प्रसन्न होते हैं और इसे अपना सौभाग्य समझते हैं। विशेषकर स्त्रियोंके लिये इन गुणोंका होना नितान्त आवश्यक है। उन्हें बोलने चालनेका ध्यान रखना चाहिए, बहुतसी पैर पटक पटककर चलती हैं, यह ठीक नहीं, यह सुलक्षण नहीं है। बहुतसी स्त्रियां बात बातमें हंसा करती हैं, चिल्ला चिल्लाकर बातें करती हैं, ये सब ठीक नहीं। यह कुलक्षण हैं। धीरे धीरे चलना चाहिए जिसमें आवाज न हो, किसीको चलना मालूम न पड़े। धीरे धीरे बोलना चाहिए। ऐसा बोलना जो सुननेवालेको

बुरा मालूम पड़े, जो कर्कश हो, ठीक नहीं। जोरसे हंसना भी उचित नहीं। स्त्रियोंको ऐसा हंसना चाहिए जिससे थोड़ी दूरपर बैठा आदमी भी न सुन सके। हंसना किसीको मालूम न होना चाहिए, मुंहकी हंसी मुंहमेंहो रहे तो उत्तम।

राजेश्वरीने पूछा—दादी, क्या इन्हीं बातोंको जानना आवश्यक है?

दादी—इनके साथ साथ और बातोंके जाननेकी भी जरूरत है, पर उनके सम्बन्धमें फिर कभी कहूंगी। अब मैं तुमसे एक और आवश्यक बात कहती हूं, ध्यान देकर सुनो।

राजेश्वरी दादीकी बातें सुननेके लिए ध्यान लगाये बैठी थी, दादी कुछ कहना चाहती थीं, इसी समय किसीने राजेश्वरीको बाहरसे पुकारा। राजेश्वरीने कहा—आती हूं, भैया, मैं यहां दादीके पास बैठी हूं।

दादीने कहा—जा बेटी, तेरा पिता आया है। अब सन्ध्या भी हो रही है। अपने पिताको पैर धोनेका पानी दो। देखना उनके सन्ध्या करनेका स्थान ठीक हुआ है कि नहीं।

राजेश्वरीने कहा—दादी, तुमभी अब उठो, जप करोगी न? तबतक मैं नौकरानीको भेज देती हूं। थोड़ी देरमें तुम्हारे स्नानके पहले ही मैं भी आजाऊंगी।

दूसरी शिक्षा

दिन बीतते देर नहीं लगती, सूर्योदय और सूर्यास्त होना ही है, सूर्य उदय हुआ, उसने प्रकाश करनेकी अपनी अवधि पूरी की और पुनः अस्त हुआ। बहुत पहले यह क्रम जारी हुआ था, आज भी जारी है, आगे भी जारी रहेगा, ऐसा अनुमान करना कुछ बेजा नहीं है। जो इस सूर्योदय और सूर्यास्तको बुद्धिपूर्वक परिश्रमसे बिताते हैं, वे सुखी होते हैं, संसारमें जीते जी भी वे कुछ काम करते हैं और जीवनके पीछेके लिए भी कुछ काम छोड़ जाते हैं। जो सूर्योदयको काममें लग जानेकी सूचना समझते हैं और सूर्यास्तको कामसे छुट्टी पाकर विश्राम करनेकी सूचना समझते हैं वे कर्मी कहे जाते हैं और उन्हें किसी बातकी कमी नहीं रहती, वे किसीके सामने हाथ नही फैलाते। वे बीमार होते हैं सही, पर बीमार होना उनका स्वभाव नहीं होता। उनको देखकर किसीकी आंखोंमें दर्द नहीं होता, क्या घर और क्या बाहरवाले किसीको भी वैसे आदमीके विषयमे चर्चा करनेका अवसर नहीं मिलता, कोई उसे बुरा नहीं कहता, कोई उसकी निन्दा नहीं करता। राजेश्वरी भी अपनी दादीके उपदेशसे घरका काम तो सीख ही गयी है, साथ ही समयको किस प्रकार काममें लाना चाहिए, समयका उपयोग कैसे कामोंमें करना चाहिए आदि बातें

भी जान गयी है और उसीके अनुसार वह अपना काम भी करती है। राजेश्वरीको अपने कामोंका ऐसा अभ्यास हो गया है कि जहां देखिए वहीं राजेश्वरी, जिस कामपर देखिए वहीं राजेश्वरी। प्रातः काल उठते ही अपने नित्य कर्मोंसे निवृत हो लेती है, दादी माता आदिको पानी देती है, उनके मुंह धोनेके लिए दतौन रख देती है, पुनः पिताकी पूजाके सब सामान ठीक ठीक यथास्थान रख देती है। आसन लगाना, बिछौना बिछाना, पान लगाना आदि उसके नित्य-कर्म हो गये हैं। इन कामोंमें वह नौकर चाकरोंकी राह नहीं देखती। वह सब काम खुद कर लिया करती है। राजेश्वरीके पिताको आजकल बड़ा सुख है, जिस चीजकी उन्हें जब जरूरत होती है तब उन्हें वह चीज ठीक जगह-पर रखी मिलती है, उन्हें किसी चीजके लिए किसीसे कहना नहीं पड़ता। उसकी स्मरणशक्ति, उसका अभ्यास, उसकी निरालस कार्यपटुता देखकर सभी चकित होते थे, व्रजेश्वर अपनी कन्याके गुणोंपर मुग्ध थे। राजेश्वरीके भाई और बहन भी उसे बहुत चाहते थे। स्कूलसे आकर वे राजेश्वरीसे ही जलपान मांगते थे, भोजन मांगते थे। इससे यह न समझना चाहिए कि राजेश्वरी अब सदा घरके कामोंमें ही लगी रहती है, उसे और कोई काम करनेका अवसर ही नहीं मिलता। यह बात नहीं है। वह सदा दादीके पास नियमसे जाती और उनसे अनेक बातें सीखती। किसी दिन देवताओंके सुन्दर स्तोत्र याद करती, किसी दिन किसी भोजनकी वस्तु

बतानेकी रीति सीखती। कभी सुन्दर भक्ति रसपूर्ण भजन सीखती। वह दादीके साथ सोती थी। अभी भी रातको बिना दादीसे कोई कथा कहवाये वह सोती न थी। प्रातःकाल उठकर दादीको प्रणाम करती थी और मनही मन दादीके बतलाये श्लोकोंका पाठ करती थी। उनमेंका एक श्लोक यह भी था—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

पुनः हाथ जोड़कर पृथिवी-माताको प्रणाम करती थी, पुनः स्नान, पूजन आदि नित्य कर्ममें लग जाती थी। वह दादीके साथ बैठकर प्रतिदिन पूजन किया करती थी। इधर उसका ऐसा नियम होगया था कि बिना पूजन किये जलपान तक नहीं करती थी। दादी भी उसके कार्योंपर दृष्टि रखती थीं, चाहे वे कहीं रहे पर राजेश्वरीपर उनका ध्यान रहता था। स्नान, पूजा करनेके समय वे उसे साथ रखती थी।

आज राजेश्वरीने स्नान करके अपनी और दादीकी पूजाका सब प्रबन्ध कर दिया, पर दादी नहीं आयीं, उनके आनेमें आज किसी कारणसे विलम्ब हो गया था। राजेश्वरी पूजा कर रही थी। थोड़ी देर बाद दादी आयीं। उन्होंने कहा, क्यों बेटी! आज मेरे आनेमें थोड़ी देर हो गयी, क्यों? तुम्हारी पूजा क्या समाप्त हो गयी? दादी आकर आसनपर बैठीं, उन्होंने देखा सब सामग्री ठीक है, शुद्धतापूर्वक जो जहां रखना चाहिए वह वहीं रखी है। दादीने कहा, बेटी अक्षत और फूल कहां है?

बनानी शुरु की। उसकी दक्षता और सावधानी देखकर माता बहुत प्रसन्न हुईं, पर कुछ बोल न सकीं। उनकी इच्छा होती थी कि राजेश्वरीको शाबाशी देकर मनका आनन्द प्रकाशित करूं, पर वैसा वह कर नहीं सकती थीं। उनको मालूम था कि राजेश्वरी अपनी तारीफ सुनते ही बेतरह बिगड़ खड़ी होती है, जो काम करती रहती है वह छोड़ देती है या जान-बूझकर बिगाड़ देती है। इसी कारण माता कुछ बोल न सकती थीं, वह मनही मन प्रसन्न हो रही थीं। रसोई तैयार होनेपर सब चीजें राजेश्वरीने सावधानीसे रख दीं जिससे कोई खराब न होने पावे, कीड़े मकोड़े न पड़ने पावें, चीजें ठंडी न हो जायं। राजेश्वरीने कहा—अम्मां! भोजन तैयार है, बाबूजीको भोजन कराओ। मातासे ऐसा कहकर राजेश्वरीने आसन बिछा दिया और लोटा ग्लास रख दिया।

आज राजेश्वरीके पिता भोजन कर चुके थे। स्त्रियोंने अभी भोजन नहीं किया था। राजेश्वरी माता, दादी और अपने लिये परोस रही थी, उसी समय किसीने भोजन मांगा। भोजन मांगनेवाला भूखा था, गरीब था। अभी रसोई-घरमें राजेश्वरीकी माता और दादी नहीं आयी थीं। राजेश्वरीने भूखेकी आवाज सुनते ही झट अपना भोजन ले जाकर उसे दे दिया और हाथ पैर धोकर रसोई-घरमें चली गयी, उस समय भी उसकी दादी और माता नहीं आयी थीं। राजेश्वरीने समझा कि मेरा बाहर जाकर भोजन दे आना किसीने देखा नहीं। पर बात ऐसी नहीं

थी. राजेश्वरी भोजन देने गयी है यह उसकी माता और दादीने भी देख लिया था, और जान-बूझ कर वे अनजान बनी थीं। दादी और माता भोजन करने बैठीं। दादीने थाली देखते ही बनावटी क्रोध दिखाकर कहा, क्यों बेटी, आज हमको इतना दे दिया है, क्या तेरी दादी मरभुक्खी है क्या? बेटी, क्या मैं इतना खा सकूंगी? राजेश्वरी कुछ लज्जित हुई, वह अकचकाकर बोली—"क्यों क्या अधिक है दादी? अधिक होगा तो थोड़ा ही। आज मुझे खाना नहीं है, सवेरेसे मन कुछ भारी मालूम हो रहा है, इसीसे आपकी थालीमें थोड़ा अधिक भात चला गया हो। नही तो मैंने तो अधिक नहीं रखा था।" दादीने एक थाली मंगवायी और उसमें अपनी थालीसे थोड़ा थोड़ा भोजन निकालकर रखा, तथा राजेश्वरीसे खानेके लिए कहा। राजेश्वरी बड़े पशोपेशमें पड़ी, वह पहले कह चुकी है कि मेरी तबीयत अच्छी नही है, मैं नहीं खाऊंगी, अब दादी खानेको कहती हैं, क्या करूं? खाऊं कि नहीं? पर दादीके कहनेसे उसे खानेके लिए बैठना पड़ा। दादीने बारबार उससे इस ढंगसे कहा जिससे उसे विचार करनेका मौका ही न मिला। वह भी खाने बैठ गयी। माता और दादी दोनों खाही रही थीं इसी समय दादीने एक कथा छेड़ दी। यह कथा दादी अपनी बहूसे कहने लगी। उन्होंने कहा, किसी समय एक ब्राह्मण बड़ा गरीब था, पर गरीबीके कारण उसने अपने आचार-व्यवहारमें परिवर्तन नहीं किया था। एक दिन ऐसी बात हुई कि चार सन्ध्या उपवास करनेके पश्चात् पांचवीं

सन्ध्याको उन लोगोंको भोजन मिला, सो भी भोजन और कुछ न था, केवल सत्तू था। सो भी सेरभर और खानेवाले चार थे— ब्राह्मण ब्राह्मणी और उनका पुत्र और बहू। उन लोगोंने भोजन भगवान्को अर्पित किया और वे खानेको बैठना ही चाहते थे कि उसी समय किसीने भोजन मांगा। वे बड़े पशोपेशमें पड़े, कई सन्ध्याके उपवासके बाद आज भोजन मिला, वह भी खा न सके; वे लोग थोड़ी देर चुप रहे। ब्राह्मणने कहा, तुम लोग भोजन करो, हमारा हिस्सा इनको दे दो। ब्राह्मणीने कहा, यह कैसे होगा, आप भोजन करें, मैं अपना हिस्सा दूंगी। लड़केने पिता माताकी बातोंका विरोध किया, उसने कहा मैं अपना हिस्सा दूंगा।

ब्राह्मणकी पुत्रवधूने भी अपना हिस्सा देनेका बड़ा आग्रह किया। अपनी अपनी बात साबित करनेके लिए उन लोगोंने खूब प्रमाण दिये। अन्तमें निश्चित हुआ कि अभी सब लोग बैठें, पहले अतिथिको भोजन करा लिया जाय, तब जो बचेगा उसीमें और सब लोग खायंगे। यही बात पक्की रही। अतिथि भोजनके लिए बुलाये गये, उनके आगे भोजन परसा गया। पर अभाग्य-वश वे अल्पाहारी न थे, उन्होंने चारोंके हिस्सेका भोजन कर लिया। भोजन करनेके पश्चात् हाथ मुंह धोकर अतिथिने उन लोगोंका समाचार पूछा। जो समाचार था वह बतलाया गया। अतिथि बहुत दुःखी हुए और उन लोगोंका धर्मभाव, अतिथि-प्रेम देख-कर वे प्रसन्न भी हुए। वे वहींसे चले गये, तीन चार घन्टेके

बाद लौटकर आये, कई आदमियोंसे वे भोजनकी बहुतसी सामग्री लिवा ले आये थे। उन्होंने आकर देखा कि वह ब्राह्मण अपने परिवारके साथ बेहोशसा पड़ा है, उसके हाथ पैर ढीले पड़े हुए हैं। अतिथिने उनको उठाया, साथमें जो दूध वे लाये थे उसमेंसे उन्हें पिलाया, थोड़ी देरमें उनको कुछ बल मालूम हुआ, तब अतिथिने उन्हें भोजनकी सामग्री दी और भोजन बनानेके लिए कहा। भोजन तैयार हुआ, ब्राह्मणने सपरिवार भोजन किया। पुनः अतिथिने कहा, महाराज अब हम प्रसाद पावेंगे।

भोजनके पश्चात् ब्राह्मणने जब अतिथिका परिचय पूछा तब उन्हें मालूम हुआ कि ये वहांसे थोड़ी दूर परके एक गांवमें रहते हैं और सेठ हैं।

इस प्रकार दादीने अपनी कथा समाप्त की। राजेश्वरी बड़े ध्यानसे उनकी कथा सुन रही थी, मनही मन वह सोच रही थी कि क्या इन्होंने जो मैंने भूखेको अन्न दिया है वह देख लिया है? पर उसने कुछ कहा नहीं। कथा समाप्त करके दादीने राजेश्वरीकी ओर देखा, उसकी थालीमें भोजन अभी बहुत अधिक पड़ा है। दादीने कहा, क्यो खाती क्यों नही? उसने कहा खाती तो हूं। दादीने कहा अच्छा। पुनः दादी कहने लगी, बेटी, अपने धर्ममें भूखेको भोजन देना, अपने घरपर आयेका सत्कार करना बड़ा पुण्य बतलाया गया है। दसको खिलाकर खाना बड़े भाग्यकी बात है। अपना पेट पालनेवाले अपने मनसे बड़े हो सकते हैं पर यथार्थमें वे अधम हैं। अपना पेट तो

पशु भी पालते हैं, पशुओंसे तो मनुष्यमें कुछ भेद होना चाहिये। इतनी बातें होते होते भोजन समाप्त हो गया। दादीने अतिथि-धर्मका महत्व अच्छी तरह समझा दिया। उठनेके समय दादीने कहा, बेटी, मैं आशीर्वाद देती हूं, तुम्हारा मन सदा धर्ममें रहे, तुम सदा भूखोंको भोजन दिया करो, तुम दसको खिलाकर खाओ।

एक दिनकी बात है, राजेश्वरी अपनी माताके साथ घरके कामोंमें लगी थी, कुछ देर काम करनेके पश्चात् शायद वह थक गयी और घरके चौकठेपर बैठकर विश्राम करने लगी। उसी समय कहींसे दादी आ पहुंचीं। उन्होंने राजेश्वरीको चौकठेपर बैठी देखकर पूछा,क्यों बेटी,बैठी क्यों हो। राजेश्वरीने कोई उत्तर न दिया। दादीने कहा, बेटी, थकनेपर विश्राम करना ही चाहिए, हम लोग भी विश्राम करती थीं, पर क्या बेटी चौकठेको छोड़कर दूसरी जगह विश्राम करनेकी नहीं है ? वहांसे उठकर दूसरी जगह बैठो। चौकठ, चक्की, सिल, सन्दूक इनपर बैठना मना है, गृहस्थके घर ये सब चीजें बैठनेके काम नहीं आतीं। यह रिवाज बहुत दिनोंसे चला आता है, ऐसा क्यों चला आता है इस बातके पूछनेकी जरूरत नहीं, पूछना भी न चाहिए, इसे हम लोग अपना धर्म समझती हैं। यह न समझना कि यह स्त्रियोंहीके लिए आवश्यक है, पुरुषोंके लिये नहीं, स्त्री और पुरुष दोनोंहीके लिए यह समान बात है। जो हिन्दू पुरुष धर्म मानते है, पुराने रीति-रिवाजोंका मानना अपने लिए आवश्यक समझते हैं, वेभी चौकठपर नहीं बैठते। बहुतोंकी आदत होती है कि

वे पैरपर पैर रखकर बैठते हैं. पर ऐसा करना उचित नहीं, यह सदाचार नहीं। नाखूनसे मिट्टी खोदना भी मना है। बहुत लोग जब बैठते हैं. कोई काम नहीं रहता, उस समय वे कोयलेसे, लकड़ीसे या और किसी चीजसे जमीनमें लकीर खींचा करते हैं, यह आदतभी बुरी है। ऐसा भी न करना चाहिए। बहुत लोग दांतोंसे नख काटा करते हैं। आजकल तो मैंने देखा है पढ़े लिखे लोग भी दांतोंसे नख काटना उत्तम समझते हैं, पर यह आदत बड़ी हानिकारी है, ऐसा नहीं करना चाहिए। और सुनो बेटी, जल्दी कपड़ोंको मैला कर देना और उन्हीं मैले कपड़ोंको पहने रहना बड़ी बुरी आदत है। इससे स्वास्थ्य खराब होता है, मन बिगड़ा रहता है। इसलिये कपड़ोंको सदा साफ रखनेकी कोशिश करनी चाहिए। मैले कपड़े न पहनने चाहिए। बातचीत करनेमें आंखें मटकाना हाथ चमकाना और गर्दन हिलाना ठीक नही, यह आदत भी बड़ीही भद्दी है। बहुत लोगोंका ऐसा अभ्यास होता है, पर देखनेवालोंको यह बड़ा बुरा मालूम पड़ता है। बहुत सी स्त्रियां बालोंकी परवा नहीं करतीं, वे चाहे जैसे रहे रहने देती हैं। इससे क्या होता है कि उनकी बनायी रसोईमें जरूर खाने वालोंको एक दो बाल मिल जाते हैं इससे उनकी निन्दा होती है, वे फूहड़ समझी जाती हैं। क्या यह अच्छी बात है? बहुतसी स्त्रियां और पुरुष भी जब समय मिला सो जाते हैं, उनके सोनेका कोई समय ठीक नहीं रहता। जब देखो उन्हें सोते पाओगी। क्या यह लक्षण अच्छा है? नीतिके पण्डितोंका कहना है कि ऐसा

करनेवालोंके यहां लक्ष्मी नहीं रहतीं। ये बातें छोटी छोटी मालूम
पड़ती हैं पर इनका फल बहुत अच्छा होता है। कन्याओंको इनका
पालन बहुत आवश्यक है ; क्योंकि वेही घरकी लक्ष्मी हैं, उन्हींके
उत्तम गुणोंके सहारे घर सुखी होता है। क्यों बेटी, समझती हो ?
भूलना मत। राजेश्वरीने कहा, दादी, ये बातें तो मैं समझ गयी,
भूलूंगी नहीं। सीताकी कथा जो बाकी है उसको आज पूरा
करोगी न ? दादीने कहा, हां। कामकाजसे फुरसत पाकर आओ,
विश्रामके समयमें वह कथा पूरी करूंगी।

उस दिन बड़ी गर्मी थी। अभी भी दोपहर नहीं हुआ था, पर
लोग घबड़ा रहे थे, छोटे लड़के खा पीकर सो गये थे, कहीं
किसीकी आवाज सुन न पड़ती थी, गांवके गाय बैल भी ठंढी
जगहमें बैठकर विश्राम कर रहे थे। घरकी स्त्रियां कोई सो गयी
थी और छोटी उमरकी स्त्रियां चार पांच एक जगह बैठकर ताश
खेल रही थीं। छोटी छोटी लड़कियां कुछ सी रही थीं, कोई अपनी
गुड़ियोंके लिये पोशाक तैयार कर रही थीं। किसी घरमें बूढ़ी
स्त्रियां रामायण आदि धर्मग्रन्थ पढ़ रही थीं, कुछ स्त्रियां बैठकर
सुन रही थीं, कुछ नाजुक मिजाजकी स्त्रियां पलंगपर पड़ी थीं और
करवटें बदल रही थीं। वे बहुत व्याकुल थीं, हाथमें पंखा लेती थीं
फिर रख देती थीं। इन सबसे अलग स्त्रियोंका एक और दल था
जो गाँव भरकी स्त्रियोंका समालोचन करता था। कौन कैसी है,
फलानेकी नयी बहू अच्छी है या फलानेकी, इसी विषयका तर्क-
वितर्क उस दलमें होता था। कोई किसीके अनुकूल अपना

विचार प्रकट करती थीं और दूसरी उसीके प्रतिकूल। देखते देखते उनमें गर्म गर्म बातें होने लग जाती थीं, और बैठे बैठाये झूठे ही उनमें कलह हो जाता था।

राजेश्वरीकी माता उस समय अपने घरके कामकाजमें लगी थीं। राजेश्वरी भी उनके साथ थी, दोनों मिलकर काम-कर रही थीं। राजेश्वरी बारबार मातासे कहती थी कि मां, तुम बड़ी देरसे लगी हो. अब थोड़ी देर विश्राम करो. काम भी तो हो ही गया है, मैं ही कर लेती हूं। राजेश्वरी बीच बीचमें कई बार ऐसा कह चुकी, तब रमाकी मांने उसकी ओर देखा। राजेश्वरीने हंसकर सिर झुका लिया। इसी समय गांवकी कई स्त्रियां राजेश्वरीके घर आयीं, ये राजेश्वरीकी माताकी सखी थीं। ये प्रायः अवकाश मिलनेपर उसके घर आया करती थीं। उन लोगोंमेंसे एकने राजेश्वरीकी मांसे कहा,क्यों बहू,तुम्हें अभीतक फुरसत नहीं? यह दुपहरिया क्या काम करनेकी है? नौकरानी तो है, उससे क्यों नहीं करा लेती? राजेश्वरीकी माताने कहा-आती हूं, आज जरा देर हो गई है। दूसरी-चाची तो रोज ऐसेही कहा करती हैं। इन लोगोंकी बातचीत सुनकर दादीको मालूम पड़ा कि उनकी बहू और राजेश्वरी दोनों काममें बझी हैं। तब उन्होंने राजेश्वरीको पुकारा, और कहा—बेटी, आओ, सीताकी कथा समाप्त कर दूं। राजेश्वरीकी मांने कहा-जा बेटी, दादी बुलाती हैं। राजेश्वरीने कहा, तुम्हारे तो कई आदमी आकर बैठी हैं,तुम जाओ मैं भी आती हूं। राजेश्वरीकी मांने उसकी ओर देखकर हँस दिया। उन लोगोंका

काम भी खतम ही हो चुका था, शीघ्रही समाप्त करके वे दोनों चली गयीं। राजेश्वरी दादीके पास गयी, जाकर उसने एक चटाई बिछा दी। उसीपर दादी बैठीं और वह खुद भी बैठी। बैठ जानेके पश्चात् दादीने कहा, बेटी, रामायण पढ़ो। राजेश्वरीने पोथी उतारी और पढ़ने लगी। सीताकी "अग्नि-परीक्षा"की कथा जब आई तब दादीने कहा, धन्य धन्य सीता, तुम तुम्हीं हो, तुम्हारी जैसी स्त्री न हुई और न होगी। राजाकी कन्या और राजाकी बहू होकर भी तुम वनमें गयी, जंगलके ऊबड़खाबड़ और कटीले राहोंमें चलना प्रसन्नतासे स्वीकार किया, जंगलके बनैले जानवरोंकी परवा नहीं। स्वामी जंगलमें जा रहे हैं, स्त्री घरमें रहकर सुख कैसे भोग सकेगी पति दुःख भोगेगा, स्त्रीको भी दुःख भोगना चाहिए। पति जंगलों भटके और स्त्री महलोंमें सुख भोगे, यह किसी प्रकार नहीं हो सकता। सीता ऐसा न होने देंगी। सास रोकेगी उनसे प्रार्थना करके सीता पतिके साथ जानेकी आज्ञा लेंगी। स्त्री स्वामीकी दासी है, फिर वह स्वामीको कैसे छोड़ सकती है? बेटी, देखती हो, क्या आजकलकी लड़कियां इन बातोंको समझती हैं। वे तो अपने ही सुखके लिए व्यग्र रहती हैं। जिस तरह होता है, चाहे स्वामीको तकलीफ उठानी पड़े कोई चिन्ता नहीं, उन्हें सुख चाहिए। कितना समय बदल गया। कहां सीता, और कहां आजकलकी विलासपरायण स्त्रियां! भोजन नहीं है, सोनेके लिए कोई बिछौना नहीं है, कुछ परवा नहीं, थोड़ेसे कन्द मूल फलसे ही सीता सन्तोष कर लेंगी, कुशके आसनपर ही सो

लेंगी। फिर भी वे दुःखी नहीं, इसके लिए एक दिन भी उदास होते किसीने नहीं देखा। सीताने सदा एक ही बातका प्रयत्न किया स्वामीको कष्ट न होने पावे, इसीके लिए उनका सारा प्रयत्न था इसीके लिए उनका सारा उद्योग था। सीता, तुम्हारे भाग्यमें कितना कष्ट था! क्या जंगलके कष्ट तुम्हारे लिए कम थे जो रावण तुम्हें हर ले गया! उसने कितनी तकलीफें दीं, कितना सताया, कितना प्रलोभन दिया, पर तुम अपने धर्मपर अचल अटल रहीं! तुम रावणके घर रहीं, पर निर्भयतापूर्वक अपने सतीत्वका तुमने पालन किया। ओह, कितनी दृढ़ता है, कितनी निर्भयता है! सीताने अपने धर्मका पालन किया और धर्मने सीताका उद्धार किया। फिरसे सीताने स्वामीके चरणोंका दर्शन पाया, दम्भी और पाखण्डी रावणका विनाश हुआ। उसपर अग्नि-परीक्षा! कितना विकट तिरस्कार है! लोगोंका कितना घृणित अविश्वास है! पर सीता इस परीक्षासे भयभीत होने-वाली थोड़े थीं। संसारने देखा, स्वयं रामचन्द्रने देखा कि स्वयं अग्निदेव सीताको लेकर रामचन्द्रके सामने आये हैं और उन्होंने सीताकी निर्दोषिताकी साक्षी दी है। सीता साक्षात् लक्ष्मी थीं, सीताकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

राजेश्वरीने कहा—दादी, उस दिन तो तुम सावित्रीकी कथा कहती थी, वे भी तो सती थीं।

दादीने कहा, हां बेटी, सावित्री भी सती थीं और दमयन्ती भी। उनके सतीत्वकी भी विकट परीक्षा हुई है। जो मनुष्य

वैसी विकट परीक्षामें पूरा उतरे,उसे क्या मनुष्य कहना चाहिए ? वह तो देवताओंसे भी बढ़कर देवता है। बेटी, वे लोग मनुष्य नहीं थे, मनुष्योंको धर्मके कर्तव्यकी शिक्षा देनेके लिए उन लोगोंने मनुष्य-शरीर धारण किया था। बेटी, ये बातें क्या इस युगकी हैं, ये सतयुगकी बातें हैं। ये बातें अब देखनेमें काहेको आवेंगी। अभी अपने लड़कपनमें जो बातें हमलोग देख चुकी हैं, वे भी तो अब नहीं देखी जातीं। बेटी, मैं छोटी थी, शायद मेरी उमर सात आठ वर्षकी हो, थोड़ी थोड़ी याद है, मेरे दादाकी मृत्यु हो गयी थी, उनका शव लेकर लोग गये। मेरी दादी उस समय थीं, घरके सब लोग रोते थे। पर दादी एक दूसरा ही काम कर रही थीं। जब मेरे दादाका शव लेकर लोग गये, तब मेरी दादी अपने घरमें गयीं। उन्होंने सधवाका सब श्रृङ्गार किया। सिन्दूर लगाया, साड़ी पहनीं, पान खाया, और हंसती हुई जाकर दादाकी चितामें बैठ गयीं। कितना बड़ा साहस था, धधकती चितामें उन्होने प्रवेश किया, मानों किसी घरमें जाती हों, वे प्रसन्नतापूर्वक दादाके शवके साथ जल गयीं, चेहरेपर सिकन न आयी, हंसती रहीं। उस समय उनका मुख-मण्डल एक दिव्य तेजसे जगमगा रहा था। इधर लोग मेरी दादीको ढूंढ़ते रहे; पर दादाका अन्तिम संस्कार करने गये थे, वे जब लौटकर आये तब सब बातें मालूम हुईं।

राजेश्वरीने पूछा, क्यों दादी, तुम्हारी दादीको जलनेमें कुछ कष्ट मालूम न हुआ।

दादीने कहा—नहीं, बेटी, उन्हें नरक जानेका होगा। वे तो बड़े भारी कष्टसे बचीं, वैधव्यका दुःख तथा आगमें जल मरनेके कष्टसे कम है। वे उस बड़े कष्टसे बच गयीं, वे [illegible] थीं, विष्णुलोकको गयीं।

राजेश्वरीने पूछा—क्या आज भी इस तरह कोई स्त्री सती होती है? यदि कोई हुई हो तो उसकी बात कहो।

दादीने कहा—नहीं बेटी, अब तो यह रिवाज ही उठा दिया गया, अब कोई सती होने नहीं पाती, कानूनसे रोक है।

राजेश्वरीने कहा—रोक क्यों हुई? क्या इसमें कोई बुराई थी?

दादीने कहा—बेटी, बुराई न होनेपर भी बुराई कर दी गयी थी, सती होनेके नाम जबरदस्ती स्त्रियां आगमें जलायी जाने लगी थीं, तब बङ्गालके राजा राममोहनरायने इसके रुकवानेके लिए बड़ा प्रयत्न किया और कानून बनाकर यह रिवाज रोक दिया गया।

राजेश्वरीने कहा—अच्छा दादी, जब रोक नहीं हुई थी, तब क्या सभी सती होती थीं, कोई भी विधवा जी नहीं सकती थी?

दादीने कहा—नहीं,पहले यह बात थी कि सती होना बुरा नहीं समझा जाता था,इसके लिए कोई रोक न थी पर ऐसा नहीं होता था कि सभी सती हों। बात यह थी कि जिसकी इच्छा होती थी वह सती होती थी और जिसकी इच्छा न होती वह सती न भी होती। इसके लिए कोई जोर जबरदस्ती न थी। जो सती

नहीं होतीं वे पतिव्रता न थीं, उनमें पतिप्रेम न था, यह भी बात न थी। अपने ग्रन्थोंमें कितनी ही सती साध्वी स्त्रियोंकी कथा पायी जाती है, जो पतिकी मृत्युके बाद भी जीती रहीं। रामायण महाभारतमें कौशल्या सुमित्रा कुन्ती आदि कितनी ही सती साध्वी स्त्रियोंकी कथा प्रसिद्ध है। इन लोगोंने विधवा-जीवन विताया था, पर क्या वे किसीसे कम सती थीं?

उस समय दिन ढल चुका था। दादीने कहा—बेटी, अब पुस्तक बन्द करो, मैं पूजा करूंगी, तुम भी जाकर देखो तुम्हारी मां क्या करती हैं।

तीसरी शिक्षा

राजेश्वरीके ससुरालवालोंने उसे बुलाया है। वह इसके पहले एक बार ससुरालसे हो आयी। उस बार वह दो महीने ससुरालमें थी। फिर वह अपनी दादीसे कहलवाकर चली आयी, दादीने उसे बुला लिया। तबसे वह अपने पिताहीके घर है। छ महीने हो गये। जानेका कोई अच्छा मुहूर्त ही न था। जब अच्छा मुहूर्त मिला तब राजेश्वरीके श्वसुरने उसको भेजनेके लिये उसके पिताके यहां लिखा। पिताने भी लिख दिया कि आप उस दिन आकर लिवा ले जाइये। राजेश्वरीको भी यह बात मालूम हो गयी है, तबसे वह बहुत लजाती है, किसीसे बोलती चालती नहीं, बोलती भी है तो बहुत कम और सो भी किसी किसीसे।

राजेश्वरी ससुराल जायगी, यह खबर गांववालोंको भी मालूम हो गयी। गाँवकी स्त्रियां लड़कियां और बूढ़ी सभी उसको देखने आने लगीं। कोई उसे आशीर्वाद देती, कोई उसकी मङ्गल कामना करती, कोई उसके सौभाग्यवती होनेकी विधि बताती, कोई भरा गोद लेकर लौटनेके लिये कहती। इसी प्रकार अपनी अपनी इच्छा अपनी अपनी कामना सभी प्रकाशित करतीं। कोई कोई उसके बराबरकी लड़कियां उससे एकान्तमें

बातें करतीं, उनकी एकान्तमें क्या बातें होतीं, यह तो हम नहीं बता सकते। हां, इतना मालूम है कि और लोगोंकी बातोंकी अपेक्षा वह अपनी उम्रवाली लड़कियोंकी बात सुनकर कुछ प्रसन्न हो जाया करती थी। उनसे वह कुछ बोलती चालती थी। इन्हीं सब कारणोंसे राजेश्वरीको समय नहीं मिलता कि वह अपनी दादीके पास जाकर बैठे। दादी भी जानती हैं कि राजेश्वरी इस समय कुछ लज्जितसी रहती है, अतएव अब उससे पहलेके समान सब काम फुर्तीसे नहीं होते। उससे मिलने जुलने भी बहुत लोग आते हैं, अतएव दादी राजेश्वरीको अपने पास नहीं बुलातीं। इसी प्रकार समय बीत गया। राजेश्वरी कल ससुराल जायगी। दादीने आज उसे बुलाया। राजेश्वरी आयी और दादीके पास बैठ गयी। दादीने कहा, बेटी, अब तुम ससुराल जाती हो, एक बार तुम वहांसे हो भी आयी हो। पर उस आने जानेका कुछ विशेष अर्थ नहीं, क्योंकि इस यात्रामें तुम्हें थोड़े ही दिन रहना पड़ा था और उस समय तुम बच्ची भी थी। बच्चीसे सास ससुर काम लेना नहीं चाहते हैं। सास ससुर पतोहूसे बड़ी बड़ी आशायें रखते हैं और इसीसे वे पतोहूपर स्नेह भी रखते हैं। जो पतोहू अपने सास ससुरको अपना गुण दिखलाती है उसपर वे बहुत प्रसन्न होते हैं। जब सास ससुरको मालूम होता है कि यह नयी बहू गुणवती है तब उनकी आशा पूरी होती है और वे प्रसन्न होते हैं। इसीलिये बेटी, नयी दुलहिनको चाहिए कि अच्छे अच्छे गुण लेकर ससुरालमें जाय। वहां जाकर

सास ससुरकी सेवा कर उनकी आज्ञा माने, जेठ जेठानी और उनके लड़के लड़कियोंके साथ प्रेमका व्यवहार करे, उनको दुःख न हो, इसका प्रयत्न करे।

बेटी, लड़कियोंका दो जन्म होता है, एक पिता माताके घर और दूसरा ससुरालमें। अभीतक तुम यहां थीं, हमलोगोंके साथ थी, तुम इसीको अपना घर समझ रही थी, पर बेटी, इस घरको तुम परायी हो हो, अब तुम अपनी ससुराल जाओगी और वही तुम्हारा असली घर होगा, उसी घरको तुम मालकिन बनोगी। बीच बीचमें यहां भी आया जाया करोगी, पर यहांका आना जाना मनबहलावके लिये है, सदा वहीं रहना पड़ेगा। स्त्रियोंका यह बड़ा सौभाग्य है कि वह ससुरालमें रहें, वहां उनकी प्रतिष्ठा हो, लोग उनका सम्मान करें। ससुरालमें जिन गुणोंसे स्त्रियां आदर पाती हैं उन गुणोंको तुम अर्जन करो। विनयसे सबके साथ व्यवहार करना बड़ा भारी उत्तम गुण है। तुम वहां प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर सास ससुरको प्रणाम करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनको किसी प्रकारका कष्ट न होने पावे, इसका ध्यान रखना। ससुरालमें वे ही तुम्हारे माता पिता होंगे। सास ससुर जब इस प्रकारका तुम्हारा बर्ताव देखेंगे तब वे तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे, तुम्हारी प्रशंसा करेंगे, वे अपनी सन्तानके समान तुम्हारा भी आदर करेंगे। केवल सास ससुरकी सेवा करनेसे, उनकी आज्ञा माननेसे कर्तव्य-पालन हो जायगा, यह मत समझो। ससुरालमें जो कोई हो सबका तुम्हें आदर

यह निश्चित ही है। वे कुछ दिनोंतक तो कष्ट सहेंगे, चुप रहेंगे, कुछ बोले चालेंगे नहीं, पर सदा तो किसीसे कष्ट नहीं उठाया जाता, सदा तो कोई जोर-जुलम सहता नहीं रहता। एक दिन वे बिगड़ खड़े होते हैं, घरमे लड़ाई झगड़ा शुरू हो जाता है, एक दूसरेकी बुराई करनेपर आमादा हो जाता है। वही घर जिसमें स्वर्गकी ज्योति प्रकाशित होती थी या हो सकती है, नरक बन जाता है, परिवार अलग अलग हो जाता है, छिन्नभिन्न हो जाता है, एक साथ रहनेवाले अलग अलग हो जाते हैं, भाई भाई दुश्मन बन जाते हैं। इससे वह बहू सुख पाती है सो बात नहीं, उसकी बड़ी निन्दा होती है, लोग उसे लड़ाकिन, घरफोर कहते हैं, उसके पिता माताकी भी बड़ी निन्दा करते हैं। बेटी, सोचनेकी बात है कि जिस लड़के या लड़कीके कारण कुलमें दाग लगे, कुल परिवारवाले दुःखी हों वह कुलकलङ्क नहीं तो क्या है। इसीसे बेटी, मैं तुमसे बार बार ये बातें कहती हूं, तुमको चाहिये कि तुम इन बातोंको ध्यानमें रखो, तुम अपनेको एक योग्य घरकी योग्य लड़की साबित करो, तुम वैसी गुणवती बनो जिससे तुम्हारे सास ससुर तुमपर प्रसन्न हों, वे सुखी रहें।

चौथी शिक्षा

इस संसारमें न तो कोई किसीका प्रिय है और न कोई किसीका शत्रु। स्वार्थका सौदा है, सभीको अपने अपने मतलबकी धुन है। जिससे जिसका मतलब सधता है वह उसे प्रिय है, जिससे जिसका स्वार्थ नहीं सधता उससे किसीको कुछ मतलब थोड़े रहता है। जो हानि करता है उससे लोग दुश्मनी करने लगते हैं। यही बात है, घर बाहर सब जगह इसी नीतिके अनुसार काम होता है। कमाऊ बेटा और बहूका बड़ा आदर होता है, पर निखट्टू कहीं पूछा भी नहीं जाता। घरमें पड़ा रहता है, उधर कोई आंख भी उठाकर नहीं देखता। जो बहू अच्छी हुई, गुणवान् हुई, जिसने सास ससुरको आवभगत की, देव-रानी जेठानियोंका सम्मान किया, नौकरानियो तथा पड़ोस-वालियोंको दिया लिया, उसकी वाहवाही चारों ओर फैल जाती है, लोग उसको पूछते हैं, लोग उसको बखानते हैं। इसी कारण घरकी बूढ़ी औरतें लड़कियोंको सब बातें सिखा दिया करती हैं। ससुरारमें जानेपर किससे कैसा बरतना चाहिए, आदि बातें वे बतला दिया करती हैं। रसोई-पानी बनाना सिखा दिया करती हैं। अपने पिताके घर जिन लड़कियोंको ऐसी शिक्षा मिली हुई होती है, अवश्य ही वे ससुरार जानेपर प्रशंसित

होती हैं। राजेश्वरीने अपनी दादीसे सब बात सीखी थीं, यह बात बतलायी जा चुकी है। अतएव ससुरारमें जानेपर राजेश्वरीने प्रशंसा पायी तो इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है। सास ससुर, देवर जेठ, देवरानी जेठानी, उसकी प्रशंसा करें तो इसमें कोई नयी बात नहीं है, उसके गुणोंको सभी सराहें तो इसमें अचम्भेकी कोई बात नहीं है।

गुणका आदर होता ही है, घरवाले तो गुणवती बहू चाहते ही हैं, बाहरवालोंपर भी गुणका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता, इसीसे ससुरार जानेपर राजेश्वरीका घर बाहर सब जगह आदर होने लगा। घरके लोग राजेश्वरीको पानेसे अपनेको भाग्यवान समझने लगे। ऐसी दशामें राजेश्वरीका पति अपनी ऐसी गुणवती बहूका आदर न करे, यह कब सम्भव था। राजेश्वरी अपने उस भाग्यपर प्रसन्न थी। उसकी माता अपनी पुत्रीकी प्रशंसा सुनकर और भी आनन्दित होती थी।

गृहस्थोंके घर सदा त्योहार लगा ही रहता है। प्रायः त्योहारके समय भोजन बनानेका काम नयी बहूको ही सौंपा जाता है, उस समय सास नयी बहूसे कहती है, "देखें, इसके मां बापने क्या बनाना सिखाया; देखें, आज यह अपनी मांका नाम हंसाती है या रखती है।" सासकी इन बातोंको सुनकर नयी बहू अपनी पूरी योग्यता दिखानेका प्रयत्न करती है, उस समय वह अपना पूरा कौशल खर्च कर देती है।

राजेश्वरीकी सासने भी हँसते हँसते उससे ऐसा ही कहा।

राजेश्वरी और उसकी एक ननद दोनों रसोई बनाने गयीं। कई चीजें राजेश्वरीने बनायीं और कई चीजें उसकी ननदने। ननदने और चीजोंके साथ खस्ता कचौड़ियां भी बनायी थीं। ये लोगोंको बहुत पसंद आयीं. राजेश्वरीकी बनाई चीजोंकी भी प्रशंसा हुई, पर सबसे अधिक प्रशंसा हुई खस्ता कचौड़ियोंकी। राजेश्वरी इस बातसे मन ही मन लज्जित हुई। उसके मनमें ईर्ष्या या द्वेष नहीं था किन्तु इसे वह अपनी त्रुटि समझती थी। उस दिन उसने समझा कि यह मेरी कमी है। पर ससुरालमें इस कमीको पूरा करनेका कोई उपाय न था। अतएव वह वहां चुप हो रही, किसीसे उसने इस विषयमें कुछ कहा सुना नहीं। पर वह इस बातको भूली नहीं, अतएव जब वह ससुरारसे लौटकर आयी तब एक दिन उसने अपनी दादीसे कहा :—तुमने मुझे खस्ता कचौड़ी बनाना नहीं बताया।

दादीने कहा—क्यों, क्या ससुरारसे बाजी हार आयी हो? अच्छा,कोई चिन्ताकी बात नहीं, अबकी जाना तो और भी अच्छी चीजें बनाना, इसके लिए चिन्ताकी कौनसी बात है? मैं तुझे सब बता दूंगी। बेटी,यह स्त्रियोंके लिए एक आवश्यक कला है। सुनती हूं कि नयी सभ्यतावाले रसोई बनानेको घृणित बतलाते हैं। वे इसे नीच कर्म कहते हैं। पर बात ऐसी नहीं है। रसोई बनानेका काम उसीको दिया जा सकता है जो नितान्त प्रिय हो, क्योंकि रसोईपर ही स्वास्थ्यका भला बुरा होना अवलम्बित है। उत्तम भोजनसे ही शरीर पुष्ट होता है। भोजनमें तनीसी गड़बड़ी होनेके